क्रिश्चियनिटी कृष्ण-नीति है

पुरुषोत्तम नागेश ओक

"क्या कृस्ती-पंथ कृष्ण-मन्दिर विवाद से उत्पन्न मत है ?
क्या बाईबल कृष्ण मन्दिर विवाद की प्रतीक-कथा ही है ?"

समाधानकारी उत्तर इसी ग्रंथ में मिलेगा—

क्रिश्चियनिटी

अर्थात् कृस्ती पंथ

कृष्ण-नीति है

Christianity is Chrisn-nity

का हिन्दी अनुवाद

लेखक : पुरुषोत्तम नागेश ओक

अनुवादक : जगमोहन राव भट्ट

हिन्दी साहित्य सदन
नई दिल्ली - 05

मूल्य 75.00
प्रकाशक हिन्दी साहित्य सदन
2 बी.डी. चैम्बर्स, 10/54 देश बन्धु गुप्ता रोड,
करोल बाग, नई दिल्ली-110005
email: indiabooks@rediffmail.com
फोन 51545969, 23553624
फैक्स 011-23553624
संस्करण 2005
मुद्रक संजीव आफसैट प्रिंटर्स, दिल्ली-51

विषय-सूची

१. ईसाई पंथ कैसे चला? ... १५
२. चिर-स्थायी दुराग्रही सन्देह ... २४
३. निर्णायक मन्दिर-नियन्त्रण विवाद ... ३२
४. पॉल कौन था? ... ६३
५. राजद्रोह : विद्रोह, बगावत ... १३७
६. बाइबल में असंगतियाँ ... १४४
७. संस्कृत शब्दावली ... १६८
८. जीसस का जन्म और जीवनचरित ... १७७
९. जीसस की कब्र (?) ... १८४
१०. जीसस की आकृति कैसी थी? ... १९४
११. सु-समाचार धर्मग्रन्थ ... १९९
१२. बाइबल : बड़ा भारी व्यापार ... २१०
१३. बाइबल : छवि और प्रोत्साहन ... २१७
१४. राजद्रोह का परिणाम ... २३१
१५. हिन्दू धर्मग्रन्थों का बाइबलगत पुनरभ्यास ... २४३
१६. हिन्दू प्रथाएँ ही कृस्ती-रूप में व्यवहारगत हैं ... २५६
१७. कृस्ती-पंथ की हिन्दू-शब्दावली ... २७२
१८. हिन्दू धर्म—सर्वमानवता का आदि मातृ-प्रेम ... २८१
१९. प्राचीन विश्वव्यापी कृष्ण-पूजा ... २९६
२०. पश्चिम में कृष्ण के चित्र ... ३१३
२१. वैटिकन (वाटिका) नगरी ... ३१९
२२. Bibliography ... ३२७
२३. अधिक प्रयोग में आनेवाले कुछ रूढ़ अंग्रेजी शब्द व उनके हिन्दी पर्यायवाची शब्द ... ३३१

प्राक्कथन

इस पुस्तक के शीर्षक 'क्रिश्चियनिटी कृष्ण-नीति है' से पाठकों में मिश्रित प्रतिक्रिया उत्पन्न होने की सम्भावना है। उनमें से अधिकांश सम्भवतया छलित एवं भ्रमित अनुभव करते हुए आश्चर्य करेंगे कि कृष्ण-नीति क्या हो सकती है और यह किस प्रकार क्रिश्चियनिटी की ओर अग्रसर हुई होगी।

यह सामान्य मानव धारणा है। किसी भी नई पुस्तक को उठाने पर यह समझा जाता है कि इसमें कुछ नया कहा गया है। और जब वह पुस्तक वास्तव में कुछ नया कहती है तो उसकी प्रतिक्रिया होती है—"क्या हास्यास्पद कथन है, ऐसी बात हमने कभी सुनी ही नहीं।" कहना होगा कि भले ही कोई उसे समझने का बहाना बना रहा हो, किन्तु वह अपने मन और बुद्धि से उससे तब ही सहमत होता है जबकि वह उसकी अपनी धारणाओं से मेल खाता हो।

यहाँ पर यह सिद्धान्त लागू होता है कि यदि किसी को स्नान का भरपूर आनन्द लेना हो तो उसे पूर्णतया नग्न रूप में जल में प्रविष्ट होना होगा। इसी प्रकार यदि किसी नए सिद्धान्त को पूर्णतया समझना है तो उसे अपने मस्तिष्क को समस्त अवधारणाओं, अवरोधों, शंकाओं, पक्षपातों, पूर्व धारणाओं, अनुमानों एवं सम्भावनाओं से मुक्त करना होगा।

ऐसी सर्व-सामान्य धारणाओं में आजकल एक धारणा यह भी है कि ईसाइयत एक धर्म है, जिसकी स्थापना जीसस क्राइस्ट ने की थी। यह पुस्तक यह सिद्ध करने के लिए है कि 'जीसस' नाम का कोई था ही नहीं, इसलिए कोई ईसाइयत भी नहीं हो सकती। यदि इस प्रकार की सम्भावना से आपको किसी प्रकार की कँपकँपी नहीं होती है तो तभी आप इस पुस्तक के पारदर्शी सिद्धान्तरूपी जल में अवगाहन का आनन्द उठा सकते हैं, जोकि

परमाकर्षक शब्दों और मनभावन तर्कों से सुवासित किया गया है।

कुछ लोगों को यह आत्म-प्रकाश हो सकता है कि 'क्रिश्चियनिटी' संस्कृत का क्राइस्ट-नीति है जिसका अभिप्राय है क्राइस्ट द्वारा उपदिष्ट, प्रतिपादित या आचरित जीवन-दर्शन।

इस पुस्तक में हमने अपनी उन खोजों की व्याख्या की है कि क्राइस्ट कोई ऐतिहासिक व्यक्ति था ही नहीं, अतः क्रिश्चियनिटी वास्तव में प्राचीन हिन्दू, संस्कृत शब्द कृष्ण-नीति का प्रचलित विभेद है, अर्थात् वह जीवन-दर्शन जिसे भगवान् कृष्ण, जिसे अंग्रेजी में विभिन्न प्रकार से लिखा जाता है, ने अवतार धारण कर प्रचलित, प्रतिपादित अथवा आचरित किया था।

कृष्ण, जिसको क्राइस्ट उच्चरित किया जाता है, यह कोई योरोपीय विलक्षणता नहीं है। यह भारत में आरम्भ हुआ। उदाहरणार्थ—भारत के बंग प्रदेश में जिन व्यक्तियों का नाम कृष्ण रखा जाता है उन्हें क्राइस्ट सम्बोधित किया जाता है।

हम इस खोज का श्रेय नहीं लेते कि जीसस क्राइस्ट कोई ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं है, क्योंकि कम से कम विगत दो सौ वर्षों से असंख्य जन यह सन्देह करते रहे हैं कि क्राइस्ट की कथा औपन्यासिक है। नेपोलियन जैसे अनेक प्रमुख व्यक्ति समय-समय पर स्पष्टतया इस सन्देह को उजागर करते रहे हैं। हाल ही में अनेक योरोपीय भाषाओं में, योरोपियन विद्वानों द्वारा अपने परिपूर्ण शोध-प्रबन्धों में कृष्ण-कथा की असत्यता को प्रकाशित किया है।

किन्तु हम अपनी निम्न विशिष्ट खोजों का श्रेय लेते हैं—(१) क्राइस्ट-कथा का मूल कृष्ण है, (२) यह कि बाइबल धार्मिक ग्रन्थ से सर्वथा पृथक् एक कृष्ण-मत से भटके प्रकीर्ण, संहतीकृत लाक्षणिक लेखा-जोखा है, (३) यह कि जीसस की यह औपन्यासिक गाथा सैंट पौल के जीवन के उपरान्त ही प्रख्यात की गई, और (४) यह कि नए दिन का प्रारम्भ मध्यरात्रि के बाद मानने की योरोपीय परम्परा उनमें कृष्ण-पूजा के आधिक्य के कारण प्रचलित हुई।

हिन्दू परम्परा में कृष्ण का जन्म दैत्यों के अत्याचार एवं अनाचार के अन्धकारमय दिनों का स्मरण कराता है। कृष्ण का जन्म शान्ति, सम्पन्नता

और सुखमयता के नवयुग के नवप्रभात का अग्रदूत है। मध्यरात्रि से दिन के आरम्भ की योरोपियन पद्धति वास्तव में हिन्दू भावना का ही प्रस्तुतीकरण है जो अपनी ही प्रकार से यह सिद्ध करती है कि योरोप हिन्दू-अंचल था।

योरोपीय विद्वानों की यह खोज कि जीसस क्राइस्ट कोई काल्पनिक चरित्र है, केवल अर्धसत्य है जो कि और अधिक भ्रम उत्पन्न करता है क्योंकि यह बताने में यह खोज असफल रही है कि जीसस क्राइस्ट कथा क्यों और कैसे आरम्भ हुई।

सर्वाधिक आश्चर्य तो इस बात का है कि यदि जीसस क्राइस्ट जैसा कोई चरित्र था ही नहीं तो फिर क्रिश्चियनिटी के विषय में यह सब संभ्रम क्यों फैला?

प्रस्तुत पुस्तक उसी अन्तिम सूत्र को निर्दिष्ट करती हुई बताती है कि क्रिश्चियनिटी और कुछ नहीं अपितु हिन्दुओं के कृष्ण-मत का योरोपियन तथा पश्चिम एशियाई विकृति है।

इसी प्रसंग में हम इस पुस्तक में यह भी सिद्ध करना चाहते हैं कि क्योंकि जीसस कोई जीवित व्यक्ति नहीं था, अतः बाइबल भी धर्मग्रन्थ किंचित् भी नहीं अपितु जेरुसलम और कौरिंथ स्थित कृष्ण मन्दिरों के संचालकों के परस्पर मतभेद का कुछ संहतीकृत और कुछ लाक्षणिक कथामात्र एवं उसका परवर्ती संस्करण है।

पृथक् हुए भाग ने कृष्ण मन्दिर की व्यवस्था को हथियाने के सीमित निमित्त के लिए एक विद्रोहात्मक आन्दोलन आरम्भ कर दिया। सौल अथवा पौल इसका नेता था। यह पौल ही है जिसका वृत्त-चित्रण बाइबल में किया गया है। बारह देवदूत यहूदी समुदाय के वे बारह वर्ग हैं जिनकी सहायता की पौल ने इच्छा की थी। इसलिए जीसस के छद्मवेश में पौल ही बाइबल का मुख्य पात्र है।

यथातथा उनकी बड़ी-बड़ी अपेक्षाओं से कहीं परे पौल, पैटर, स्टीफन आदि द्वारा संचालित आन्दोलन एक प्रवाह में परिवर्तित होकर असहाय आन्दोलनकर्ताओं को कृष्ण-मत से दूर ले जाता हुआ और उनको किसी अज्ञात तट पर, जिसे वे अब भी भयाक्रान्त-से कृष्ण-नीति ही मानते रहे, जो अब क्रिश्चियनिटी कही जाती है।

बाइबल उस संघर्ष का लाक्षणिक लेखा-जोखा है जिसे आन्दोलनकर्ताओं ने साहस जुटाकर प्राप्त किया, जो अब यहूदी नागरिकों तथा रोमन अधिकारियों को खतरा बन गए हैं। यहूदियों को यह भय था कि यदि वे सब क्रिश्चियन बन गए तो यह विशिष्ट संस्कृति धंस जाएगी। दूसरी ओर रोमन अधिकारियों को यह भय होने लगा कि कृष्ण-मन्दिर-विवाद इस परिमाण में बढ़ गया है कि वह स्वयं प्रान्तीय प्रशासन के विरुद्ध खुले विद्रोह के रूप में बवाबह सिद्ध हो रहा है।

उनका भय निराधार नहीं था, जैसा कि कालान्तर में इसने जुडाइज्म को अन्धकार में विलीन कर क्रिश्चियनिटी को स्थापित किया और रोम की क्रिश्चियन-पूर्व की संस्कृति को तहस-नहस कर भूमिसात् कर दिया।

चार शताब्दों की इस अराजकता की अवधि में विद्रोहियों ने, जैसा कि यहूदियों ने रोमन अधिकारियों को सूचित किया, समय-समय पर उन्हें उनके अपराधों के लिए दण्डित किया।

यहूदी रोमन अधिकारियों को सूचित करते थे, क्योंकि वे जीसस के मिथक को उन्मत्तता और हिंसा द्वारा फैलाकर उनकी शान्ति को भंग कर रहे थे। इस दिशा में रोमन अधिकारी उनके विरुद्ध कार्य करके उन नए दंगों को रोककर अथवा शान्त कर उन्हें उपकृत कर रहे थे।

यह आन्दोलन स्पष्टतया झड़पों, मुठभेड़ों, हत्याओं, सामूहिक अवरोधों, निष्कासनों, कर न देना जैसा कि मन्दिर के भीतर धन-विनिमय कारों के कार्यों से विदित होता था, बड़े जोरों से फैल गया। और तब यह प्रश्न उत्पन्न हो गया कि जो कर देय है क्या उसे सीज़र के पास जमा करा दिया जाय? उस विद्रोह को समाप्त करने के प्रयास में विद्रोहियों को इतने पत्थर मारे गए कि वे मर गए अथवा उन्हें फाँसी पर लटका दिया गया।

यही वह संघर्ष है जो बाइबल में अंकित और वर्णित है। यही कारण है कि पौल तथा अन्य लोग, जो उस आन्दोलन में सीधे या किसी अन्य प्रकार से सम्मिलित थे, बाइबल में उनका पत्र-व्यवहार भी समाहित है।

काल्पनिक जीसस का अभिव्यक्तिकरण विद्रोहियों में सामान्यतया और पौल में विशेषतया किया गया है। काँटों का मुकुट और जनसमूह की अवज्ञा, जयमानता, परिश्रम और अन्त में फाँसी पर लटकाना—यही आन्दोलन-

कर्ताओं की कथा का सार है। जीसस का अवतार मुख्य रूप से उन यहूदियों के अनुरूप ही बैठता है जो आन्दोलनकर्ताओं के विषय में रोमन प्रशासन को सूचित करते रहे हैं जबकि पुनर्जीवित होना विद्रोहियों के शक्तिशाली गुट के रूप में होने का प्रतीक है।

बाइबल का संहतीकृत और संघर्ष के लाक्षणिक इतिहास के रूप में अध्ययन किया जाय तो तभी उसमें कुछ सार दिखाई देता है।

क्योंकि बाइबल की ऐसी वास्तविकता अज्ञात और अविदित रहती रही थी इसलिए विद्वान् और बाइबल के विद्वान् इसके वर्णन और धर्म से अनुकूलता के संगतीकरण में कोई संयोग पाने में अब तक बड़ी कठिनाई का अनुभव करते रहे थे। उनके लिए बाइबल अब तक बेमेल तथा परस्पर विरोधी अनियमितता एवं आपाधापी में गूँथे गए तत्त्वों का पिण्ड-सा है। अब तक बाइबल का प्रत्येक पाठक यही आश्चर्य करता रहा कि वास्तव में बाइबल का अभिप्राय क्या अभिव्यक्त करना है? यह ऐसी दिखाई देती थी मानो इसके बेमेल संकलन में बाइबल धर्म चर्चा और वर्णन, जीवनवृत्त और प्रार्थना, विनती और प्रवचन और क्रोध और परित्याग, ये सब परस्पर अस्त-व्यस्तता से मिश्रित हैं। इस रहस्य को अब हमने सर्वप्रथम उद्घाटित किया है। विभ्रम, कतराना, असंगतता, गुप्तता तथा रूपकता संघर्ष के प्रकार और इसके अनपेक्षित, निरुद्देश्य और अवांछितता के कारण उत्पन्न हुए हैं। जिस प्रकार ब्रिटिशर्स ने मसालों का व्यापार करते-करते ही भारत का राज्य ले लिया, उसी प्रकार जिन्होंने किन्हीं एक-दो कृष्ण मन्दिरों का अधिकार पा लिया उन्होंने बड़े आश्चर्य एवं संभ्रम अथवा लज्जा से पाया कि उनका प्रश्न घोष सम्पूर्ण समसामयिक साम्प्रदायिक ढाँचा उनके सिरों पर ही टूट रहा है। इसलिए परिस्थितियों से विवश होकर उनको अपने संघर्ष का संहतीकृत, भ्रमात्मक, लाक्षणिक, अस्तव्यस्त, आलेख ही अपना धर्मग्रन्थ स्वीकार करना पड़ा। इस प्रकार मानवता का बहुत बड़ा भाग अन्ततः चाटु-कारितापूर्ण, अविश्वसनीय पाठ्य-सामग्री को मुक्ति एवं धर्म स्वीकार करना जनसामान्य की बुद्धिविहीनता का प्रतिबिम्ब है। जनसामान्य का यह स्वभाव होता है भीड़ का अनुसरण करना, यह जाने बिना कि इसका गन्तव्य और उद्देश्य क्या है। बाइबल की वास्तविकता की मेरी खोज से न केवल क्राइस्टो-

जीसी के अध्ययन एवं बाइबल और तत्सम्बन्धी धर्म में ही अत्यधिक गड़बड़ उत्पन्न करेगी अपितु समसामयिक संसार के सम्पूर्ण धार्मिक प्रकार को गड़बड़ा देगी।

कथमपि यह मुझ पर आ पड़ा है कि संसार की अनेक मुख्य ऐतिहासिक एवं धार्मिक अवधारणाओं का मैं पर्दाफाश करूँ। पन्द्रह वर्ष पूर्व मैंने अपनी अद्भुत खोज की घोषणा की थी कि भारत अथवा अन्य किसी भी देश का कोई भी ऐतिहासिक भवन; यथा—लालकिला और ताजमहल, समरकन्द का तामरलेन का तथाकथित मकबरा, किसी भी विदेशी आक्रमणकर्ता का, जैसा कि सामान्यतया उसे उसके नाम से बताया जाता है, उसका नहीं है। प्रत्येक तथाकथित ऐतिहासिक मस्जिद या मकबरा, भारत में हो अथवा विदेश में, वह अधिग्रहीत हिन्दू सौध ही है। परिणामतः इण्डो-अरब शिल्प-कला का सिद्धान्त बहुत बड़ा मिथक है। इसके परिणामस्वरूप समस्त संसार में विद्यमान ऐतिहासिक, पुरातात्त्विक एवं शिल्प-विद्या सम्बन्धी अध्ययन में निहित मूल त्रुटियाँ उजागर नहीं हो पाईं। इसीलिए आज संसार-भर के विद्वान् बड़े जोर-शोर से काल्पनिक इस्लामी भवनों के सम्बन्ध में अपने पूर्व-कृत्यों का पुनरावलोकन कर रहे हैं।

जीसस और बाइबल के सम्बन्ध में मेरी खोज, जो कि उसी प्रकार दूरगामी और विचलित करने वाली है, कुरान के भी आलोचनात्मक अध्ययन के लिए विवश करेगी। क्योंकि उसके विषय में भी यह कहना कि यह 'आसमान से नाजल' हुआ था, जीसस को सर्वथा ऐतिहासिक पुरुष और बाइबल को धार्मिक ग्रन्थ मानने के समान ही है। क्योंकि कुरान में जीसस तथा कुछ और आगे बढ़कर बाइबल की भाँति प्रकाश दिखाने की भविष्य-वाणी की गई है, वह एक प्रकार से विभ्रामक दौड़-सी है। किन्तु क्योंकि अब यह स्पष्ट हो चुका है कि कोई ईसा नहीं है तो फिर कुरान कहाँ रह सकती है? यदि कुरान के विषय में मान लिया जाय कि वह स्वर्ग में स्थित फलक का प्रतिलेख है जो अरेबिया में प्रसारित किया गया है तो बताइए त्रुटि कहाँ है? क्या स्वर्ग का लेख त्रुटिपूर्ण है अथवा उसके अरब में उतरने पर उसमें गड़बड़ी की गई है? विद्वान् और जनसामान्य समान रूप से इसे जानने को उत्सुक होंगे।

क्राइस्ट ने ध्वन्यात्मक रूप में संन्यास लिया। जब उसको उस प्रकार से उच्चारण करें तो हम उसे हिन्दू, संस्कृत शब्द कृष्ण से मिलता-जुलता पाएँगे। 'नीति' प्रत्यय भी संस्कृत का है। इसलिए 'क्रिश्चियनिटी' शब्द वास्तव में कृष्ण-नीति को अभिव्यक्त करता है अर्थात् भगवान् कृष्ण द्वारा प्रतिपादित अथवा आचरित जीवन-दर्शन।

अंग्रेजी में क्राइस्ट को अनेक प्रकार से लिखा जाता है जैसे कि देवनागरी में कृष्ण को। परन्तु क्योंकि अंग्रेजी में 'क्रिश्चियनिटी' एक ही मानक रूप में समस्त विश्व में लिखी जाती है, हमने इस पुस्तक में कृष्ण और कृष्ण-नीति पर समरूप लेखन पर स्थिर रहकर इस बात पर बल दिया है कि उसके अन्य प्रकार केवल ध्वन्यात्मक विभेद हैं।

रोमन वर्णमाला की अपूर्णता तथा विभिन्न भाषाओं द्वारा इसके ग्रहण ने लेखन में अत्यधिक विभ्रम उत्पन्न कर दिया है, संस्कृत शब्द 'ईश' अलियास ईशु अंग्रेजी, ग्रीक तथा लैटिन भाषा में विभिन्न प्रकार से लिखा जाता है। इशायुस, इयासियुस, इसेयुस, इयेसुस, इसुस और जेसुस—ये कुछ इसके अनेक नामों में से हैं। इसी प्रकार सिलास, सिलुस और सिल्वानुस, स्टेफेन, स्टीफन तथा स्टिफानुस आदि ध्वनि-विभेद त्रुटिपूर्ण रोमन लिपि के कुछ लक्षण हैं; यदि इसलिए पाठक इस पुस्तक में कोई एक नाम विभिन्न स्थानों पर अनेक प्रकार से लिखा गया पाते हैं तो उनकी निराशा में लेखक स्वयं सहभागी है।

एक बार फिर अपने खोजपूर्ण कार्य की ओर आते हुए मैं कहना चाहता हूँ कि सर्वथा अप्रत्याशित, किंचित् नहीं, अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण, अत्यन्त भयावह और निराशाजनक परिणाम इस खोजपूर्ण कृति के होंगे, खोज जो पाश्चात्य विद्वान् जिन्होंने शैक्षिक क्षेत्रों में दो शताब्दों तक राज्य किया है, उन्होंने भाषा-विज्ञान सम्बन्धी भयंकर भूल की है जो कि उनके शब्दकोशों एवं विश्वकोशों तथा अन्य लेखों को नष्ट कर देगा। इसको प्रदर्शित करने के लिए इस पुस्तक के पृष्ठ ११७ पर हमारे द्वारा उद्धृत उद्धरण का उल्लेख करेंगे।

यहाँ ग्रीक शब्द 'हीरोसोलिमा' को इस प्रकार कहा गया है जिसका अभिप्राय होता है होली सलम अर्थात् होली जेरुसलम। यह भयंकर भूल है।

हीरोसोलिमा संस्कृत शब्द हरि-ईश-आलयम् का भ्रष्ट ग्रीक रूप है जिसका अभिप्राय है भगवान् हरि अथवा भगवान् कृष्ण का आसन, स्थान अथवा नगर। नगर के पवित्र होने की भावना केवल इसके भगवान् हरि के निवास होने के कारण अनुमानित है।

इसी प्रकार जब एन्साइक्लोपीडिया जुडेशिया हिब्रू का मूल 'ही', दिव्य संज्ञा का संक्षिप्त रूप, बताता है तो वह यह बताने में असमर्थ रहता है कि वह दिव्य संज्ञा क्या थी। वह दिव्य संज्ञा है 'हरि' अलियास कृष्ण।

इसलिए यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि यहाँ तक कि उनके अपने विशिष्ट क्षेत्र में भी पाश्चात्य विद्वान् वास्तविकता से कितनी दूर निकल गए हैं, अपने अधकचरे और भली प्रकार न समझी गई खोजों में लगे रहने की अपेक्षा पाश्चात्य विद्वान् सदा-सदा के लिए यह स्वीकार कर लें कि संस्कृत भाषा और हिन्दू परम्पराएँ मुख्य विश्व संस्कृति के रूप में मानव-सभ्यता की जड़ में समाहित हैं, तो उपयुक्त होगा।

इसलिए यह आशा की जाती है कि पाठक इस पुस्तक को अनेक कारणों से उपयोगी पायेंगे।

—पु० ना० ओक

१५-६-१९७८

अध्याय १

ईसाई पंथ कैसे चला ?

कृतयुग में मानव जाति के निर्माण से महाभारतीय युद्ध (अनुमानतः ईसवी सन् पूर्व ५५६१वाँ वर्ष) तक विश्व के हर प्रदेश में वैदिक सभ्यता ही थी।

उस युद्ध में हुए भीषण संहार के कारण वैदिक विश्व-साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। आगे चलकर उसके खण्डराज्य सुरीय (Syria), असुरीय (Assyria), मेसोपोटेमिया (महिषीपट्टनीय), बॅबिलोनिया (बाहुबलिनीय) आदि कहलाने लगे।

वैदिक चातुर्वर्णाश्रमी समाज-जीवन भंग होकर रह गया। ऋषि-मुनियों के आश्रम नष्ट हो गए। संस्कृत शिक्षा-प्रणाली टूट-फूटकर उसी के भ्रष्ट उच्चारों से विविध प्राकृत प्रादेशिक भाषाएँ बनती चली गईं।

वेद, उपनिषद्, रामायण, महाभारतवाली सुसूत्र सामाजिक जीवन-प्रणाली भंग होकर आस्तिक से नास्तिक तक, तथा विविध देव-देवताओं को प्रधानता देनेवाले अनेक पंथ, उपपंथों में जनता बँट गई।

इस प्रकार भारत में ही आरम्भ में बौद्ध, जैन तथा आगे चलकर, महानुभाव, सीख, आर्यसमाजी, सनातनी, वीरशैव, वैष्णव, शैव, द्रविड़ पंथ निर्माण होते गए। इन सबकी ध्वजपताका केशरिया उर्फ नारंगी ही रही, यह विशेषता देखें।

उधर पाश्चात्य देशों में भग्न वैदिक समाज के पंथ Essenese (ईशानी यानी शैव), Stoics (स्तविक यानी स्तवन उर्फ जाप करनेवाले), Malencians (मॅलिन्शीयन्स् यानी म्लेंछ), Sadduceans (सॅडुशियन्स् यानी साधुजन), Palestinians (पॅलेस्टीनियन्स् यानी पुलस्तिन् ऋषि के अनुयायी, Romans (रोमन्स् यानी रामपन्थी), कृष्णियन्स् उर्फ कृस्तियन्स्

उर्फ कृष्णपन्थी (जो ख्रिश्चन् यानी ईसाई कहे जाते हैं) इस्लामी, यहूदी आदि कहलाए गए।

आगे चलकर यह पंथोपपंथ वेद, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, भगवद्गीता, श्रीमद्भागवतम्, योगवासिष्ठ, पुराणों आदि से बिछड़ते-बिछड़ते उस मूलगामी साहित्य को भूलते गए। संस्कृत भाषा का उनका बढ़ता अज्ञान भी एक कारण बना। कुछ पंथों ने वेदों को देववाणी मानने से इन्कार करना भी आरम्भ किया।

उनमें से कुछ पंथों में हठी, क्रोधी, दुराग्रही व्यक्ति उत्पन्न हुए जो सम्पत्ति तथा अधिकार प्राप्त करने की लालसा से किसी प्रकार अधिकाधिक लोगों को निजी पंथ के अनुयायी बनाने की होड़ में लगे हुए थे। पीटर और पॉल ऐसे ही दो व्यक्ति मूलत: कृष्णपंथी थे। किन्तु आगे चलकर उन्होंने कृष्ण के बजाय 'क्रुस्त' अपभ्रंश का लाभ उठाकर कृष्ण-नीति उर्फ भगवद्गीता प्रचारक पंथ को त्याग दिया। ईशस् कृष्ण (iesus Chrisn) का उच्चारण (jesus christ) जीसस क्रुस्त (अथवा क्राइस्ट) करते-करते पीटर तथा पॉल आदि के अनुयायियों ने बातों-बातों में बालकृष्ण के जीवन से मिलता-जुलता जीसस क्राइस्ट का एक काल्पनिक चरित्र भी बुनना चाहा। कुमारी माता के गर्भ से जीसस का चमत्कारी जन्म, जॉन द्वारा उसका उपनयन तथा निरपराध जीसस को यकायक, बिना कारण दिया गया क्रूर मृत्युदंड इन तीन घटनाओं की अंटसंट जीवनकथा अनुयायियों को सुनवा-सुनवाकर उस समय के शासकों के विरुद्ध जनता को भड़कानेवाले भाषण पीटर तथा पॉल देने लगे। इसी कारण पीटर तथा पॉल दहशतवादी तथा आतंकवादी माने जाते थे। उनका अन्त भी भीषण हुआ। तथापि भविष्य में जब ईसाई पंथ का प्रभाव तथा अधिकार बढ़ा तब पीटर और पॉल को Saint यानी सन्त की उपाधि से सम्मानित किया गया। अब वे दोनों सन्त ही समझे जाते हैं। पीटर तथा पॉल ने निजी जीवनकाल में जो दुर्व्यवहार किया या अनेक लोगों से शत्रुता की, उसका ब्योरा दबाये जाने के कारण अब सारे ईसाइयों की यही धारणा बन गई है कि पीटर तथा पॉल सादा, उज्ज्वल जीवन व्यतीत करनेवाले सन्त ही थे।

इतिहास में ऐसा बार-बार होता दिखाई देता है। छल, बल, कपट

आदि से इस्लाम का प्रसार करनेवाले मुसलमान फकीर भी सन्त ही कहे जाते हैं।

सन् १९८०-९० के दशक में भारत के पंजाब प्रान्त में सिक्खों को हिन्दुत्व से पृथक् दर्शानेवाले आतंकवादी भी निजी अनुयायियों में सन्त ही कहे जाते हैं। जिसकी लाठी उसकी भैंस।

आतंक तथा दमन से फैलाए गए सारे पंथों का प्रारम्भिक इतिहास दुष्टता से भरा होने से उसे दबाकर एक नया झूठा इतिहास प्रस्तुत किया जाता है। अत: सत्य इतिहास का ज्ञान चाहनेवालों को इतिहास के अध्ययन तथा विवरण करने में बड़ी सावधानी रखनी पड़ती है।

जीसस क्रुस्त के चरित्र की बात ही लें। कहते हैं कि एक कुंवारी की कोख से उनका जन्म हुआ। इस कथन में वदतो व्याघात: का दोष साफ दिखाई देता है क्योंकि गर्भवती होने से कौमार्य का भंग हो जाता है। आंग्ल भाषा का Virginity (यानी कौमार्य) शब्द ही लें। वर्ज्यो जननं इति ऐसा उसका संस्कृत विवरण है। अत: कुंवारी के गर्भ से जीसस का जन्म असंभव है।

कहा जाता है कि क्रुस्त बड़ा ही सौजन्यशील तथा मृदु स्वभावी था। किसी ने एक गाल पर थप्पड़ मारा तो प्रहारक की सुविधा हेतु दूसरा गाल भी उसके सम्मुख करना चाहिए, ऐसा उपदेश क्रुस्त करता रहा। यह यदि सत्य होता तो वह अपने आपको यहूदियों का राजा कहलवाकर रोमन शासन उल्टा देना चाहता था, यह आरोप हास्यास्पद प्रतीत होता है। अत: कील ठोककर क्रुस्त मारा गया, यह कथा कपोलकल्पित सिद्ध होती है। उसे देहदंड दिए जाने से पूर्व वह मेज पर १२-१३ शिष्यों सहित साथ भोजन ले रहा है, ऐसा एक चित्र ईसाई जनता में बड़ा महत्त्वपूर्ण माना जाता है। किन्तु जानकार विद्वान् कहते हैं कि इस काल में तो रोमन शासन में लोग वैदिक प्रथा के अनुसार भूमि पर बैठकर ही भोजन किया करते थे, अत: Last Supper वाला चित्र सर्वथा कपोलकल्पित है।

उसी प्रसंग का एक और मुद्दा यह है कि रोमन शासन की पुलिस जब जीसस की तलाश में वहां पहुँची तो (Judas Iscariot) ज्यूडस इसकॅरियट नाम के शिष्य ने विद्यमान १२-१३ व्यक्तियों में जीसस के प्रति

अंगुली-निर्देश कर जीसस को पकड़वाया।

यह बात भी इस कारण मनगढ़न्त लगती है कि जीसस यदि प्रसिद्ध धार्मिक नेता था तो १२-१३ व्यक्तियों के गुट में उसका पता लगाना कौन-सी बड़ी बात थी। अतः ज्यूडस इस्कॅरियट के अंगुली-निर्देश की बात भी काल्पनिक लगती है।

जीसस के हाथ तथा दोनों पैर यदि कीलों से क्रूस पर ठोंके गए थे तो रक्तस्राव के कारण उसकी तुरन्त मृत्यु अटल थी। फिर भी तीन दिनों के पश्चात् जीसस के पुनर्जीवित होकर सीधा स्वर्गारोहण करना अटपटा-सा लगता है।

जीसस को ईसाई लोग परमात्मा का अवतार मानते हैं। और परमात्मा सर्वशक्तिमान कहा जाता है। ऐसे सर्वशक्तिमान ईश्वरावतार को धोखे से पकड़कर झूठे आरोप में देहदंड दिया जाना भी जँचता नहीं।

ईसाइयों की मान्यता है कि जीसस को कीलें ठोंकने से उसके शरीर से जो रुधिर बहा वह उसे परमात्मा माननेवाले अनगिनत व्यक्तियों के सारे पापों को सदियों तक धोता रहेगा।

इस तर्क में तो कई दोष दिखाई देते हैं। एक दोष यह है कि जीसस की मृत्यु यदि स्वेच्छा से किया हुआ आत्मसमर्पण अर्थात् आत्महत्या नहीं थी तो उसके शरीर से निकला रुधिर विश्व के अन्त तक उसका नेतृत्व कबूल करनेवाले असंख्य व्यक्तियों के पाप धोता रहेगा, यह धारणा विश्वासयोग्य नहीं लगती।

दूसरा दोष यह है कि किसी के शरीर से निकला रक्त तुरन्त गाढ़ा बनकर सूखे रूप में केवल दाग बनकर रह जाता है। ऐसे सूखे दाग दूसरों के पाप कैसे धो सकेंगे?

तीसरा दोष यह है कि मानव रक्त स्वयं एक दुर्गंधयुक्त जन्तुभरा पदार्थ होते हुए दूसरों के पाप कैसे धोएगा?

जीसस का नेतृत्व कबूल करने वालों को ही पापमुक्ति प्राप्त होगी, दूसरों को नहीं—इस कथन में भी ईश्वरीय आध्यात्मिक निष्पक्षता के बजाय स्वार्थी राजनीतिक पक्षपातपूर्ण सौदेबाजी की झलक दिखाई पड़ती है।

अवतारी व्यक्ति वही कहलाता है जो सारे संकटों पर विजय प्राप्त कर विरोध का दमन कर सके। निराधार आरोपों में एकाएक किसी के हाथों असहाय अवस्था में मारा जानेवाला व्यक्ति सर्वशक्तिमान परमात्मा-स्वरूप कैसे कहा जा सकता है?

जीसस की जीवनी में और भी कई त्रुटियाँ दिखती हैं। उसके निवास-स्थान का पता अज्ञात है। जीसस के भाषण सुनने तथा आशीर्वाद पाने के लिए भक्तगणों की तथा अन्य समर्थकों की भीड़ लगा करती होती तो जीसस का घर एक प्रसिद्ध स्थान होता। किन्तु जीसस की जीवनकथा काल्पनिक होने से जीसस के घर के पते का अभाव स्वाभाविक ही है।

जीसस का जन्मवर्ष, जन्मवार, जन्मतारीख तथा जन्मसमय सभी अज्ञात हैं। ईसवी सन् पूर्व ६८ या ६३ या ४ वर्ष ऐसे जीसस के जन्मवर्ष की बाबत विविध अनुमान प्रचलित हैं। जीसस क्राइस्ट उर्फ ईसा के जन्मदिन से ही ईसवी सन् की गणना यदि प्रारम्भ होती तो ईसा का जन्म ईसवी पूर्व ६८, ६३ या ४ वर्ष में हुआ होगा, ऐसे अनुमान करते रहने की नौबत ही नहीं आती।

जीसस के जन्मवार के सम्बन्ध में तो कोई अनुमान भी प्रचलित नहीं है।

जीसस का जन्मोत्सव २५ दिसम्बर को मनाया जाता है। तथापि ईसाई विद्वान् मानते हैं कि प्राचीन काल में मकर संक्रान्ति २५ दिसम्बर को पड़ने से उस दिन संक्रान्ति का उत्सव मनाया जाता था। अतः मुट्ठी-भर, नगण्य ईसाईपंथी लोगों ने उसी उत्सव को जीसस का जन्मोत्सव कहना आरम्भ कर दिया।

जीसस की जीवनी में उसका जीवन-समय रात के १२ बजे का नहीं आँका गया है, तथापि गिरजाघरों में २५ दिसम्बर की रात को १२ बजे जीसस का जो जन्म मनाया जाता है, वह सर्वथा निराधार है, यह ईसाई विद्वान् स्वयं मानते हैं।

२५ दिसम्बर को यदि जीसस का जन्म हुआ, तो ईसवी सन् गणना का आरम्भ १ जनवरी से क्यों किया जाता है? उससे अर्थ यह निकलता है कि स्वयं ईसा का जन्म ईसवी सन् आरम्भ से एक सप्ताह पूर्व हुआ। यह

कोई प्रश्न नहीं। यदि सचमुच जीसस कोई ऐतिहासिक व्यक्ति होता तो ईसा के जन्मदिन तथा ईसवी सन् आरम्भ दिन भिन्न नहीं होते। इसी से यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि जीसस की सारी जीवनी एक कपोल-कल्पित कथा है।

सन् १९८४ में लन्दन के बी० बी० सी० दूरदर्शन द्वारा चार-पांच विद्वानों की चर्चा का कार्यक्रम दर्शाया गया था जिसका विषय था कि जीसस ऐतिहासिक व्यक्ति था या कपोलकल्पित ?

ईसाई पंथ के लिए सारे योरोपीय जनों में Christianity कृश्च्यानिटी यानी कृष्णनीति, शब्द प्रचलित है। यदि कृष्ण-नीति से वह कोई भिन्न पंथ होता तो योरोपीय वाक्प्रचार में Hinduism, Communism, Buddhism की तरह उसे Christianism कहा जाता। किन्तु उसे कृश्च्यानिटी यानी कृष्णनीति इसलिए कहा जाता है कि वह वस्तुतः कृष्ण-नीति (यानी भगवद्गीता के भक्तों का) पंथ था।

आंग्ल भाषा या अन्य योरोपीय भाषाओं में 'नीति' ऐसा कोई स्वतन्त्र शब्द नहीं है किन्तु संस्कृत तथा अन्य भारतीय भाषाओं में धर्मनीति, विदुरनीति, नीतिशास्त्र आदि शब्दों से देखा जा सकता है कि नीति एक बड़ा महत्त्वपूर्ण स्वतन्त्र शब्द है। इससे यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है कि जीसस नाम का कोई व्यक्ति कभी था ही नहीं। महाभारतीय युद्ध के पश्चात् वैदिक सभ्यता छिन्न-भिन्न होने पर अनेक पंथों में एक कृष्ण-नीति पंथ था। उसी की एक शाखा पीटर पॉल जैसे स्वार्थी व्यक्तियों के नेतृत्व में अलग होकर कृष्णनीति उर्फ कृश्च्यानिटी कहलाने लगी।

प्राचीन ग्रीस तथा रोम के लोगों में ईशस् कृष्ण का उल्लेख बोलने की भाषा में तथा लिखित रूप में भी Iesus chrisn के बजाय Jesus christ होने लगा। उस कृष्ण-कथा के स्थान पर एक कल्पित जीसस का मनगढ़न्त चरित्र तैयार किया गया। भारत में भी बंगाली तथा कन्नड़ जन कृष्ण नाम का उच्चारण क्रिष्ट ही करते हैं।

जो शिक्षित होकर अपने आपको नाममात्र ईसाई कहलाते हैं उन्हें तो ऐसा प्रमाण जानने से कोई फर्क नहीं पड़ता किन्तु अन्य जो भोलेभाले धार्मिक लोग जीसस की जीवनकथा को सही मानकर उसके नाम से

पूजा, जाप, यात्रा आदि करते रहे हैं, उनका इस पुस्तक के पठन से भ्रम-निवारण अवश्य होगा।

निष्पक्ष अन्वेषण में श्रद्धा रखने वाले सैकड़ों योरोपीय विद्वानों ने यूरोप तथा अमेरिका में ईसामसीह की कथा को कपोलकल्पित सिद्ध करने वाले ४०० से अधिक ग्रन्थ व लेख लिखे हैं। फिर भी ईसाई धर्मग्रन्थ बाइबल का मुद्रण, वितरण तथा बिक्री और धर्म-प्रचार, संन्यासी-संन्यासिनियों के आश्रम आदि विश्व का सर्वाधिक आर्थिक लाभ कराने वाला धंधा वर्तमान विश्व में बड़ी तेजी से होने के कारण उपलब्ध अकाट्य प्रमाणों के प्रति आंखें मूंदकर धनलिप्सा के नशे में ईसाई धर्म-प्रसार का कार्य बड़ी धूमधाम से आगे ही आगे धकेला जा रहा है। इस कार्य में जुटे ईसाई अधिकारी ईसाई पंथ की निर्मूलता सिद्ध करने वाले उस विपुल साहित्य की जानबूझकर नाकाबंदी किए हुए हैं ताकि जनता को इस खंडनात्मक साहित्य का पता ही नहीं चले।

कृस्तपंथी नगण्य मुट्ठीभर लोगों को सन् ३१२ ई० सन् के आसपास क्रूर रोमन सम्राट् Constantine (यानी कंस ईसन्) का योगायोग से साथ मिल जाने पर शाही सेना के छल-बल से यूरोप में सामान्य जनता को ईसाई बनाने का अभियान शुरू हुआ। फिर भी रोम से आरम्भ किए गए इस क्रूर पंथ-प्रसार को पूरे यूरोप खण्ड को निगलने में ६०० वर्ष की प्रदीर्घ अवधि लगी।

उस अवधि में यूरोप की वैदिक सभ्यता का नामोनिशान मिटाने हेतु ईसवी सन् पूर्व का सारा इतिहास भी नष्ट किया गया ताकि प्राचीन वैदिक जीवन-प्रणाली की तुलना में ईसाई अध्यात्मवाद फीका तथा अर्थहीन प्रतीत न हो।

लगभग ३०० वर्ष पश्चात् ईसाई पंथ प्रसार का अनुसरण करते हुए इस्लाम का प्रसार भी छल तथा कपट के मार्ग से ही किया गया।

राजनयिक पक्षों की भांति इस्लामी तथा ईसाई व्यावहारिक पंथ हैं। चंद नेताओं की महत्त्वाकांक्षा से उनका उदय हुआ। जुल्म-जबरदस्ती से वे पंथ जनता पर थोपे गए। एक धर्मग्रन्थ (बाइबल या कुरान) तथा एक नेता (ईसा या मोहम्मद) के प्रति निष्ठा की जबरदस्ती करने वाले पंथ धर्म नहीं

कहलाए जा सकते।

धर्म तो केवल दिनभर का आचरण कैसा हो, इसका मार्गदर्शन करता है। उसमें किसी व्यक्ति या ग्रन्थ की निष्ठा जनता पर थोपी नहीं जाती।

वैदिक सभ्यता ही एकमात्र ऐसा धर्म है जो माता की तरह सारी जनता को केवल सदाचरण का प्रशिक्षण देते हुए किसी एक व्यक्ति, ग्रन्थ, पूजा-पद्धति या आध्यात्मिक सिद्धान्त का उसे गुलाम नहीं बनाती।

ईसाई तथा इस्लामी पंथ-परम्परा में सारी जनता का आध्यात्मिक शिकार कर समस्त जनता को ईसाई या मुसलमान बनाने का लक्ष्य रहता है। इतिहास इसका साक्षी है। यूरोप के समस्त जन तथा सऊदी अरब स्थान से अफगानिस्तान तक के लोग इसी शिकार तंत्र के द्वारा जबरन ईसाई या मुसलमान बनाए गए। किसी अन्य पंथ-प्रणाली को मानने वाला वहाँ एक भी नहीं बचा। सबका सफाया कर दिया गया। इस प्रकार समस्त जनता का मानसिक तथा आध्यात्मिक शोषण अथवा भक्षण करने वाली ईसाई तथा इस्लामी पंथ-परम्पराओं को उसी तरह एक सार्वजनिक संकट माना जाना चाहिए जैसे किसी गाँव की गलियों में सिंह, बाघ, चीते या भेड़िए के आगमन से।

यदि ईसाई तथा इस्लामी पंथों की ऐसी सर्वभक्षी परंपरा नहीं होती तो वे भी वैदिक जनजीवन में उसी तरह समा जाते जैसे बौद्ध, जैन, सनातनी, आर्यसमाजी, सिख आदि मेल-मिलाप तथा भाईचारे से जीवन व्यतीत करते हैं। किसी अन्य पंथ के अनुयायी को फुसलाकर, बहकाकर या छल-बल-कपट द्वारा निजी पंथ में घसीट ले आने की किसी भी वैदिक पंथ की प्रथा नहीं है। वैदिक परंपरा की यह विशेषता है कि वह बड़ी उदारता से 'पिंडे पिंडे मतिर्भिन्ना' की भावना से अनेकानेक पूजा-प्रार्थना की परिपाटियाँ तथा आस्तिक से नास्तिक तक की विचारधाराओं को एक माँ की भाँति केवल स्वीकार ही नहीं करती, अपितु बड़ी वत्सलता से, ममता से उन्हें गोद में लेती है।

अतः जीसस उर्फ ईसामसीह की जीवनी को कपोलकल्पित सिद्ध करने में जनसामान्य को यथार्थ ज्ञान कराना ही लेखक का एकमात्र उद्दिष्ट है। अपने-आपको इस्लामी, ईसाई या किसी अन्य पंथी कहलाना अधिकतर

लोगों के लिए एक औपचारिकता होती है। उसकी सचाई या तर्कसिद्धता जाँचने की आवश्यकता उन्हें कभी प्रतीत नहीं होती। किन्तु जो भावनाप्रधान, धार्मिक, आध्यात्मिक भावुक प्रवृत्ति के लोग होते हैं उन्हें जीसस के अस्तित्व की सत्यासत्यता जाननी आवश्यक है।

उसी प्रकार इतिहास के अध्येताओं के लिए भी जीसस की यथार्थता जाननी आवश्यक होगी। ऐसे विविध दृष्टि से इस विषय को बड़ा रोचक तथा महत्त्वपूर्ण समझकर अगले प्रकरणों में प्रस्तुत विवरण को खुले मन से पढ़कर पाठक उस पर चिंतन करें।

जो बात ईसाई पंथ की है, वही इस्लाम की है। दोनों वैदिक सभ्यता के खंडहर हैं। अन्तर केवल इतना है कि ईसाई पंथ प्रवर्तक ईसामसीह एक कपोलकल्पित व्यक्ति है जबकि मोहम्मद पैगंबर वास्तविक व्यक्ति थे।

कृस्तनीति यानी कृष्णनीति नामानुसार ईसाई पंथ पुस्तक बाइबल में प्राप्त उपदेश भगवद्गीता से भिन्न नहीं है। बाइबल में प्रस्तुत दोहे (Psalm) 'साम' कहलाकर स्पष्टतया ईसाइयों की सामवेदी परंपरा दर्शाते हैं। उसी प्रकार मोहम्मद का कथन है कि (ईसाई या यहूदियों से) प्राचीनतम धर्मग्रन्थों का (यानी वेदों का) पुनस्कार ही उनका उद्देश्य है।

मस्जिद की छत से की जाने वाली नमाज की पुकार का ताल, सुर तथा ठेका भी ठेठ सामगायन प्रणाली का ही होता है।

इस प्रकार इस्लाम तथा ईसाई पंथों में उनके वैदिक स्रोत के विपुल प्रमाण विद्यमान हैं।

अध्याय २

चिर-स्थायी दुराग्रही सन्देह

कृस्ती-पंथ पिछले १६०० वर्षों मे विश्व-व्यापकता की इतनी ऊँची अलभ्य सीमाओं पर पहुँच चुका है कि जन-साधारण एकदम हक्का-बक्का रह जाएगा यदि उसे बताया जाए कि इस (कृस्ती) ईसा-पंथ का कोई तत्त्व, आधार है ही नहीं—यह निराधार, झूठा तथा भ्रामक है।

यह आम धारणा कि कृस्त (ईसा)-पंथ का आविर्भाव प्रारम्भ जीसस क्राइस्ट (कृस्त) से ही हुआ होगा, सामान्य जन-चिन्तन, धारणा के बड़े दोष को उजागर कर देती है। जनता तो बातों को सदैव के लिए स्वीकार, मान्य कर लिया करती है। कृस्त-पंथ इस बात का सुस्पष्ट, जीता-जागता उदाहरण है कि समय बीतते-बीतते कोई भी मात्र सुनी-सुनाई जनश्रुति किस प्रकार कट्टर आस्था विश्वास का रूप ले लेती है। लोग पहले यह विचार बना लेते हैं कि जीसस (ईसा) ने किसी महान् आदर्श कार्य के लिए अपना बलिदान किया था और फिर अपना मन भी उसी अनुरूप ढालने का यत्न करते हैं कि हम भी उसी का अनुसरण करना चाहिए। किन्तु जैसा आस्कर विल्डे ने कहा था, "कोई बात मात्र इसीलिए सत्य होनी जरूरी नहीं है (क्या) कि एक व्यक्ति उसके लिए मर जाता है, अपने प्राण गँवा देता है।"

इस प्रकार, जबकि साधारण, भोले-भाले लोग किसी भी बात के मूल से अनजान रह जाते हैं तभी जानकार, निपुण, निष्णात व्यक्ति लुप्त आधार के बारे में सतर्क गम्भीर चुप्पी बनाए रखते हैं क्योंकि कबूतरों के झुंड के समान हो वे भी ऐसे बाह्य आडम्बर में ज्यादा रुचि रखते हैं जहाँ वे शक्ति और सत्ता के अपने घोंसले पर, अड्डे बना सकें।

फिर भी गतिशील पंडुकियों की कोटि-कोटि सन्तानों में से कुछ पक्षिगण

उक्त दोष का आभास कर लेते हैं और अपने साथियों को उस ढह सकने वाली सदोष-संरचना के प्रति सावधान करने के लिए यदा-कदा स्वर गुँजाते रहते हैं और भविष्य में स्वयं उनको भी नष्ट कर देने वाली संरचना को बताते रहते हैं।

बड़े लोगों की भूमिका ऐसी ही होती है। वे तो दो रूप में महान् होते हैं—प्रथमतः वे मूल दोष को खोज पाते हैं और दूसरा, उस सम्बन्ध में (लोगों को सत्य बताकर सचेत, सावधान करने के लिए) शोर-शराबा करने का साहस करते हैं।

कृस्त-पंथ के सम्बन्ध में भी समय-समय पर ऐसे लोग हुए हैं—सामने आए हैं जिनको ज्ञात हो गया था कि जीसस (ईसा) नामक कोई व्यक्ति हुआ ही नहीं और इसीलिए उसके नाम की कोई शिक्षाएँ हो ही नहीं सकतीं।

उसी (तथ्य) से संकेत, इंगित लेकर हमने, इस ग्रंथ में, स्पष्ट कर दिया है कि कृस्त (क्राइस्ट) कृष्ण का ही मिथ्या-नाम, अयथार्थ नामकरण है और कृस्त (क्रिश्चियन) पंथ में चली आ रही विकृतियाँ हिन्दू देव-पद्धति—धर्म-विज्ञान, दार्शनिकता और कर्म-काण्ड ही हैं।

चूँकि कोई जीसस था ही नहीं, इसलिए तथाकथित कृस्त-युग के प्रारम्भिक ६० से ७० वर्ष तक जीसस क्राइस्ट के बारे में कोई चर्चा ही नहीं थी। मिथ्यावाद उसके बाद शुरू हुआ। फिर भी, ऐसे विवेकशील सैकड़ों व्यक्ति रहे होंगे जिनको जीसस के अस्तित्व पर, उसकी विद्यमानता पर सन्देह रहा होगा। किन्तु या तो उन लोगों ने अन्य लोगों के साथ अपने सन्देहों पर विचार-विनिमय करने की परवाह नहीं की, अथवा जीसस-समर्थक विपुलता के शोर-शराबे में उनकी आवाजें खो गईं, गुम हो गईं। किन्तु आधुनिक युग में पिछले दो शतकों में ऐसे गौरवशाली व्यक्ति सम्मुख आए हैं जिनके असहमति के स्वर ऊँचे उठे हैं और बहुसंख्यक-प्रशंसा के तुमुल घोष में भी सादर सुने गए हैं।

विल डूरन्ट ने विवाद का सारांश इस प्रकार रखा है—

"जीसस ४ ईसवी पूर्व—ईसा पश्चात् ३०"……"क्या कृस्त का अस्तित्व था? कृस्त-पंथ (क्रिश्चियनिटी) के संस्थापक जनक की जीवन-कथा मानव-अवसाद (दुःख) कल्पना और आशा का उत्पाद मिथ्या ही है?"

"१८वीं शताब्दी के प्रारम्भ में बोलिंगब्रोक की मित्र-मंडली, वोल्टेयर को भी चौंकाते हुए निजी चर्चा में जीसस की कभी भी विद्यमानता की सम्भावना को नकारती थी। वोल्ने ने भी सन् १७९१ में अपनी पुस्तक 'रुइन्स आफ एम्पायर' में इसी शंका को पुष्ट किया था। नेपोलियन ने सन् १८०८ में वीलैंड नामक जर्मन विद्वान् से भेंट करने पर पूछा था कि क्या वह क्राइस्ट की ऐतिहासिकता में विश्वास रखता है?"[1]

जीसस की ऐतिहासिकता के बारे में ऐसे चिरस्थायी, आग्रही सन्देहों और तथाकथित क्रास्टी (ईसाई) सिद्धान्तों मतों की वैधता के बारे में शंकाएँ होते हुए भी क्रास्टी-पंथ पर अपना अत्यधिक शक्तिशाली और सुदृढ़ अधिकार रखने वाले पादरी-साम्राज्य ने सामान्य जनों को सार्वजनिक, खुले रूप में अपनी शंकाओं की चर्चा करने से पूरी तरह निरुत्साहित, हतोत्साहित किया।

चूँकि पश्चिमी देशों ने १८वीं शताब्दी से समस्त राजनीतिक सत्ता स्वयं में स्वाधिकृत कर ली है और पश्चिमी शिक्षा व राजशासन-तन्त्र पर उनके ईसाई पादरी वर्ग का पूर्ण प्रभाव हो चुका है इसलिए ईसा की ऐतिहासिकता के बारे में किसी भी प्रकार की गम्भीर पूछ-ताछ, छान-बीन को लोगों के सामने खुलकर आने की छूट, अनुमति दी ही नहीं गई। किन्तु २०वीं शताब्दी के आने से कट्टरवादिता, कट्टरवादिता शिथिल हो जाने के साथ ही आधुनिक मानस की दूरगामी क्रियाओं में एक सर्वाधिक महत्त्वशाली कलाप बाइबल की उच्चतर समीक्षा—इसकी आधिकारिकता और सत्यता पर निरन्तर बढ़ता आक्रमण रहा है"—विल डुरन्ट का कहना है।

"इस २०० वर्षीय युद्ध की पहली भिड़न्त" विल डुरन्ट ने कहा है, "हैम्बर्ग में पूर्वी-भाषाओं के प्रोफेसर हर्मन रीमारस ने चुप्पी में की थी, सन् १७६८ में अपनी मृत्यु के समय वह सावधानी से क्राइस्ट के जीवन पर १४०० पृष्ठों की एक पाण्डुलिपि अप्रकाशित छोड़ गया था। छः वर्षों के बाद गोटहोल्ड लेसिंग ने अपने मित्रों के विरोध पर इसके कुछ अंशों को

१. विल डुरन्ट लिखित 'सभ्यता की कहानी' (दि स्टोरी आफ सिविलाइजेशन), पृष्ठ ५५५, खण्ड III।

वोल्फेनबुटल अंशों के रूप में प्रकाशित कर दिया। सन् १७९६ में हर्डर ने मैथ्यू मार्क और ल्यूक के क्राइस्ट में तथा सेंट जॉन के गॉस्पल के क्राइस्ट में स्पष्टतः असमाधेय मतभेद अन्तर को साफ तौर पर प्रस्तुत कर दिया।"

सन् १८२८ में हीनरिच पालस ने अपनी ११९२ पृष्ठों की पुस्तक में जीसस के जीवन की समीक्षा करते हुए तथाकथित चमत्कारों का श्रेय प्राकृतिक कारणों को दे दिया।

किन्तु डेविड स्ट्रॉस ने 'जीसस का जीवन' (लाइफ आफ जीसस) नामक अपने निडर साहसी और मौलिक ग्रन्थ में यह विचार प्रस्तुत कर दिया कि लोकोत्तर, अति-प्राकृतिक तत्त्व को 'मिथ', मिथ्या की श्रेणी में रखना चाहिए। सन् १८३५-३६ में प्रकाशित उस विशाल ग्रन्थ ने एक भयंकर विवाद को प्रज्वलित कर दिया।

सन् १८४० में एक अन्य लेखक ब्रूनो बौर ने भावपूर्ण उत्कट विवादों-रचनाओं की एक शृंखला प्रारम्भ कर दी, जिसका उद्देश्य यह प्रदर्शित करना था कि जीसस मात्र मिथ्या कल्पना थी, यह उस मत का वैयक्तिक मनगढ़न्त रूप था जो दूसरी शताब्दी में यहूदी, यूनानी और रोम की देव-धर्म-विज्ञान पद्धतियों के अवमिश्रण से निसृत हुआ था। सन् १८६३ में अर्नेस्ट रेनान की पुस्तक 'क्राइस्ट का जीवन' (लाइफ आफ क्राइस्ट) ने अपने युक्ति-चातुर्य में लाखों लोगों को सावधान चमत्कृत करते हुए, और अपने गद्य-लेखन द्वारा लाखों लोगों को सम्मोहित करते हुए जर्मन-आलोचना को एक स्थान पर संग्रहीत कर दिया और गॉस्पल की समस्याओं को सम्पूर्ण शिक्षित संसार के सामने प्रस्तुत कर दिया।

"फ्रांसीसी शाखा शताब्दी के अन्त में अब्बे लोइजी में अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच गई जिसने बाइबल के उत्तरार्द्ध (न्यू टेस्टामेंट) की ऐसी कठोर पाठ्यगत समीक्षा, आलोचना की कि कैथोलिक चर्च ने विवश होकर उसे और अन्य आधुनिकतावादियों को जाति-बहिष्कृत कर दिया। इसी बीच पिअर्सन, नाबर और मटास की डच शाखा ने इस आन्दोलन को आगे चरम-बिन्दु तक बढ़ाने के लिए लगातार कठोर श्रम करते हुए जीसस की ऐतिहासिक वास्तविकता से इन्कार किया। जर्मनी में, आर्थर ड्रूस ने इस नकारात्मक निष्कर्ष की परिणति सन् १९०६ में परिभाषात्मक सिद्धान्त में

कर दी, और इंग्लैंड में डब्ल्यू० बी० स्मिथ तथा जे० एम० रोबर्टसन ने भी ऐसे ही 'न'-कार के पक्ष में तर्क दिए। दो शताब्दियों के इस वाद-विवाद का निष्कर्ष क्राइस्ट का समूलोच्छेदन प्रतीत हुआ?'

अतः डूरन्ट प्रश्न करता है—''क्राइस्ट के अस्तित्व का कोई प्रमाण कहीं है? जोसेफस की पुस्तक 'ज्यूस (यहूदियों) की प्राचीनता' (एंटीक्वीटीज आफ दि ज्यूस) (ईस्वी सन् ९३') में प्राचीनतम गैर-ईसाई सन्दर्भ मिलता है।

जोसेफस ने प्रत्यक्षतः वही अंकित कर दिया है जो उसके समय के प्रारम्भिक ईसाई नेताओं ने लोगों को सार्वजनिक तौर पर बताना शुरू कर दिया था अर्थात् 'इस युग (समय) में एक पवित्र मानव, जीसस नाम से, हुआ यदि उसे मानव कहा जाए तो, क्योंकि वह अलौकिक (चमत्कारी) काम करता था और उसने आदमियों को शिक्षित किया, उन्हें सिखाया तथा आनन्दपूर्वक सत्य को ग्रहण किया। उसका अनुसरण अनेक यहूदियों ने और अनेक यूनानियों ने किया था। वह मसीहा—देवदूत—पैगम्बर था।''

किन्तु डूरन्ट ने प्रत्यक्षतः पर्यवेक्षण किया है कि—''रोमनों को खुश करने के लिए समान रूप से व्यग्र एक यहूदी द्वारा क्राइस्ट की उच्च प्रशंसा—दोनों ही उस समय ईसाइयत से संघर्ष में लिप्त थे—उक्त उद्धरण को सन्देह-युक्त बना देती है और ईसाई विद्वान् इसे लगभग पूर्ण निश्चय के साथ ही प्रक्षिप्तांश कहकर ठुकरा देते, अस्वीकार कर देते हैं।''

यहूदी वाङ्मय—तालमुद—में 'नज़ारेथ के येशवा' के सन्दर्भ उस काल के हैं जब कृस्त-पंथ को सार्वजनिक रूप में अनुयायी प्राप्त होने लगे थे उसे मान्य करने लगे थे अतः उन्हें किसी स्वतन्त्र खोज, अन्वेषण पर आधारित नहीं ठहराया जा सकता।

गैर-ईसाई साहित्य में प्राचीनतम ज्ञात ईसा-सम्बन्धी सन्दर्भ उस पत्र में मिलता है जो कनिष्ठ प्लीनी ने ईसाइयों के प्रति व्यवहार करने के बारे में ट्राजन का परामर्श प्राप्त करने के लिए लिखा था।

लगभग पाँच वर्ष बाद रोमन सम्राट् नीरो द्वारा ईसाइयों को पीड़ित

१. 'सभ्यता की कहानी', पृष्ठ ५५३-५५४, खण्ड III।

करने का वर्णन टैसिटस ने किया है। उसके अनुसार ६४० ईसवी में सम्पूर्ण रोमन साम्राज्य में ईसाइयों की विद्यमानता थी। डूरन्ट उस कथन को प्रक्षिप्त अंश मानकर शंका व्यक्त करता है।

लगभग ६१ वर्षों के बाद फिर सुएटोनियस पीड़ाओं-यातनाओं का उल्लेख करता है और वर्णन करता है कि 'क्राइस्ट द्वारा आन्दोलित किए जाने पर यहूदियों द्वारा सार्वजनिक उपद्रव किए गए और इस कारण उन (यहूदियों) को निर्वासित किया गया।''

विल डूरन्ट यह टिप्पणी करने में सही है कि ''ये सन्दर्भ क्राइस्ट की अपेक्षा कृस्त-पंथियों (ईसाइयों) के अस्तित्व को, उनकी विद्यमानता को ही सिद्ध प्रमाणित करते हैं।''[1]

हमारे अपने इस काल में भी कृस्त-पंथ, ईसाई-मत सारी दुनिया में फैला हुआ विशाल-संख्यक अनुयायियों वाला एक धर्म है, किन्तु प्रश्न यह है कि क्या यह इतना अतिभव्य, उन्नत निर्माण बिना किसी नींव, आधार के ही है?

उक्त जाँच-पड़ताल करने पर हम पाते हैं कि 'नज़ारेथ के येशवा' शब्दावली भी हिन्दू शब्दावली 'नन्दरथ के केशव' की अपभ्रंश ही है। भगवान् प्रभु कृष्ण को प्रायः 'केशव' ही सम्बोधित किया जाता था।

जीसस क्राइस्ट का आध्यात्मिक, अलौकिक आनन्द प्राप्त करने के उद्देश्य से अपने अनुयायियों, शिष्यों को स्वार्थपूर्ण इच्छाओं, व्यसनों और क्रूरता का परित्याग कर हृदयों को निर्मल, स्वच्छ करने का परामर्श देना हिन्दू धर्म की शिक्षा का केन्द्र-बिन्दु है जो ईसा-पूर्व युगों में सम्पूर्ण प्राचीन विश्व में प्रचारित, प्रसारित किया गया था।

इस प्रश्न के उत्तर में कि क्या ये नैतिक विचार नए थे, विल डूरन्ट ने स्पष्टतः एक नकारात्मक उत्तर दिया है क्योंकि, ''क्राइस्ट की धार्मिक शिक्षा का केन्द्र-बिन्दु, सार-धर्म—भावी, आगामी न्याय और साम्राज्य—यहूदियों में पहले ही एक शताब्दी पूर्व-काल का था।''[2]

१. 'सभ्यता की कहानी', पृष्ठ ५५५, खण्ड III।
२. वही, पृष्ठ ५६७।

जीसस के धर्म-प्रचार की अवधि और उस (व्यक्ति) की मृत्यु का वर्ष भी उतना ही अज्ञात और विवादित है जितना उसके जन्म का वर्ष।

जीसस को गोलगोथा की पहाड़ी पर सूली दी गई कही जाती है। वह एक हिन्दू संस्कृत शब्दावली है जिसका अर्थ है 'गोल पशु-शाला'। स्पष्टतः यह हिन्दू कृष्ण कथा का एक अंश है जो ईसाई जनश्रुति में जुड़ा चला आ रहा है।

सूली पर चढ़ते समय कहा जाता है कि जीसस ने अति दयनीय-भाव से चीत्कार की थी—मार्क और मैथ्यू के अनुसार—"मेरे ईश्वर, मेरे परमेश्वर! तूने मेरा परित्याग क्यों नहीं कर दिया?"

किन्तु यह जानते विचारते हुए कि इस प्रकार का असहाय नैराश्यपूर्ण उद्गार सु-समाचार लेखकों द्वारा प्रतिपादित जीसस के धर्म-संदेश से भिन्न, असंगत होगा, लूके ने जीसस को यह उच्चारित करते हुए लिखा है—"पिता, मैं अपनी आत्मा, चेतना तेरे हाथों में सौंपता हूँ।"

तीन दिन बाद, जेम्स और सलोम की माँ मेरी के साथ मेरी मेगडलेन जीसस की कब्र पर गई कही जाती हैं किन्तु उनको वह कब्र खाली, बिना शव मिली बताते हैं। यह इस बात का एक और साक्ष्य है कि चूँकि जीसस का जन्म हुआ ही नहीं था और न ही उसने कोई पाप, अपराध किया था, इसलिए उसे कभी सूली पर न तो चढ़ाया गया और न ही दफनाया गया। अतः स्वाभाविक सहज ही है कि उसके शव, मृत-देह का कोई पता ही नहीं रहा। प्रसंगवश कह दिया जाए कि मेगडलेन संस्कृत नाम मौद्गल्य ही है।

चालीस दिन बाद क्राइस्ट स-शरीर स्वर्ग पहुँच गए बताए जाते हैं। हिन्दू धार्मिक-कथा में पाण्डव-भ्राताओं में ज्येष्ठतम युधिष्ठिर स-शरीर ही स्वर्ग में जा पहुँचे थे।

संख्यावाचक ४० अरबों और यहूदियों का शव पद्धतियों की जन्मस्पर्श-[illegible] प्रभावान्तर ही है।

यदि ईसाई-पंथ को जीसस के वास्तविक जीवन से उत्पन्न अपनी विशिष्ट परम्पराएँ होतीं तो जीसस के मृत्यु-दण्ड और उसके स्वर्ग स-शरीर पहुँचने के बीच का अन्तराल ठीक ४० दिन का ही यथार्थतः होना जरूरी न

होता।

यह संख्या भी एक अन्य विवरण है जो जीसस-कथा के झूठे ताने-बाने की ओर स्पष्ट इंगित करता है।

इस प्रकार, जीसस-कथा का हर भाग, प्रत्येक विवरण मिथ्या, झूठा, जाली, अ-प्रामाणिक प्रतीत होता है।

अध्याय ३

निर्णायक मंदिर-नियंत्रण विवाद

जीसस क्राइस्ट की ऐतिहासिकता पर अपनी ही पुस्तक में प्रश्न-चिह्न लगानेवालों में आधुनिकतम व्यक्ति बर्कबेक कालेज, लंदन का प्रोफेसर जी० ए० वैल्स है।[1]

उसकी पुस्तक परिपूर्ण रूप में विकसित, युक्तियुक्त, लगभग ४१६ स्रोतों पर तर्काधारित है जिनकी सूची उक्त पुस्तक के अंत में दी गई है।

यद्यपि श्री वैल्स महोदय ने यह स्पष्ट नहीं किया है कि नए मत के रूप में ईसाइयत को किसने कब और क्यों विकसित किया अथवा उस क्षेत्र का मूल धार्मिक विश्वास क्या था जहाँ से ईसाई मत का प्रारम्भ हुआ था, फिर भी श्री वैल्स निर्णायक रूप में यह तो सिद्ध करने में सफल हो गए हैं कि जीसस क्राइस्ट कोई ऐतिहासिक व्यक्ति सत्य नहीं है।

हमारी सम्भवत यह प्रथम पुस्तक होगी जो स्पष्ट करेगी कि ईसाई मत (कृस्त-पथ) हिन्दू-आस्था का पूर्गपोय-वैविध्य, रूप है जो हिन्दू अवतार भगवान् कृष्ण से नाम-ग्रहण किये हैं व्युत्पन्न है। इस अध्याय में हम प्रोफेसर वैल्स द्वारा प्रस्तुत प्रमाणों से पाठकों को अवगत कराएँगे और उससे यह दर्शा देंगे कि किस प्रकार ईसाई मत का प्रादुर्भाव, प्रारंभ एक कृष्ण-मंदिर-नियंत्रण विवाद से विमत-वर्गी विरोधी गुट के रूप में ही हो गया था।

प्रोफेसर वैल्स कहते हैं कि, "जीसस को ईसाई-मत के मूल में भूमिका स्पष्ट करने का आह्वान करने पर विभिन्न समर्थक सभी प्रकार के विभिन्न बयान प्रस्तुत करते हैं, उदाहरण के लिए, प्रोफेसर बर्कले सन्देह पुनर्जीवन और इस दावे को त्याग देते हैं कि जीसस ने नैतिकता के किसी नए प्रकार के

1. प्रोफेसर जी० ए० वैल्स विरचित 'डिड जीसस ऐक्जिस्ट ?'

मानदण्डों की स्थापना की थी।"[1] अन्य धर्म-विज्ञानियों ने ईसा को स्वतंत्रता-सेनानी बना दिया है जबकि बहुत-से अन्य लोग स्वीकार करते हैं कि ईसा के बारे में लगभग रंच-मात्र भी ज्ञात नहीं हो पाया है।

प्रोफेसर ट्रिलिंग स्वीकार करते हैं कि ईसा के जीवन की किसी भी एक तारीख को निश्चयात्मकता से निर्धारित नहीं किया जा सकता और (कि) यह भी वास्तव में आश्चर्य की बात ही है कि आधुनिक वैज्ञानिक विधियों, प्रचुर-सामर्थ्य-श्रम तथा प्रवीणता होने पर भी अत्यन्त नगण्य ही अभी तक स्थापित, सिद्ध किया जा सका है।[2]

एक नए विश्वास, मत ईसाई-पंथ का प्रकटीकरण भी मात्र एक निष्कर्ष ही है क्योंकि बाइबल कुछ परस्पर-विरोधी, असम्बद्ध तत्त्वों, बातों का संग्रह है जैसे यहूदी पूर्व-विधान, पॉल और कोरेन्थियों के मध्य—उदाहरणार्थ—हुई कुछ विवादग्रस्त निजी धार्मिक सैद्धान्तिक पत्रावली और सुसमाचार लेखकों द्वारा परस्पर मतभेदवाली, चार ईसाई-धर्म-चर्चाएँ। एक पुस्तक में संग्रहीत ऐसे बेमेल, विषम तत्त्व क्या किसी नए सिद्धान्त, धर्म का प्रतिपादन करते हैं?

जीसस के जीवन के बारे में प्रोफेसर वैल्स कहते हैं कि, "उनके जीवन के बारे में जो कुछ थोड़ी-बहुत जानी जा सकनेवाली तथाकथित बातें हैं वे (इतनी) अत्यधिक गँवारू, अशोभन हैं और उनसे जीसस पूजा की वस्तु नहीं बन पाता। (नवीनतम सर्वेक्षण देखें—कार्डानिंग रेवरेंड पी० जी०, दि चर्च एंड जीसस, लंदन, १९६८, मेक आर्थर एच० 'इन सर्च आफ़ दि हिस्टारिकल जीसस', लंदन, १९७०)।[3]

ईसाई-धर्म-सिद्धान्तों से पूर्व में भी लिखे होने पर भी पॉल के पत्र "ऐतिहासिक जीसस के बारे में विस्मयाकुलक रूप से न केवल चुप्पी ही साधे हुए हैं अपितु पॉल के पत्रोंवाला जीसस कुछ बातों में तो धर्म-सिद्धांतोंवाले

१. दि माइंड ऑफ़ सेंट पॉल, फोनटाना, १९६५।
२. डब्ल्यू० ट्रिलिंग, डसेलडोर्फ, १९६९ की जर्मन पुस्तक 'फ़ेगन बर''' जेसू'।
३. 'डिड जीसस ऐक्जिस्ट ?', पृष्ठ ३।

जीसस से बिल्कुल असंयोज्य, विरोधी है।

सभी चारों धर्म-सिद्धान्त जिनको धर्म-विज्ञानी ७० ईसवी के लगभग की तारीख का अनुमान करते हैं ईसा-पश्चात् पहली शताब्दी के अन्त के निकट ही लिखे गए होंगे"—प्रोफेसर वैल्स का कथन है।

जब एक पीढ़ी के बाद दूसरी पीढ़ी के लाखों व्यक्तियों वाले व्यापक संसार में ३० से ६० वर्ष पूर्व जन्मे किसी एक पैगम्बर, देवदूत के बारे में बार-बार पुनः कुछ लिखते हैं तब उस लिखी बात के ऊपर विश्वास तभी जमाया जा सकता है जब अन्य निर्विवाद साक्ष्य द्वारा भी उसकी पुष्टि हो जाए।

प्रोफेसर वैल्स के अनुसार, "क्रुस्त (क्राइस्ट)-विज्ञान की समस्या यह (प्रदर्शित करना) है कि जीसस किस प्रकार पूर्ण ईश्वर और पूर्ण मनुष्य हो सकता है, तथा फिर भी सचमुच एक व्यक्ति ही हो।"[1]

यह समस्या अत्यन्त सरल है यदि प्रोफेसर वैल्स को यह अनुभूति होती कि क्राइस्ट (क्रुस्त) तो हिन्दू अवतार कृष्ण का एक भिन्न उच्चारण-मात्र है। हिन्दू परम्परा में कृष्ण स्वयं परमेश्वर हैं जिसने मौलिक नियमानुसार मानव-संसार में नियामक भूमिका निभाने के लिए एक मनुष्य के रूप में ही जन्म लिया था।

उन लोगों के लिए, जो कल्पना करते हैं कि यहूदी और गैर-ईसाई साक्ष्य सभी प्रकार के सन्देहों से परे जीसस के अस्तित्व की पुष्टि, विद्यमानता सिद्ध कर देते हैं, श्री वैल्स कहते हैं कि प्रधान यहूदी इतिहासकार जोसेफस है। किन्तु यदि जोसेफस लगभग १०० ईसवी के आसपास दिवंगत हो गया था, वह प्रत्यक्षदर्शी किस प्रकार हो सकता था? और उसने भी तो क्रुस्त-धर्मियों (क्रिश्चियनों) का कोई उल्लेख नहीं किया है।

जोसेफस के इतिहास-लेखन में जीसस के बारे में मात्र दो उद्धरणों के सम्बन्ध में श्री वैल्स ने कहा है कि 'इनमें से बड़ा उद्धरण काफी निर्णायक रूप से पूर्णतया ईसाई-प्रक्षिप्तांश दर्शाया जा चुका है। यह एक अति वर्णनात्मक बयान है जो कोई यहूदी—रूढ़िवादी यहूदी—कभी नहीं

१. 'डिड जीसस एग्ज़िस्ट ?', पृष्ठ ८।

लिख सकता था। यदि जोसेफस ने सचमुच ही उसमें विश्वास किया होता जो यहाँ वह कह रहा बताया जाता है तो उसने अपनी टिप्पणी मात्र दस पंक्तियों तक ही सीमित न रखी होती। इतना ही नहीं, यह अवतरण यहूदियों की दुर्दशा से सम्बन्धित सन्दर्भ में आता है जिससे इसका कोई सरोकार नहीं है···अवतरण के अन्य पक्ष···जीसस को न केवल ईसाई ढंग से देखते हैं बल्कि लूके द्वारा प्रतिपादित प्रकार में विशिष्टरूपेण देखते हैं··· ऐसे कार्य, निर्माण हैं जो निश्चित रूप से जोसेफस को उपलब्ध न थे···दूसरे अवतरण (उद्धरण) में उस एक असंयमित उच्च पादरी सदुशियन के बारे में एक अनुच्छेद में आधा दर्जन शब्द हैं जो ईसवी ६२ में सन्हेद्रिन के सम्मुख 'कानून को तोड़नेवाले' के रूप में अनेक व्यक्तियों को लाया था और 'उनको पत्थर फेंककर मारने के लिए सौंप दिया था।' उन शिकार व्यक्तियों को जेम्स और खास अन्य वर्णन किया गया था तथा जेम्स को विशिष्टतया 'जीसस का भाई, उसको क्राइस्ट पुकारा गया' बताया। यह असंभाव्य है कि जोसेफस ने जीसस का उल्लेख चलते-चलते, अनायास ही यहाँ कर दिया हो जबकि वह इसका उल्लेख अन्यत्र कहीं नहीं करता।"[1]

अनेक विद्वान् 'जीसस का भाई, उसको क्राइस्ट पुकारा गया' शब्दों को प्रक्षिप्तांश मानते हैं। सम्भावना है कि जोसेफस की पाण्डुलिपि पढ़ते समय किसी ने जेम्स को 'जीसस का भाई, उसको क्राइस्ट पुकारा गया' मानकर एक पार्श्व टिप्पणी अंकित कर दी हो। उस पाण्डुलिपि से तैयार की गई परवर्ती प्रतियों में लेखक ने मूल-पाठ के साथ ही उक्त पार्श्व-टिप्पणी को मिला दिया हो।

(जोसेफस द्वारा उल्लेखित) जेम्स स्वयं ही एक यहूदी था, न कि एक ईसाई।

जब यहूदी पादरी गुरु अर्थात् रब्बी लोग जीसस का वर्णन शुरू करने लगते हैं तो "वे अपने तिथिक्रम में इतने अस्पष्ट, अस्थिर, अनिश्चित हैं कि वे जीसस के लिए जिन तारीखों का उल्लेख करते हैं, उनमें २०० वर्षों तक

१. 'डिड जीसस ऐग्ज़िस्ट ?', पृष्ठ १०-११।

का प्रचार आ गया है।'[1] ऐसा इस धारणावश हुआ कि वह नाम किसी ऐतिहासिक व्यक्ति से सम्बद्ध था।

एक आधुनिक यहूदी विद्वान् गोल्डस्टीन[2] स्वीकार करता है कि ईसवी युग की प्रथम सात सौ शताब्दियों के विशाल रब्बी-साहित्य में जीसस-सम्बन्धी पाँच अधिकृत अवतरण निर्णायक रूप से (जीसस की) ऐतिहासिकता को सिद्ध प्रमाणित नहीं करते क्योंकि इनमें से किसी को भी पर्याप्त रूप से पूर्वकालिक स्थापित नहीं किया जा सकता। अधिकांश ईसाई विद्वानों ने स्वीकार किया है कि जीसस के बारे में विश्वसनीय जानकारी के मूल-स्रोत के रूप में तालमुद निरर्थक बेकार है। बौर्नकम्म घोषणा करता है कि इस (तालमुद) ने जीसस को एक जादूगर, एक प्रलोभक और राजनीतिक आन्दोलनकर्ता बना दिया है और उसकी निन्दा, भर्त्सना को उचित ठहराने का यत्न किया है।

अन्य गैर-ईसाई सन्दर्भ भी (जिन्हें प्रो० वैल्स ने 'पागान' कहा है) जिन्हें ईसा-युग के प्रथम १५० वर्षों में लिखा गया, समान रूप से अविश्वसनीय हैं।

मार्क (१५. ३३) ने तीन घंटे तक छाए रहे उस घटाटोप अंधकार का उल्लेख किया है जिसने जीसस को सूली पर चढ़ाए जाने पर समस्त पृथ्वी को आच्छादित कर दिया था; किन्तु चूँकि, ईसाई-धर्मग्रन्थों के अनुसार जीसस की मृत्यु पास्कल (ईस्टर) के समय हुई थी, उस समय सूर्य-ग्रहण होना असम्भव है। खगोलशास्त्रीय नियम के अनुसार सूर्य-ग्रहण केवल नव-चन्द्र काल में ही हो सकता है।

टैसीटस में क्राइस्ट या क्रिश्चियनिटी के बारे में सन्दर्भ निरर्थक, निस्सार है क्योंकि टैसीटस ने ईसवी सन् १२० के आसपास अपने वर्णन [illegible] ज्ञान के कारण उसने मात्र ईसाई दृष्टिकोण, धारणा को ही अंकित कर दिया। यदि टैसीटस ने सूली चढ़ाने की जानकारी किसी स्वतंत्र रोमन स्रोत

---

१ 'दि जीसस लीजेण्ड', पृष्ठ १२।

२ जीसस द्रान्स आई फेदर, लंदन, १९६०—लेखक जी० बौर्नकम्म न्यू टैस्टामैंट के प्रोफेसर, हीडलबर्ग, पृष्ठ २८।

से निष्कर्ष-स्वरूप ग्रहण की होती तो उसने पीलेट को (मुख्तार) राज्यपाल घोषित न किया होता। टिबेरियस के सम्मान में पीलेट द्वारा समर्पित एक भवन के बारे में सन् १९६१ में पाए गए एक शिलालेख में पीलेट को 'जूडिया का परिपूर्ण' कहा गया है।[1] इतना ही नहीं टैसीटस द्वारा प्रयुक्त उपाधि एक पुरावशेष ही है क्योंकि आभ्यन्तर धारण करनेवाले प्रान्तीय राज्यपाल क्लाडियस के काल से ही अर्थात् ईसवी सन् ४१ से ही राज्यपाल 'श्रीमन्' उपाधि ग्रहण करने लगे थे। टैसीटस ने भी क्राइस्ट उपाधि का उसी प्रकार इस्तेमाल किया है मानो यह नाम जीसस के बजाय खास नाम ही था।

पीलेट द्वारा जीसस के मृत्युदंड का तथाकथित अविवादित अभिलेख टैसीटस और धर्मग्रन्थों का यही एक अवतरण, उद्धरण है। ये सब सुनी-सुनायी बातें ही निकलती हैं।

यह विचार, कि जीसस को पीलेट के अधीन मृत्युदंड दिया गया था, ईसवी सन् ११० के आसपास तब ही सत्य माना गया था। यद्यपि न तो यहूदियों-विधर्मियों ने और न ही ईसाई-साहित्य ने मार्क से पहले उसका कोई उल्लेख किया था।

डिओ कैसियस ने, जिसने ईसवी २२९ के परवर्ती काल में भी रोमन का इतिहास लिखा था, ईसाइयों या ईसाई-पंथ के बारे में लेशमात्र उल्लेख भी नहीं किया है।

पोर्फीरी का निष्कर्ष है कि सुसमाचार लेखक सामान्यतः अविश्वसनीय हैं और उनकी लिखी सामग्री ईजाद, काल्पनिक झूठी मात्र है।

सेल्सस ने, जो जीसस को 'पथेरा' नामक एक सैनिक की अवैध सन्तान मानता था, यह जानने के लिए कोई स्वतन्त्र रूप से जाँच नहीं की कि जीसस का वास्तव में जन्म हुआ भी था। उसने जीसस के जीवन-वृत्त के बारे में अफवाहों पर ही विश्वास कर लिया।

जीसस के पाँच चुने-चुनाए अनुयायी थे—मथाई, नक्काई, नेत्जर, बूनी और टोडाह। कुछ विद्वान् अयुक्तियुक्त तर्क देते हैं कि बूनी जान या

---

१. 'हेलेनिक स्टडीज के जर्नल' में डा० आर० ई० विट्ट का लेख पृष्ठ-२२४ (१९७२)-२२३-२२५।

निकोडेमस है मक्काई मूके है और मेत्वार एन्तु है।
लिकोडेमस है मक्काई मूके है और सेलार एन्तु है। ईसाई-साहित्य के रूप में

पोल के नाम से सम्बन्धित पत्रों को प्रारम्भिक ईसाई-साहित्य के रूप में स्वीकार किया गया है। यदि जीसस ईसवी ३० के आसपास होता, तो ईसवी ६० के आसपास लिखे गए पत्रों ने ऐसा उल्लेख कर दिया होता।

श्री वैल्स टेसालोनियनों को दूसरे पत्र की और कोलोसियनों तथा एफेसियनों को लिखे गए पत्रों की आधिकारिकता के बारे में सन्देह करते हैं।[1] वह पत्र को 'सर्वाधिक संदेहयुक्त' समझता है क्योंकि इसमें पोल के समय विद्यमान एवं गिरजा-सम्बन्धी संगठन से भी अधिक विकसित संगठन का निरूपित किया गया है। स्वामिभक्तों को आश्रित कहा जाता है, प्रत्यक्षतः क्राइस्ट पर ही नहीं अपितु गिरजाघर के अधिकारियों पर आश्रित (जो १ पत्राचार ३ ११ की स्पष्ट अवहेलना/उल्लंघन में है) है।

श्री वैल्स का कहना है कि, "पोल विशिष्ट अभिलाक्षणिक रूप में उसके प्रति भगवान् और सूर्य का पुत्र जैसी उपाधियों का उपयोग किया है ये वो उपाधियाँ हैं जो यहूदियों में पहले ही विद्यमान थी और गैर-ईसाई धर्मों में भी थी पोल कल्पना कर लेता है कि ईश्वर ने जीसस को जब विश्व का उद्धार करने भेजा उससे पहले ही वह (जीसस) एक अलौकिक व्यक्तित्व के रूप में विद्यमान या अस्तित्व में था।"

उपर्युक्त एक अति महत्त्वपूर्ण पर्यवेक्षण है। फिर भी पोल का कथन गलत रूप में ही लगभग उन्नीस सौ वर्षों तक समझा जाता रहा है—उसकी व्याख्या अशुद्ध हुई है। उक्त कथन में यह स्पष्ट है कि पोल के दिनों में ही ईशस कृष्ण का उच्चारण जीसस क्रस्त (क्राइस्ट) होने लगा था। हिन्दू-परम्परा के अनुसार कृष्ण पृथ्वी पर वास्तव में विश्व का उद्धार करने के लिए ही अवतरित हुए थे। भगवान् कृष्ण ने 'भगवद्गीता' में स्वयं ही घोषित किया हुआ है कि वे विश्व में कानून और व्यवस्था बनाए रखने के लिए साधुओं (सज्जनों) की रक्षा करने के लिए और दुष्टों का संहार करने के लिए अवतार लेते रहते हैं। अतः, पोल सही है। यह तो संसार के लोगों ने ही उसे गलत समझा और उसके कथनों की अशुद्ध व्याख्या की है क्योंकि

१. 'डिड जीसस ऐक्जिस्ट ?', पृष्ठ १७।

पोल का मन्तव्य तो सदा कृष्ण से ही रहा है (जिसे स्वयं उसने और उसके समय, काल के यूरोपीय व अरबों ने क्रस्त (क्राइस्ट) के रूप में उच्चारण किया था)।

श्री वैल्स की शिकायत है कि पोल ने इस तथ्य का कोई संकेत नहीं दिया कि जीसस के पार्थिव शरीर का पतन कब हुआ। श्री वैल्स ने हमारे युग के प्रथम दशक में फिलस्तीन में जीसस की विद्यमानता को भी चुनौती दी है—एक ऐसी धारणा जिसके बारे में पोल से बहुत ही थोड़ा (लगभग नगण्य) साक्ष्य है। यह तो छाया को पकड़ने के लिए उसका पीछा करना है और रस्सी को साँप मानकर उसके पीछे लगने का व्यर्थ श्रम करना है। पोल सारे समय जिसकी चर्चा करता है वह भगवान् कृष्ण है जो उसके समय में इसी रूप में पूजा जाता था। उसका कोई प्रयोजन जीसस क्राइस्ट नाम से पुकारे जानेवाले व्यक्ति से न था, बल्कि मात्र ईशस कृष्ण से ही था।

इससे बोर्नकम्म का यह आश्चर्य स्पष्ट, सुबोध हो जाता है कि पाल[2] ने नजारथ के रब्बी, देव-दूत और चमत्कारी व्यक्ति के बारे में कहीं भी उल्लेख नहीं किया है जिसने कर-संग्राहकों और पापियों के साथ खाना खाया था, या शिखर पर जिस उपदेश को दिया गया था, ईश्वर के साम्राज्य की उसकी नीति-कथाओं और पाखण्डियों व लेखकों से जो उसके संघर्ष हुए थे (उनकी कोई चर्चा ही नहीं है)। उसके पत्रों में भगवान् की प्रार्थना का भी कोई उल्लेख नहीं किया गया है।[1] तथ्यतः जीसस का यह कथन कि "हमें यह भी नहीं मालूम कि हमें प्रार्थना किस प्रकार करनी चाहिए" (रोम० ८ २६), प्रार्थना के बारे में उसके अज्ञान को अपने में समेटे, छुपाए हुए है जिसक ईसाई-धर्मग्रन्थों का जीसस इन शब्दों से प्रारम्भ करता है—"तब इस प्रकार से प्रार्थना करो।"

पोल उन संघर्षों, झगड़ों के बारे में भी कुछ नहीं कहता जो एक ओर

१. 'डिड जीसस ऐक्जिस्ट ?', पृष्ठ १८।

२ जीसस ट्रान्स आई फेथर, लंदन, १९६०—लेखक जी० बोर्नकम्म, पृष्ठ ११०।

जीसस और दूसरी ओर यहूदी या रोमन सत्ताधिकारियों के मध्य हुए कहे जाते हैं।

पॉल लेख किसी चमत्कार का भी वर्णन नहीं करता जो जीसस द्वारा किया गया विश्वास किया जाता है और न ही वह किसी ऐसे धर्मोपदेश को निर्दिष्ट करता है जिसे ईसाई-धर्मग्रन्थों के अनुसार उसके द्वारा दिया गया आदरपूर्वक घोषित किया जाता है। उक्त धर्मग्रन्थों ने जीसस के जीवन-वृत्त को चमत्कारों और (धार्मिक) शिक्षाओं से ठूंस-ठूंस भर दिया है, और ऐतिहासिक रूप से उसके जीवन में अन्य कुछ है ही नहीं।

प्रोफेसर वेल्स ने कहा है "न ही पॉल जीसस की 'सभी जगह आदमी का धर्मशिष्य बनें—युद्ध करने' की शिक्षा के बारे में कुछ जान सकता था (मैथ्यू २८ : १९), अन्यथा वह यह नहीं कह सकता था कि 'क्राइस्ट ने मुझे बपतिस्मा करने, युद्ध करने के लिए नहीं भेजा'।"[1]

अन्य शब्दों में कहा जाए तो क्राइस्ट के नाम पर विश्व-भर में पिछली बीस शताब्दियों में करोड़ों-करोड़ों लोगों का धर्म-परिवर्तन मैथ्यू जैसे उन धर्मप्रचारक लेखकों द्वारा गलती से किया गया है जिन्होंने एक काल्पनिक जीसस के मुख द्वारा एक झूठा धर्मोपदेश कहलवा दिया है।

"पॉल जब जीसस की मृत्यु के बारे में भी लिखता है," प्रोफेसर वेल्स कहते हैं, "पॉल पॉन्टियस या जेरुसलम के बारे में कुछ नहीं कहता है किन्तु यह घोषित-मात्र कर देता है कि जीसस को दुर्जनों द्वारा प्रेरित किए जाने पर सूलीबद्ध किया गया था (१ कुरि० २ : ८)। पॉल इस सूली-दंड का कोई ऐतिहासिक संदर्भ प्रस्तुत नहीं करता जिसके कारण कुछ मालूम नहीं पड़ता कि उसे दफनाया कहाँ गया था और वह पुनर्जीवित किस प्रकार हो गया।"[2]

हम यहाँ पाठक का ध्यान भगवान् कृष्ण की मृत्यु-कथा की ओर आकर्षित करना चाहते हैं। पूर्ण यदु-वंश को, कृष्ण जिससे सम्बन्धित थे, एक

१. 'डिड जीसस एग्ज़िस्ट ?' पृष्ठ १९।
२. एस० जी० एफ० ब्रैंडन लिखित 'टाइम एंड मैनकाइंड', लन्दन, १९५१ पृष्ठ ११२।

ऋषि द्वारा शाप दिया गया था कि एक विशिष्ट लौह-अणि से उसका समूल सर्वनाश हो जाएगा। शाप से भयाक्रान्त होकर यदु-वंशी बालकों ने उक्त लौह-अणि को चूर-चूर कर दिया और उसके चूर्ण को समुद्र में बहा फैला दिया। उस चूर्ण से सरकंडों की उपज हुई। फिर पारस्परिक झगड़ों में विभिन्न टुकड़ियों में विभाजित यदुवंशियों ने उन सरकंडों को उखाड़ लिया और एक-दूसरे के प्राण लेने तक उनसे प्रहार करते रहे। भगवान् कृष्ण गणमान्य व्यक्तियों में अकेले रह जाने और १२० वर्ष की आयु हो जाने पर ध्यानावस्था में अपना शेष जीवन व्यतीत करने के उद्देश्य से वन-गमन कर गए, वानप्रस्थी हो गए। एक घने जंगल में एक वृक्ष के नीचे जब वे बैठे (विश्राम कर रहे) थे, तो उसी सरकंडे (काष्ठ) से बने एक तीर ने (शिकारी द्वारा फेंके जाने पर) उनके पैर में प्रवेश किया और भगवान् कृष्ण की जीवन-लीला समाप्त हो गई।

जीसस के सूली चढ़ने की कहानी को बीज मूल रूप में भगवान् कृष्ण की उपर्युक्त हिन्दू कथा में ही निःसृत, उत्पन्न देखा जाना चाहिए, जिसमें बधिक का बाण भगवान् कृष्ण की पग-थली में प्रविष्ट हो गया था और जीसस के पैर में लोहे की कील ठोक दी गई थी।

भगवान् कृष्ण की अन्त्येष्टि भारत में ही उनके मृत्यु-स्थान पर कर दी गई थी। अतः पॉल के लिए यह बिल्कुल सहज, स्वाभाविक ही था कि वह उनको दफन कर देने के बारे में कुछ भी नहीं कह सका।

जीसस की परम्परा के बारे में सामान्य रूप से पॉल की अल्पता अपर्याप्तता से केसमन चकित होता है किन्तु सूली पर चढ़ाए जाने के बारे में पॉल द्वारा साधी गई चुप्पी केसमन को आघात अवश्य पहुँचाती है।[1]

श्री वैल्स का मत है कि "यदि कोरिन्थ में कोई ऐसा समूह था जिसे 'क्राइस्ट का समूह शिष्य-वर्ग' कहा जाता था तो जेरुसलम में भी एक ऐसा समूह रहा होगा जो 'भगवान् के भाई-बन्धु' के नाम से पुकारा जाता हो जिसे पॉल को जीसस के बारे में हुए अनुभव से अधिक कुछ भी ज्ञान नहीं

१. ई० केसमन लिखित 'पर्सपैक्टिव ऑन पॉल' ट्रांस० एम० कोहल द्वारा, लन्दन, १९७१, पृष्ठ ४६।

हुआ था।"[1]

प्रोफेसर वैल्स के इस अलौकिक, रहस्यमय पर्यवेक्षण का विशाल, बहु-विध महत्त्व है। इसने सारी बातों का पूरा खुलासा कर दिया है चाहे प्रोफेसर वैल्स का यह मन्तव्य न रहा हो या उनको स्वयं यह अनुभूति न रही हो।

हम इसकी विशद व्याख्या, इसका अधिकाधिक स्पष्टीकरण धीरे-धीरे प्रस्तुत करेंगे किन्तु प्रथम पग के रूप में हम अपने पाठक को यहाँ यह अवश्य बता दें कि क्रिश्चियन-युग से पूर्व जरूसलम और कोरिन्थ कृष्ण-पूजा, कृष्णोपासना के दो महान् केन्द्रस्थान थे। उन दो केन्द्रों की प्रबन्ध-व्यवस्थाएँ परस्पर-सम्बन्धित थीं। बपतिस्मी जान व स्टीफन और पॉल जैसे व्यक्ति उन दो कृष्ण-मन्दिरों के पुरोहित (पादरी), प्रचारक और प्रबन्धक थे। इन दोनों स्थानों पर कृष्ण-भ्रातृसंघ, मित्र-वर्ग थे जिनको गलत उच्चारण का कृस्त (क्राइस्ट) भ्रातृसंघ कहा जाता रहा। उन दोनों केन्द्रों पर सत्ता और धन-सम्पत्ति में साझेदारों के भाग के प्रश्न को लेकर मतभेद [illegible] और दो वर्ग हो गए। पाल आदि का सम्बन्ध पहली पीढ़ी के पृथक् हुए समूह से था। मार्क, मैथ्यू, जान और ल्यूक परवर्ती पीढ़ियों से सम्बन्धित थे। उस विभेद, फूट की गड़गड़ाहटें पाल के पत्रों में स्पष्ट दीख पड़ती हैं। इन पत्रों में पारस्परिक मतभेदों, लांछनों और प्रति-आरोपों के पर्याप्त संकेत हैं।

मतभेद रखने वाले लोग, विरोधी लोग कृष्ण-मन्दिर से भिन्न दूर स्थानों पर मिलने-जुलने लगे और अपनी भावी कार्य-रूपरेखा पर विचार-विमर्श करने लगे। इस विचार-विमर्श, वाद-विवाद को संस्कृत भाषा में 'चर्चा' कहते हैं। यह ईसाई-परम्परा में 'चर्च' नाम का स्पष्टीकरण प्रस्तुत कर देता है। 'चर्च' संज्ञा नाम हमारी इस उपलब्धि को पुष्टि, समर्थन प्रदान करती है कि तथाकथित कृस्त (क्राइस्ट) सम्प्रदाय हिन्दुत्व का वह पृथक् हुआ समूह है जो अगले-अगले कदम पर विचार करने के लिए अलग बैठक करने लगा था जब इनके महत्त्वाकांक्षी नेताओं को कृष्ण-केन्द्रों के

---

१. जी० ए० वैल्स रचित 'डिड जीसस एग्जिस्ट ?', पृष्ठ २१।

प्रबन्ध में अधिकारपूर्ण स्थान, पद देने और उनको संचित धन-निधियों का नियन्त्रण सौंपने से वंचित/मना कर दिया गया था।

अतः प्रोफेसर वैल्स यह सही कह रहे हैं कि कोरिन्थ में जीसस-पूर्व एक समूह था जो 'कृस्त (क्राइस्ट) का समूह' कहा जाता था। यहाँ केवल इतना विभ्रम जरूर स्मरण रखना है कि कृस्त (क्राइस्ट) उस समय कृष्ण का प्रचलित उच्चारण था। प्रोफेसर वैल्स एक बार फिर सहज-सरल रूप में यह सुझाव प्रस्तुत करने में सही हैं कि भगवान् (अर्थात् कृष्ण) का एक अन्य भ्रातृ-वर्ग जरूसलम में सक्रिय था। उनका यह कथन भी संयोगवश ही अत्यन्त ललित, मनोहारी है कि उनको स्वयं पॉल के अनुभव से अधिक कोई अनुभव, जानकारी जीसस के बारे में निजी तौर पर नहीं थी। चूँकि जीसस का कभी जन्म हुआ ही नहीं था, इसलिए उसका कोई निजी अनुभव किसी को हो नहीं सकता था। इसी प्रकार भगवान् कृष्ण पॉल से बहुत पहले हो चुकने के कारण पॉल को भी उनके बारे में निजी तौर पर कोई अनुभव हो ही नहीं सकता था, सम्भव नहीं था। किन्तु बपतिस्मी जॉन और पॉल भगवान् कृष्ण (जिनका उच्चारण वे कृस्त-क्राइस्ट करते थे) के (हिन्दू) भक्त होने के कारण उनके लिए यह सहज स्वाभाविक ही था कि वे उनको अवैयक्तिक, अवतारी ईश्वर कहते और उनके सूली चढ़ने—जीवनलीला समाप्त करने के बारे में कुछ न कहते। कृष्ण के जीवन से सम्बन्धित घटनाओं, प्रसंगों की जहाँ तक बात है, वे सभी भली-भाँति सर्वज्ञात हैं और महाभारत व अन्य हिन्दू-ग्रन्थों में संगृहीत, अंकित हैं। कृष्ण के जीवन काल में विश्व-भर के सभी लोगों को उनका जीवन-चरित्र मालूम था, इतनी अच्छी तरह सभी बातों की जानकारी थी कि पाल या अन्य किसी को उन्हें दुहराने की आवश्यकता नहीं (होती) थी। परवर्ती ईसाई नेताओं ने जीसस की जीवन-घटनाओं को जिस प्रकार लोकप्रिय, कल्पनातीत बनाया, पॉल उनके बारे में सहज रूप से चुप है क्योंकि वह जानता था कि जीसस कृस्त (क्राइस्ट) तो उस समय 'ईशस कृष्ण' का ही प्रचलित उच्चारण था — संस्कृत में जिसका अर्थ द्योतन 'भगवान् कृष्ण' के लिए ही है।

'पॉल ने जो उद्घोषित किया वह (ईश्वर) भगवान् की इच्छा का रहस्य था अर्थात् कृस्त (क्राइस्ट) कृष्ण के माध्यम से मानव का उद्धार

पाने हेतु दिव्यव्यवस्था जो उसी में सभी को समाविष्ट कर देगी, स्वर्ग की वस्तुएँ और पृथ्वी पर उपलब्ध सभी वस्तुएँ (इफेस १ : ७-१०)।"[1]

यहाँ फिर प्रोफेसर वेल्स रहस्यमय रूप से सही हैं चाहे वे इसके हिन्दू महत्त्व से अनभिज्ञ हैं। श्री वेल्स ने पॉल की जिस (धर्म) शिक्षा का सार प्रस्तुत किया है वह भगवान् कृष्ण की भगवद्गीता का केन्द्रीय, मुख्य सन्देश ही भिन्न प्रकार से कहा गया है। उस हिन्दू-धर्मग्रन्थ में भगवान् कृष्ण अपने योद्धा-भक्त अर्जुन को बार-बार अपने कर्तव्य का निश्चय दृढ़तापूर्वक पालन करने के लिए और सब कुछ ईश्वर पर छोड़ देने की सलाह देते हैं जिससे ईश्वर अपनी इच्छा योजनानुसार कार्य कर सके।

इन सभी पाठकों को यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि पॉल और यूरोप के उसके सभी समकालीन व्यक्ति तथा अरब-इस्लामी क्षेत्रों के तत्कालीन निवासी लोग कृष्ण के भक्त थे और हिन्दू धर्म के अनुयायी थे चाहे वे इस सबसे अनभिज्ञ रहे हों क्योंकि उनसे सदियों पूर्व ही हिन्दू प्रशासन और नियमित हिन्दू शिक्षा छिन्न-भिन्न हो चुकी थी, समाप्त हो चुकी थी। फिर भी इस राजनीतिक अभाव शून्यावस्था में, उन अनिश्चित शताब्दियों में भी उन भागों तक जो शिक्षा संस्कृति और दार्शनिकता छन-छनकर पहुँच पायी वह हिन्दू के अतिरिक्त अन्य कुछ न थी।

यहाँ कुछ लोगों को यह आश्चर्य भी हो सकता है कि इतना कुछ होने के बावजूद तत्कालीन यूरोप में हिन्दू नाम का कोई शब्द सुनाई क्यों नहीं पड़ता? उत्तर यह है कि स्वयं भारतीय धर्मग्रन्थों में भी 'हिन्दू' शब्द का कभी प्रयोग नहीं किया गया है। तथ्य तो यह है कि हम सामान्य बोलचाल में जिसको हिन्दुत्व हिन्दू-धर्म कहते हैं उसका स्वयं का अपना कोई नाम ही नहीं है क्योंकि इसका कोई पंथ सम्प्रदाय समझाने बनाने का मनोरथ था ही नहीं बल्कि यह तो सभी मानवों पर प्रयोज्य विश्वव्यापी आचरण-संहिता की एक शाश्वत जीवन-मूल्य समाहित हैं और उन्हीं पर इसमें आग्रह है, यथा—सदा सत्य बोलना, सभी प्रकार के व्यवहार में ईमानदार प्रामाणिक रहना, शरीर और मन—मनसा वाचा कर्मणा—शुद्ध रहना,

१. 'डिड जीसस ऐक्जिस्ट?', पृष्ठ २३।

सदा परोपकारी रहना आदि। हिन्दू-धर्म सार्वभौमिक मानवतावाद होने के कारण इसका कोई विशिष्ट नाम न था। यही वह हिन्दू-वाद था जो बप्तिस्मी जॉन और पॉल तथा उनके पूर्वजों के युग में विश्व-धर्म, आस्था के रूप में सर्वव्यापी, प्रचलित था। ईशस कृष्ण ही इसका ईश्वर था। इसलिए जनता उसी ईश्वर की उपासना करती थी और उसी हिन्दू-दार्शनिकता का प्रचार-प्रसार करती थी जो उस जनता को भगवद्गीता तथा अन्य धार्मिक ग्रन्थों से, प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप में प्राप्त हुई थी।

प्रोफेसर वेल्स का पर्यवेक्षण है, "पॉल ने अपना कार्य, कर्तव्य समझा है ईश्वर का शब्द, सन्देश सर्वज्ञात कराना, युगों और पीढ़ियों तक छिपे रहस्य को अब अपने सन्तों के समक्ष निरूपित करना...पॉल बार-बार जीसस को रहस्यमयी भाषा में सम्बोधित करता है यथा क्रुस्त (क्राइस्ट) में, क्रुस्त (क्राइस्ट) के प्रति, क्रुस्त (क्राइस्ट) के माध्यम से (और), क्रुस्त (क्राइस्ट) को "क्रुस्त (क्राइस्ट) और स्वयं के बीच कोई अवर्णनीय सम्बन्ध का आभास मानो दे रहा हो।"[1]

यहाँ यह और अधिक स्पष्ट हो जाता है कि क्रुस्त (क्राइस्ट) तो 'कृष्ण' शब्द का आधुनिक यूरोपीय उच्चारण मात्र ही है क्योंकि हिन्दुत्व की भक्ति-परम्परा में भक्तों के लिए विशिष्ट सम्बन्धों को शब्दावली में दिव्यता की चर्चा करना सामान्य बात ही है।

आधुनिक बाइबल-कथन, जिसमें कहा गया है कि अपने ही समर्थक, पट्ट-शिष्यों में से एक द्वारा धोखा देने के कारण जीसस को गिरफ्तार कर लिया गया था और उसे सूली पर चढ़ाया गया था, अनुवादक की भूल, गलती का ही परिणाम है। मूल यूनानी क्रिया-पद में था "स्वयं को समर्पित, मुक्त कर दिया"। जब भगवान् कृष्ण की मृत्यु हुई तब इसी वाक्यांश का प्रयोग हिन्दुओं ने किया। हिन्दुओं का कहना है कि भगवान् कृष्ण ने अपना जीवन त्याग दिया अर्थात् उन्होंने अपने इस पार्थिव जीवन का अन्त हो जाने दिया। यह पुनः प्रदर्शित करता है कि किस प्रकार क्रुस्त (क्राइस्ट) की कहानी तथ्यरूप में कृष्ण की ही कहानी है जिसे तोड़ा-मरोड़ा और विरंजित

१. 'डिड जीसस ऐक्जिस्ट ?', पृष्ठ २४।

कर दिया गया है।

'उसका को समर्पित कर दिया'—सन्त पॉल से पहले भी विद्यमान, प्रचलित था—श्री वैल्स का कहना है।

पुनर्मिलन (परमप्रसाद) बाद भी कृष्णी-पूर्व परम्परा थी। पॉल का धर्मान्तरण चाहनेवाले कोरिंथियनवासियों के लिए, परमप्रसाद पहले ही एक विद्यमान-कर्मकाण्ड था—श्री वैल्स ने कहा है। हिन्दुओं में यह सामान्य, नित्य प्रथा ही है कि देवमूर्ति के समक्ष पूर्ण भोजन या कम-से-कम कुछ मिष्ठान्न तो ईश्वर-कृपा, दया को प्राप्त करने के लिए रखते ही हैं जिससे उसमें कुछ दैवी-अंश समा जाएँ और उसको ग्रहण करने से भक्तों को स्वास्थ्य पुष्टिकारक तत्त्वों की प्राप्ति हो जाए। दैवी भोजन के रूप में रोटी और शराब को ग्रहण करने की कृष्णी (ईसाई) पद्धति का यही हिन्दू मूल, उद्गम है क्योंकि आज जिसे जीसस क्राइस्ट की छवि मानते हैं वह प्रारम्भिक रूप से ईशस कृष्ण की मूर्ति ही थी।

क्राइस्ट की काल्पनिक मृत्यु के तीन दिन बाद उसका पुनरुज्जीवित हो जाना भी पूर्वकालिक गैर-ईसाई-पद्धति से उद्भूत है। उदाहरण के लिए, प्लूटार्क ने तीसरे दिन ओसिरिस के फिर से जिन्दा हो जाने की कथा का उल्लेख किया है। सरकार ने बताया है कि पूर्व के तीन दिन एक अस्थायी वास-स्थान का द्योतक है जबकि चतुर्थ दिन स्थायी निवास का निहितार्थक है। इसलिए पॉल के सूत्र का प्रयोजन केवल यह संकेत देना ही हो सकता है कि पृथ्वी की भूमि में जीसस का रुकना, ठहरना केवल अस्थायी था।[2] हिन्दुओं में आज भी गणेश, दुर्गा और सरस्वती की प्रतिमाएँ, मूर्तियाँ तीन से नौ दिवसीय समारोह, उत्सव के बाद जल-मग्न कर दी जाती हैं और हर साल उत्सव के दिन पुनः (नव-निर्मित) जीवित कर ली जाती हैं। यह सम्भव है कि कृष्णी-पूर्व युग में भगवान कृष्ण की मूर्ति जल-मग्न कर दी गई थी और तीसरे दिन पुनः प्रतिष्ठित करने के लिए पुनर्जीवित (पुनर्निर्मित) कर दी

१. 'डिड जीसस ऐक्जिस्ट ?' पृष्ठ १६।

२. डॉ० एम० सरकार लिखित 'मिस्ट्री रिलीजन्स एण्ड अर्ली क्रिश्चियनिज़्म' पृष्ठ १०३।

गई थी मात्र इस प्रयोजन को चरितार्थ करने हेतु कि राजा कंस के कारागार से नवजात भगवान् कृष्ण को भारी बाढ़ से उफनती यमुना नदी के पार चुपचाप से जाने और नन्द के घर में उनके प्राकट्य प्रादुर्भाव का आनन्दोत्सव सम्पन्न हो रहा है। यहीं उन्होंने दुष्ट आत्मा, नरपिशाच कंस की कोप-दृष्टि से बचने के लिए दूर अपनी किशोरावस्था का लालन-पालन किया था।

इसी के साथ-साथ तीसरे दिन पुनर्जीवन प्राप्त करने का भावार्थ कुछ समय बाद का अर्थद्योतन करना हो क्योंकि कृस्त (क्राइस्ट) की मृत्यु की तारीख स्वयं ही अज्ञात है। यह तो स्वाभाविक ही है जब क्राइस्ट कोई ऐतिहासिक पुरुष था ही नहीं। क्राइस्ट की मृत्यु और उसका पुनर्जीवन हिन्दू-विचार 'प्रलय' का मात्र भ्रम भी हो सकता है—जल द्वारा सम्पूर्ण नाश और पुनर्जागरण, पुनर्जीवन।

पुनरुज्जीवित होने के बारे में भी ईसाई रचनाओं में व्यापक विविधताएँ हैं। पॉल के अनुसार, पुनरुज्जीवित जीसस ईश्वर के दाएँ हाथ की ओर स्थान ग्रहण करने के लिए सीधा स्वर्ग चला गया (रोम ८ : ३४), किन्तु ईसाई-धर्मग्रन्थ और चरित उसके पुनरुज्जीवित व्यक्तित्व का किसी यशस्वी-काया में निरूपित नहीं करते। अतः वे उसे पार्थिव जीवन में लौट आया पुनर्जीवित ही दर्शाते हैं। क्राइस्ट की पुनर्जीवन-कथा ही एकमात्र उपाय था आश्वस्त करने का कि प्रत्येक मृत विश्वासी व्यक्ति पुनरुज्जीवित हो जाएगा।

श्री वैल्स कहते हैं कि, 'मात्र यही तथ्य कि यहूदी और रोमन अधिकारियों ने इतने प्रारम्भिक काल में भी ईसाइयों को अपने धर्मानुसार जरूसलम में आचरण, व्यवहार, कार्य-कलाप करने की अनुमति दे दी थी इस विचार के प्रतिकूल स्वयं प्रमाण है कि इस विश्वास, आस्था, धर्म का संस्थापक प्रवर्तक कुछ ही वर्ष पूर्व यहूदी और रोमन शत्रुता के फलस्वरूप फाँसी चढ़ा दिया गया था।"[1]

प्रारम्भिक ईसाई "खास दिनों, मासों, ऋतुओं और सालों को मनाने का आग्रह करते थे (गाल ४ : १०) और यह उनको उन व्यक्तियों से सम्बन्धित

१. 'डिड जीसस ऐक्जिस्ट ?', पृष्ठ १६।

कर देता है जिसकी कोलोसे २ : १६-१८ में आलोचना की जाती है। सबबन्ध समारोह अर्थात् सब्बाथ के लिए उनके पर्यवेक्षण के कारण, क्योंकि यहाँ उन आचरण, पद्धति की आलोचना इसलिए की जाती है कि ये वे लोग हैं जो आत्म-तिरस्कार और देव-पूजा करते हैं और जो दिव्य-दर्शनों पर अपनी आस्था रखते हैं। चाँद चतुर्थी और देव-पूजा, उपासना करने में सम्बन्ध यह है कि नक्षत्रों और ग्रहों से संप्रविष्ट राक्षसी शक्तियाँ कुछ खास समय पर उन्मत्त-उत्तेजित होती हैं और वे मनुष्य के लिए खतरा बनी रहती हैं।"[1]

उपर्युक्त अवतरण, उद्धरण इस बात का स्पष्ट द्योतक है कि अरब और यूरोपीय क्षेत्रों में प्रचलित कृस्ती-पूर्व आस्था, विश्वास हिन्दुत्व, हिन्दू-धर्म ही था। सन्दर्भित देव-पूजा भगवान् कृष्ण की पूजा ही है। राक्षसी शक्तियाँ वे हैं जिनके विरुद्ध राम और कृष्ण जैसे हिन्दू देवावतारों ने संघर्ष किया था। हिन्दू लोग वर्ष-भर अशांतिक और विभिन्न तिथि-वारों को देखते, परखते और उनका पालन करते रहने के लिए सर्वविख्यात हैं। भक्त, कट्टर, रूढ़िवादी हिन्दू के लिए तो वर्ष का लगभग हर दिन ही एक विशिष्ट पुनीत, पवित्र, धार्मिक महत्त्व का दिन है।

इस सन्दर्भ में हम एक महत्त्वपूर्ण पर्यवेक्षण करना चाहते हैं अर्थात् ईसाई सब्बाथ और इस्लामी शबे-इ-बरात का एक सीधा सम्बन्ध और मूलोद्गम भी है। यह सम्बन्ध हिन्दू संज्ञा शिवरात्र और शिव-व्रत में मिलता है। वे शिवोपासना शिव-पूजा का संकेत करते हैं। इससे यह स्पष्टतः प्रत्यक्ष है कि सब्बाथ और शबे-इ-बरात प्रारम्भ से शिवोपासना के प्रति समर्पित दिन और प्रथाएँ थीं।

इसी प्रकार मुस्लिमों का 'ईद' शब्द लें। उनके हर्ष का प्रत्येक त्योहार 'ईद' माना जाता है, यथा—बकरीद या ईद मिलाद-उन-नबी। उसी के समानुरूप हम कृस्ती-पूर्व रोमनों के 'मार्च' मास की ईद भी सुनते हैं। उसमें भी ईद शब्द का अर्थ विशेष पूजा-उपासना से था क्योंकि प्राचीन यूरोप में नया वर्ष मार्च से प्रारम्भ होता था जब यूरोप एक हिन्दू-क्षेत्र था।

उक्त 'ईद' शब्द संस्कृत-मूल का है जैसा "अग्निम् ईळे पुरोहितम्"

१ 'डिड जीसस ऍक्ज़िस्ट ?', पृष्ठ ३६।

उक्ति में, अर्थात् सभी पूजा-उपासना (ईड) में अग्नि सम्मुख रखी जाती है, देखा जा सकता है।

शिव-व्रत और ईड (ईद) जैसी उक्तियों का आज के तथाकथित मुस्लिमों और कृस्तियों (ईसाइयों) में सामान्य होना सिद्ध करता है कि वे सभी (धर्म) परिवर्तित हिन्दू हैं और उनके अपने-अपने धर्म सिर्फ हिन्दू-धर्म के जोड़-तोड़ से इकट्ठे किए हुए विभिन्न रूप ही हैं।

श्री वैल्स ने बल देकर कहा है, "पॉल के सामने खतरा यह था कि उसने जिन कृस्ती-समुदायों को पाला-पोसा था, वे रहस्यवादी गुटबन्दियों और गुह्य-गुप्तोपासना-चक्रों में (घुल-मिलकर) लुप्त हो जाएँगे।" श्री वैल्स ने यह भी कहा है कि, "इस खतरे का स्पष्टीकरण करना कठिन है कि कृस्ती-पंथ किसी एक ऐतिहासिक जीसस की स्पष्टतया परिभाषित धर्म-शिक्षाओं से मूलतः प्रारम्भ हुआ था।"[1]

श्री वैल्स के अनुसार, "नव-विधान (बाइबल के उत्तरार्द्ध) की विस्मयकारी बात यह है कि धर्मग्रन्थों में वर्णित होने के अतिरिक्त, इस जागतिक जीसस में स्वयं में इतना अल्प महत्त्व है कि उसके बाहर तो मात्र उसका धर्म-चिह्न 'क्रॉस' का ही कोई धार्मिक औचित्य है और उसके इस 'क्रॉस' को भी (ऐतिहासिक दृष्टि से ग्राह्य बनाने की अपेक्षा) पुरा-शास्त्र और कहानी के विगत, प्राचीनकाल को प्रयोज्य कर तोड़-फोड़ दिया, विकृत कर दिया है।"[2]

यूनानी भाषा में जीसस व जोशवा तथा याहुवेह सभी दैवी नाम हैं। वे संस्कृत-मूल के ही हैं। उनके संस्कृत समानक शब्द हैं ईशस, केशव और यादवेय (अर्थात् यदु-वंश का एक व्यक्ति)।

पॉल का यह निश्चयात्मक कथन कि "एक भगवान् जीसस ही है जिससे सभी पदार्थ उद्भूत, निःसृत हैं", भगवद्गीता नामक हिन्दू-धर्मग्रन्थ का ही एक वाक्य है जिसमें उद्घोषित है कि सम्पूर्ण सृष्टि का जनक भगवान्, परमात्मा ही है।

१. 'डिड जीसस ऐक्ज़िस्ट ?', पृष्ठ ३७।
२. वही, पृष्ठ ४०।

पॉल (गलात ४ : ४ है) कहता है कि "पूर्ण उचित समय आ जाने पर" ईश्वर ने अपने पुत्र को पृथ्वी पर भेजा। भगवद्गीता में भगवान् कृष्ण द्वारा अपने शिष्य अर्जुन को दिया गया यह स्थायी, पक्का आश्वासन ही है।

"प्रथम शताब्दी के कृस्ती धर्मपत्र ईसाई-धर्मग्रन्थों में कल्पित, मान्य जीसस की ऐतिहासिकता का समर्थन नहीं करते। सबसे शुरू वाले कृस्तियों (अर्थात् कृस्तियों—कृष्ण के अनुयायियों) के लिए तो जीसस एक मरता और उदय होता हुआ भगवान् ईश्वर था जिसका कोई मानव जीवन-चरित्र ज्ञात नहीं था। दो नए विधान के धर्म-पत्रक (जेम्स और जुडे) जीसस के बारे में कुछ भी नहीं बताते और जेम्स तो उसकी मृत्यु व पुनर्जीवन-प्राप्ति का उल्लेख भी नहीं करता जो पॉल की रचनाओं में इतनी प्रखरता स्पष्टता से वर्णित है। मैं जिसको महत्त्वपूर्ण मानता हूँ वह इस प्रकार की चुप्पियाँ नहीं हैं बल्कि एक चुप्पी वह है जो उस काल के सभी दस्तावेजों में निरन्तर बनी हुई है और दोहरायी गई है। विभिन्न अवस्थाओं में विभिन्न लेखकों द्वारा लिखे गए दस्तावेजों में उन विषयों पर है जिनके बारे में वे उदासीन नहीं रह सकते थे।"[1]

"क्राइस्ट की निम्नतम दशा अधोलोक में उतर जाने की कहानियाँ केवल तभी स्वीकार्य ग्राह्य हो जाती हैं जब क्रिस्त को कृष्ण समझा, मान लिया जाता है। यह तो शिशु कृष्ण ही था जिसने कालिया-नाग को वश में करने के लिए गहरी यमुना नदी में डुबकी लगाई थी, अन्तावतरण किया था।

अभी तक अध्ययन किए गए किसी भी (ईसाई, यहूदी या गैर-ईसाई) दस्तावेज में जो प्रथम शताब्दी में लिखा गया हो किसी मान्य ऐतिहासिक स्थिति में जीसस का सम्बन्ध स्थापित नहीं होता है। प्रथम शताब्दी के ईसाई-धर्मग्रन्थों में इसके बारे में अधिक-से-अधिक यही कह दिया जाता है कि वह प्राचीनकाल में हुआ था जो अभी निकट-भूत ही में था, किन्तु यह भी अनिश्चित ही उल्लेख होता है।"[2]

ज्यों-ज्यों कृस्ती-सम्प्रदाय विभिन्न स्थानों पर बढ़ते गए, त्यों-त्यों एक

---

१. "दि जीसस लीजेण्ड" पृष्ठ २६-२७।

२. वही, पृष्ठ ७५।

अजन्मे जीसस के बारे में किसी कहानी को एक मानवीकृत रूप दे देने की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी। इसके कारण उनका यह जोड़ना पड़ा कि जीसस पीलेट के कारण मरा। इस प्रकार थोड़ा-थोड़ा करके जीसस-कथा बना दी गई, घड़ दी गई। सभी द्वारा उसकी स्वीकृति की युक्ति सफल की गई। ऐसी स्वीकृति स्वयं नेता के अपने पक्ष में भी थी क्योंकि वे एक ऐसे धार्मिक नए श्रेणीबद्ध संगठन का निर्माण कर रहे थे जिसमें उच्च पदासीन व्यक्तियों को और भी अधिक शक्ति, ऐश्वर्य तथा सम्मान प्राप्त हो सकता था।

पॉल के पत्रों में सम्मिलित अनेक पदों में जीसस को अलौकिक रूप में निरूपित किया गया है जिसका पृथ्वी पर अवतरण हुआ था, जो अत्यन्त दीनता व कठिनाई में रहता रहा और फिर एक बार स्वर्ग आरोहण कर गया।

इसका मूल भी कृष्ण-कथा में है क्योंकि कृष्ण का जन्म कारागार में हुआ था। उसके जन्म के तुरन्त पश्चात् वह एक ग्वाले के घर में पलकर बड़ा होने के लिए बन्दीगृह से बाहर लुक-छिपकर ले जाया गया था। बाद में वह स्वयं इच्छा से अर्जुन का रथ हाँकने वाला (सारथि) बना था तथा पांडवों द्वारा महान् यज्ञ आयोजित किए जाने के अवसर पर उसी ने जूठी पत्तलें उठाने का काम सँभाला था।

चूँकि जीसस की कहानी एक पृथक् आधार पर आगे बढ़ रही थी, इसलिए कृस्ती नेताओं को जीसस को एक उपदेशक और अनोखे चमत्कारी व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत करना पड़ गया। किन्तु यहाँ भी उन्होंने पर्याप्त अंश में कृष्ण-कथा से ही प्रेरणा ली। कृष्ण स्वयं ही महान् उपदेशक हैं। उन्होंने अर्जुन को जिस गीता का उपदेश दिया वह विश्व-साहित्य में एक ऐसे अद्वितीय प्रकाश-पुंज के रूप में विद्यमान है जिसे समस्त विश्व के बुद्धिजीवी आध्यात्मिक मार्गदर्शन के रूप में मानव को दिया गया सर्वोत्तम ज्ञान मानते हैं। कृष्ण परस्पर-विरोधी वर्गों में सौहार्द, सामञ्जस्य बनाने के लिए जीवन-भर कठोर संघर्ष करते रहे और अन्त में अपने युग का भीषणतम महाभारत-युद्ध आयोजित करा दिया। अनेक चमत्कार भी कृष्ण भगवान् के चरित में सम्पन्न हुए थे। चूँकि वे शिशु-अवस्था में भी एक हृष्ट-पुष्ट,

आनन्दप्रद और नटखट बच्चे थे इसलिए उनकी पालक-पोषक माता ने उन्हें एक बार घर की ऊखल से बाँध दिया। बालक कृष्ण उस ऊखल को घसीटते-घसीटते दो वृक्षों के मध्य तक ले गए। वह मूसल उन वृक्षों के बीच में फँस अटक गया। कृष्ण ने और अधिक जोर लगाया तो वे दोनों वृक्ष धराशायी करके उखड़कर गिर पड़े। एक अन्य अवसर पर कृष्ण ने द्रौपदी को अनन्त चीर-वस्त्र प्रदान किए थे जब कुछ दुष्टजन उसको अपमानित करने के लिए भरे दरबार में उस अबला नारी को निर्वस्त्र कर रहे थे। एक भिन्न अवसर पर अप्रत्याशित मेहमानों, आगन्तुकों के आ जाने पर कृष्ण ने खाद्य-सामग्री भोजन का अक्षय भंडार भी प्रस्तुत कर दिया था। ऐसे कई कौतुक, अद्भुत विलक्षण प्रसंग कृष्ण-कथा से सम्बन्धित हैं।

इरलीनियस ने अपने धर्म मत को आदेशात्मक स्वर में कहा था कि वह पक्की तौर पर विश्वास करे कि कृस्त पोन्टियस द्वारा सूली-दण्ड से मरा था और टेर्तुलियन ने साग्रह प्रशंसा की थी कि 'वे झूठी बातों, मान्यताओं के प्रशंसकों के सामने न झुकें'। यह इस बात का स्पष्ट संकेतक है कि वास्तविक सत्य जीसस के अभाव में नई आस्था, नये विश्वास ने कृष्ण के बारे में जिसका उच्चारण कृस्त किया जाता था विभिन्न कथाओं को विकसित कर दिया था प्रचलित कर दिया था। चूँकि यूनान का सम्बन्ध पहले ही हजारों वर्ष पूर्व विच्छिन्न हो चुका था, इसलिए हिन्दू-धर्मग्रन्थ यूनान से जाने-जाने अनुपलब्ध होने लग गए थे। इस प्रकार के बौद्धिक-शून्य, रिक्तता में प्राचीन कृष्ण-कथा को तोड़ा-मरोड़ा, नया रूप दे दिया गया। बाइबल में समाहित समुच्चय-रूप कई न्यस्त संकलित अवतरणों का अनमोचा मिश्रण है जिसे कृस्ती नेताओं ने अन्ततोगत्वा काफी प्रयासों और भूल-चूक, ले-दे के बाद तथा परिवर्तनशील परिस्थितियों की विवशताओं के फलस्वरूप एक औपचारिक सरकारी रूप में स्वीकृत धानक-रूप में इकट्ठा कर दिया था।

क्राइस्ट (कृस्त) स्वयं एक उपाधि है नाम नहीं। यह 'जीसस दि क्राइस्ट' शब्दावली में स्पष्ट है। यह फिर दर्शाता है कि कृस्त (क्राइस्ट) हिन्दू ईश्वर कृष्ण का तत्कालीन प्रचलित यूरोपीय उच्चारण ही था। अतः जब प्रारम्भिक कृस्ती नेताओं ने एक कल्पित जीसस के नाम में प्रचार करना प्रारम्भ किया तब उनको यह कहना आवश्यक हो गया कि वह

भगवान् कृष्ण का स्वयं ही मूर्तरूप था। 'जीसस दि क्राइस्ट' शब्दांश का यही 'जीसस ही कृस्त, कृष्ण हैं' यही मनोभाव है।

यही बात उससे सम्बन्धित 'मसीह' नाम, उपाधि से और भी स्पष्ट, प्रत्यक्ष हो जाती है। प्रोफेसर वैल्स का कहना है कि 'मसीह' शब्द शाही उपाधि था। उनका कहना बिल्कुल ठीक, सही है। 'मसीह' संस्कृत शब्द 'महेश' की अस्पष्ट, गलत वर्तनी है। यह दो शब्दों— महा—ईश का सन्धि किया हुआ संयुक्त शब्द है जिसका अर्थ शब्द-रूप में 'महा ईश'—बड़ा ईश्वर है। इस प्रकार यह ऐसी उपाधि है, सम्मानार्थ पद है जो एक सम्राट् और एक दिव्य पुरुष, दोनों को ही प्रयोज्य है। कृस्त से जुड़ा हुआ यह संस्कृत उपाधि-पद भी इस तथ्य का अतिरिक्त प्रमाण है कि कृस्त (क्राइस्ट) कृष्ण के अतिरिक्त उससे भिन्न कुछ और है ही नहीं।

प्रोफेसर वैल्स ने अत्यन्त रहस्यमय ढंग से पर्यवेक्षण किया है कि, "पहली शताब्दी के अन्तिम दिनों से ही कृस्तियों (ईसाइयों) की स्थिति ऐसी कथा की रचना करने के लिए पूरी तरह अनुकूल थी कि जीसस को रोमन अधिकारियों के समक्ष खुद ही झकझोरा गया था और उसके साथ वैसा ही निर्भीक व्यवहार किया गया था जैसा उसी प्रकार की दाण्डता में कृस्तियों (ईसाइयों) से अपेक्षित था। इस (निष्कर्ष) पर कोई मतभेद, विवाद नहीं है कि अनेक कहानियों का मूलोद्गम, प्रारम्भ दमन किए गए लोगों को प्रोत्साहन की कथाओं के रूप में ही हुआ है।"[1]

यह पर्याप्त रूप में कपटपूर्ण, सत्याभासी है, जैसा कि प्रोफेसर वैल्स ने स्पष्ट किया है कि जीसस को रोमवासियों द्वारा सूली-दण्ड दिए जाने की कथा प्रारम्भिक कृस्ती नेताओं द्वारा अपने अनुयायियों पर यह सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक प्रभाव डालने के लिए ईजाद, गढ़ ली गई कि वे अपने नए पंथ में ही बने रहें अन्यथा उन्होंने जिस पूर्व-पंथ का परित्याग कर दिया है वहाँ उनको ऐसी ही यातनाएँ दी जाएँगी।

यद्यपि सामान्य, साधारण व्यक्ति को इसकी जानकारी नहीं है, फिर भी प्रारम्भिक, पूर्व युग में जीसस की मृत्यु के बारे में चार पाठान्तर,

---

१. 'डिड जीसस ऐक्जिस्ट ?', पृष्ठ ६२।

धारणाएँ प्रचलित थे—एक यह था कि जीसस को किसी अनिश्चित भूतकाल में सूली पर चढ़ाया गया था, दूसरा यह था कि अभी कुछ समय पूर्व ही उसे सूली-दण्ड दिया गया था, तीसरा यह था कि जीसस को एक रोमन अधिकारी—पीलेट नाम—द्वारा सूली-दण्डित किया गया था, और चौथा यह था कि रोमन लोग नहीं—यहूदी लोग—उसकी मृत्यु के लिए जिम्मेदार थे। यह अन्तिम धारणावाला पाठान्तर ईसाई (धर्म)-ग्रन्थ लिखे जाने के समय प्रचलन में आ गया क्योंकि उस समय ईसाई लोग यहूदियों द्वारा नफरत के शिकार थे। अतः यह कल्पित धारणा बनी हुई थी कि यहूदियों ने तो प्रारम्भ से ही उनसे घृणा कर रखी थी। यहूदियों को दोष, कलंक देना मानसिक, वैचारिक रूप में सन्तोषदायक था; जिन लोगों द्वारा उसे 'मसीहा' मानने से इन्कार किया गया, उन्हीं लोगों को उसकी मृत्यु का उत्तरदायी बना देना, स्वीकार कर लेना सहज में बुद्धि-ग्राह्य था।

पीलेट का दोष यहूदियों पर मढ़ देने के लिए (ईसाई) सुसमाचार लेखकों के अन्य कपटपूर्ण मिथ्याभासों भी ठूँस दी जैसे जुदास द्वारा विश्वासघात वाली घटना और सन्हेड्रिन-मुकदमा जैसी अनुपयुक्त, बेमेल बातें। "ये सब इतनी अस्वाभाविक और गैर-ऐतिहासिक हैं कि बिल्कुल हास्यास्पद, मजाकिया लगती हैं।"[1]

सन् ६० ईसवी के पॉल के पत्रों से प्रारम्भ करके जिन भी व्यक्तियों ने सर्वप्रथम जीसस को सूली-दण्ड देने का विशेषोल्लेख किया था उनमें से किसी ने भी यह नहीं बताया कि सूली-दण्ड कब और कहाँ दिया गया था। प्रथम शताब्दी के परवर्ती धर्मग्रन्थ पॉल द्वारा उल्लेख किए गए से अधिक पीलेट का कोई उल्लेख भी नहीं करते। इग्नेटियस के पत्रों और नव-विधान के शामिल धर्मपत्र ही—सभी ११० ईसवी सन् के हैं—पीलेट के प्रशासक काल में ही जीसस की मृत्यु ठहराते, निर्धारित करते हैं और यह उसका ही उत्तरदायित्व मानते हैं। किन्तु ईसाई-धर्मग्रन्थों के भावावेशी विवरणों में यह उत्तरदायित्व यहूदियों के माथे मढ़ दिया गया है।

१. एच० कोहन लिखित 'द ट्रायल एण्ड डैथ ऑफ़ जीसस', लंदन, १९७२, पृष्ठ १८९।

यह विचार कि जीसस क्राइस्ट भूतकाल में, वर्तमान में और भविष्य में भी वही है (हिब्रू १३ : ८) सत्य का बिल्कुल उलटा है, प्रोफेसर वैल्स इस आधार पर कहते हैं कि, "यह एक विचार है जो काफी समयावधि में निर्मित और परिमार्जित, परिशुद्ध किया गया है।"

उनकी यह समीक्षा, टिप्पणी न्यायोचित है जहाँ तक जीसस का सम्बन्ध है। किन्तु प्रोफेसर वैल्स जैसे विद्वान् जो बात नहीं जानते वह यह है कि क्राइस्ट (क्रस्त) तो हिन्दू नाम कृष्ण का विविधरूप मात्र ही है, रूपान्तर ही है। वह कृष्ण 'भूतकाल में, वर्तमान में और भविष्य में भी वही है' क्योंकि वह दैवी-अंश, दिव्य-अवतार ही है। यह एक अन्य प्रमाण है कि क्राइस्ट (क्रस्त) तो कृष्ण-नाम का एक रूपान्तर-मात्र है, जीसस की कोई उपाधि नहीं।

श्री वैल्स का यह आग्रह सही है कि जो लोग, "नव-विधान की पुस्तकों को ऐतिहासिक दस्तावेजों के रूप में स्वीकार करते, मानते हैं उनको उन (क्रस्ती धर्म-पुस्तकों) की विश्वसनीयता के बारे में भी कुछ कसौटी, निकष स्वीकार करनी ही चाहिए। उनको यह निर्धारण, निश्चय, निर्णय करने का यत्न करना चाहिए कि पुस्तकें कब लिखी गई थीं, किस उद्देश्य-प्रयोजन से लिखी गई थीं और किन लोगों ने लिखी थीं? उन लोगों ने जब इन तथ्यों का सुनिश्चित निर्धारण कर लिया हो तभी वे इस बात का आकलन कर सकते हैं कि लेखक का ज्ञान कितना रहा होगा, वह सत्य-असत्य वर्णनों में कितना नीर-क्षीर विवेचन, परस्पर-भेद समझ पाएगा और वह कथित सैद्धान्तिक प्रयोजनों की धार्मिक पूर्व-धारणाओं, पूर्वाग्रहों से किस सीमा तक प्रभावित रहा होगा।"[1]

प्रोफेसर वैल्स ने जो कुछ बाइबल के बारे में कहा है वह कुरान पर भी पूरी तरह लागू होता है। इस्लाम और क्रस्ती-पंथ दोनों में ही धार्मिक सुदृढ़-तन्त्र ने उनके दोनों धर्मग्रन्थों के बारे में सभी प्रकार की समालोचनाओं और निष्पक्ष जाँच, समीक्षाओं को निरुत्साहित, नापसन्द ही किया है। धर्मग्रन्थ मानव के लिए होते हैं—मानव धर्मग्रन्थों के लिए नहीं।

१. 'डिड जीसस ऐक्जिस्ट ?', पृष्ठ ७०।

मानव-जीवन जीने योग्य नहीं रह जाएगा यदि मनुष्य की उचित/अनुचित की प्रज्ञा को दबा दिया जाए अथवा उसका उपयोग न किया जाए।

प्रोफेसर वैल्स के अनुसार, "कृस्ती-पंथ (क्रिश्चियनिटी, ईसाई-मत, ईसाई-धर्म) के प्रचारकों का मुख्य कार्य अपने श्रोताओं को निम्नलिखित मूल तत्वों से सहमत करना था—नजारथ का जीसस, डेविड का वंशज, ईश्वर द्वारा नियुक्त किए जाने के बाद, दिए गए वचन के अनुसार जो विश्व का निर्णय करे और पुण्यात्माओं, सन्तों को मोक्ष दे सकता था, जो यहूदियों द्वारा भड़काए जाने पर धर्मगुरु पीलेट द्वारा सूली पर चढ़ा दिया गया था। उसकी नेक चरित्रता उसके 'विलास कार्यों' द्वारा, विशेष रूप से उसके पुनर्जीवित हो जाने से, जिसकी सत्यता की प्रत्यक्षदर्शी होने की गवाही अनेक व्यक्तियों ने दी थी, स्थापित-सिद्ध हो चुकी थी। धर्म-प्रचारकों के उद्देश्य जीसस के पार्थिव जीवन के आत्मचरित के विवरणों को नहीं देखते होंगे और उसी कारण किसी को उनसे आशा नहीं करनी चाहिए कि वे उन चमत्कारों और प्रवचनों को अंकित करेंगे जो उनके (ईसाई) धर्मग्रन्थों के इतने महत्त्वपूर्ण अंग बने हुए हैं। उनको कुछ पता नहीं था मात्र कल्पना के घोड़े दौड़ाने के अत इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि इसीलिए उन्होंने इसे किसी भी प्रकार व्यवस्थित नहीं किया। केवल जब वे वैज्ञानिक रूप से महत्त्वपूर्ण मृत्यु और पुनर्जीवन पर आते हैं तभी वे किसी प्रकार की सुव्यवस्था, तालमेल प्रदर्शित करते हैं।"[1]

प्रोफेसर वैल्स यह राय कायम करने में सही हैं कि जीसस का पूर्ण जीवन-चरित ही काल्पनिक है। मृत्यु और पुनर्जीवन, निःसंदेह, कृस्त-पंथ में महत्त्वपूर्ण स्थान पाते हैं। किन्तु जब कोई इस सम्बन्ध में सचमुच (गम्भीरता से) विचार करने लगता है तो वह इस निष्कर्ष पर पहुँच ही जाता है कि यूँ ही, व्यर्थ में बात का बतंगड़ बना लिया है, उसमें कोई सार नहीं है। सर्वप्रथम जीसस नामक कोई व्यक्ति था ही नहीं। दूसरी बात, यह धारणा बुद्धिगम्य नहीं है कि जीसस ने अन्य लोगों के—भूतकाल के, वर्तमान के और भविष्य में होनेवाले सभी लोगों के पापों के उद्धार के लिए,

1. 'डिड जीसस ऐग्जिस्ट ?', पृष्ठ ७०-७१।

उनके प्रायश्चित्तस्वरूप अपने प्राण त्यागे थे। तीसरी बात, अन्य लोगों के लिए ऐसी दुःसह यातना सहने के लिए बेचारा जीसस ही क्यों एकाकी व्यक्ति हो? चौथी बात, यदि जीसस की यातना और पीड़ा अन्य लोगों के पापों की मोक्ष-दायी हो सकती थी तो उन हजारों लोगों की सूली-दण्ड वाली मृत्यु क्यूँ नहीं अन्य लोगों का भी पापोद्धार कर सकी जो जीसस से पूर्व तथा बाद में भी बहुत लोगों को इसी प्रकार दी गई थी? और यदि यातना द्वारा जीसस की मृत्यु किसी प्रकार प्रायश्चित्त की द्योतक है तो क्या उसका पुनर्जीवित हो जाना भी पृथ्वी पर पाप का पुनरोदय ही है? यदि उसने इस पृथ्वी पर पुनः दूसरा जीवन प्रारम्भ किया था तो क्या जीसस फिर एक बार मौत का ग्रास हुआ था? यदि नहीं, तो क्यों नहीं? यदि वह नहीं मरा या दुबारा उसे नहीं मरना पड़ा था, तो उसे पहली बार ही क्या मरना पड़ा? यदि पुनर्जीवन के बाद जीसस फिर इस पृथ्वी पर जिन्दगी जिया था तो उसके जागतिक-चरित के दूसरे काल-खण्ड का विवरण कहाँ है? यदि वह पुनर्जीवित होने पर सीधा स्वर्ग प्रवेश कर गया, तो सूली पर चढ़ने के तुरन्त बाद या उससे पूर्व ही वह स्वर्गारोहण क्यों न कर पाया? स्वर्ग में प्रवेश या स्थान दिए जाने से पूर्व क्या अन्य सभी व्यक्तियों को भी उसी प्रकार सूली-दण्ड भोगना पड़ेगा? ये सम्मुख उपस्थित होनेवाले असंख्य प्रश्नों में से कुछ हैं।

कृस्ती-पंथ (ईसाई-धर्म) इस बात का एक अच्छा उदाहरण है कि किस प्रकार लाखों लोगों को धोखा देकर किसी अविद्यमान, अस्तित्वहीन वस्तु का विश्वास दिलाया जा सकता है और किस प्रकार हवा में ही एक गगनचुम्बी धर्म-विज्ञानी राजप्रासाद की रचना की जा सकती है। उन लोगों के लिए जो यह कल्पना करते हों कि जीसस ने कोई नई दार्शनिकता का मनन, निर्माण और प्रचार-प्रसार किया था, प्रोफेसर वैल्स कहते हैं कि "जीसस की शिक्षाओं और चमत्कारी कार्यों के बारे में धर्मग्रन्थों में साम-अस्य का पूर्ण अभाव है, धर्म-पत्रों में असंख्य विसंगतियाँ हैं और धार्मिक प्रवचनों में भी समरसता का अभाव है जहाँ जीसस एक विषय, प्रसंग से दूसरे पर प्रत्यक्ष मनमानेपन, निरंकुशता से चला जाता है। एक अच्छा उदाहरण एम० के० ६ : ३५-५० है जहाँ पृथक्-पृथक् बिन्दुओं, मदों को,

अस्तित्व में ही नहीं था, तभी उसने ईसाई-समाज में होनेवाले मतभेदों को दूर करने के लिए नियम निर्धारित कर दिए थे। यह प्रदर्शित करता है कि किस प्रकार प्रारम्भिक ईसाइयों ने मनगढ़न्त कथाएँ गढ़ लीं और पहली तारीखें प्रदान कर दीं। स्पष्ट है कि सुसमाचार लेखकों के मन में अपने समय (युग) के मतभेद और विवाद उपस्थित, समाए हुए थे। उनको अपनी ही इच्छानुसार सुलझा लिए जाने के मन्तव्य से उन्होंने जीसस के मुख से अपने मनचाहे शब्द, भाव कहलवा दिए। उदाहरण के लिए एम० के० १० : १२ में जहाँ उसने यह नियम कहा है कि यदि कोई महिला अपने पति से तलाक ले लेती है और दूसरे व्यक्ति से शादी कर लेती है तो वह व्यभिचारिणी हो जाती है। जीसस की कुछ धर्म-विधायी बातें कुस्ती-समुदाय की पूजा-पद्धति-विषयक आवश्यकताओं से निःसृत खोजी जा सकती हैं। एक स्पष्ट मामला भगवान् की प्रार्थना है—मार्क से गैरहाजिर, लूके आदि द्वारा भिन्न रूप में प्रस्तुत तथा मैथ्यू द्वारा इस प्रकार विस्तारित की गई है कि यह सामुदायिक पूजा के लिए उपयुक्त, समीचीन बन गई है।

"मार्क ७ : १—२३ अवतरण में जीसस ने फरीसी, पाखण्डी के खिलाफ एक तर्क प्राचीन विधान के यूनानी रूपान्तर पर आधारित किया है जबकि हिब्रू मूल में कुछ भिन्न बात कही गई है जो जीसस का पक्ष-समर्थन नहीं करती। यह अत्यन्त असम्भव लगता है कि एक फिलस्तीनी जीसस रूढ़िवादी यहूदियों को एक ऐसे तर्क के आधार पर पराजित कर दे जो उनके धर्मग्रंथ के भ्रष्ट-अनुवाद पर निर्भर हो। तथापि सम्पूर्ण प्रसंग पूर्णरूपेण समझ में आ सकता है यदि हम यह कल्पना कर लें कि इस प्रसंग की झूठी रचना मार्क के गैर-यहूदी ईसाई-समुदाय में कर ली गई थी जिसने सहज रूप में ही यूनानी रूपान्तर में प्राचीन विधान को पढ़ा था और अपनी स्वयं की समझ का जीसस को समर्थक ठहरा दिया था।"[1]

परवर्ती सिद्धान्तों और रीति-रिवाजों का श्रेय (जीसस को) दे देने के इस कौतुक ने जीसस-जीवनचरित्र का निर्माण करने में पर्याप्त भूमिका

१. सी० डौलकम्ब लिखित 'जीसस', पृष्ठ १८ आई० फेबर द्वारा अनूदित, लन्दन १९६०।

निकालती है। रूप-समीक्षा तब जीसस की जीवन-गाथा से धर्म-रूपी सामग्री को भिन्न, पृथक् कर प्रतीत होती है।

जीसस को कई बार ईश्वर को अरेमाइक में 'अब्बा' के रूप में सम्बोधित करते निरूपित किया गया है। अन्य अवसर पर उसे 'अब्बा' के बाद 'पिता' अनुवाद जोड़ता बताया गया है। इन दोनों ही प्रसंगों में यह नहीं बताया जाता कि यह सम्बोधन करते हुए उसे किसने सुना था।

ईसाइयों को सुस्पष्ट, सुनिश्चित रूप में यह नहीं मालूम कि 'आमीन' (अमन) शब्द का अर्थ या महत्त्व क्या है। अनेक लोगों का विश्वास है कि किसी प्रार्थना या कर्मकाण्ड के अन्त में कहे जानेवाले इस 'आमीन' शब्द का अर्थ 'तथास्तु'—'ऐसा ही हो' है। यूरोप ईसाई शब्दकोश भी ऐसे झूठे स्पष्टीकरणों को लोक-प्रसिद्ध कर देने के लिए कुख्यात है। यूरोपीय कोशकारों ने बहुत घटिया और कच्चा काम किया है क्योंकि उनको अपने इतिहासकारों में अन्धा विश्वास था। उन सभी को यह अनुभव करना चाहिए कि विश्व संस्कृति के मूल में हिन्दू-परम्पराएँ और संस्कृत भाषा ही है। 'आमीन' शब्द का अर्थ महत्त्वपूर्ण उदाहरण प्रस्तुत करता है। फारसी भाषा में 'आमीन' का निहितार्थ शान्ति है जैसा कि 'अमनचैन' शब्द-युग्म से स्पष्ट है—अर्थात् शान्ति और चैन या सुख। यह 'अमन' (आमीन) शब्द अर्थात् 'शान्ति' सभी ईसाई कर्मकाण्डों के अन्त में उच्चारित होता है क्योंकि ईसाई-पूर्व यूरोप में हिन्दू-उच्चारण अवश्यम्भावी रूप से 'शान्ति, शान्ति, शान्ति' शब्दों से ही समाप्त होते थे। 'अमन' शब्द इसका फारसी समानक, समतुल्य है।

हैसलर के अनुसार, "'अमन' सूत्र प्रारम्भिक ईसाई-पैगम्बरों द्वारा उस समय प्रयोग में लाया गया शब्दों का रूप था जब उन्होंने उन उक्तियों को उपयोग में लाना चाहा जिनके बारे में उनकी कल्पना थी कि इनको प्रबुद्ध जीसस ने अलौकिक रूप से सम्प्रेषित किया था।"[1]

इस प्रकार 'अमन' शब्द बाइबल के पाठों में पहले और बाद में, दोनों

१. वी० हैसलर, ज्यूरिख और स्टटगार्ट, १९६९ लिखित 'अमन', पृष्ठ १८१-८३।

जगह आना स्पष्ट है। पूर्वकालिक हिन्दू-संस्कृति से ईसाई-परम्परा में इसके आ जाने और वहाँ अनिश्चित, दिग्भ्रमित, अ-बुद्धिगम्य प्रयोग का यह द्योतक है।

अमन शब्द के समान ही जो संस्कृत शब्द 'शांति' का पश्चिम ईसाई पर्याय है पवित्र हिन्दू पाठों का श्रीगणेश प्रारम्भ करने का द्योतक पवित्र संस्कृत ॐ अक्षर भी कृस्ती (ईसाई) प्रार्थनाओं का भाग, अंश बना रहा। अंग्रेजी अनुवाद में 'हे हमारे प्रभु रक्षक' आदि उचित लैटिन भाषा के संस्कृत शब्द 'ओम नम' से शुरू होती है। ये शब्द अभी भी लंदन में सेंट पॉल धर्मपीठ के अन्दर गिरजाघर की मेहराबों में बड़े आकारवाले स्पष्ट अक्षरों में रंग-रोगन (पेंट) किए हुए मिलते हैं।

कृस्ती (ईसाई)-पंथ के बिल्कुल प्रारम्भ में ही ईसाई नेतागण समय-समय पर विश्व के शीघ्र नष्ट हो जाने की आशंका को एक कौतुक के नाते प्रचारित-प्रसारित करते रहे हैं। इसमें वे बड़ी संख्या में लोगों, भीड़ को एकत्र करने में सफल हुए—ईसा को अपना 'रक्षक' स्वीकार कर लो और मुक्ति के हकदार बन जाओ। प्रोफेसर वैल्स ने लिखा है, 'प्रारम्भिक कृस्ती पैगम्बरों ने अपनी ही बुद्धि अनुसार विश्व के अन्त की घोषणा कर दी।'[1] उसने यह भी आगे कहा है, 'धर्मग्रंथों में वर्णित घटनाएँ, साक्षियों प्रत्यक्षदर्शियों द्वारा लिखित होने या उन्हीं द्वारा अन्य लोगों को बताए जाने के बाद लिखी गई परम्परागत विचारधारा को आज लगभग सभी लोगों ने त्याग दिया, अस्वीकार कर दिया है।'

एफ० सी० ग्राण्ट के अनुसार 'ईसाई-धर्मग्रंथों के लेखक पूरी तरह अज्ञात हैं। चर्च में पढ़ने के लिए धर्मग्रंथ व अन्य रचनाएँ सर्वप्रथम बिना शीर्षक के ही रहीं तथा शीर्षकों की आपूर्ति तब की जान पड़ती जब ईसाई समुदाय को कई धर्मग्रंथ प्राप्त होने लगे व उनमें भिन्नता लक्षित करने की आवश्यकता हुई। गिरजे का कानून धर्म-संग्रह की सामग्री एक ग्रंथ की सीमित संख्या रखने में असफल रहा था क्योंकि कुछ प्रभावशाली समुदायों में पर्याप्त शताब्दियों तक मात्र एक ही तथा अन्य लोगों ने कोई अन्य धर्म-

१ 'डिड जीसस ऐक्जिस्ट ?', पृष्ठ ७६।

ग्रंथों को उपयोग में लिया था।"[1]

विश्वास किया जाता है कि मैथ्यू (धर्म-विधान) फिलस्तीन में व्यापक रूप से पढ़ा जाता था, लघु एशिया (एशिया माइनर) में कई गिरजाघरों में केवल जोह्न (धर्म-विधान) का प्रयोग होता था; मिस्र में मिस्रियों का गैर-कानूनसम्मत धर्म-विधान ही वैध स्वीकृत किया जाता था।

शीर्षकों का चुनाव मनमाने ढंग से, अव्यवस्थित रूप से किया गया है। 'मार्क' व्युत्पन्न है 'मेरे पुत्र मार्क' से "जिसका उल्लेख उस 'पीटर धर्म-प्रचारक' के घनिष्ठ सहयोगी के रूप में किया जाता है जो प्रथम पीटर (१ : १ और ५—१३) के रचनाकार के नाते स्वयं को प्रस्तुत करता है। प्रथम शताब्दी के अन्तिम उत्तरार्ध अथवा प्रारम्भिक द्वितीय शताब्दी की यह धर्म-पत्रावली जो पॉल की धर्म-विज्ञानी विचारधारा से प्रभावित है, आधिकारिक पॉलकालीन वातावरण की सृष्टि करने के लिए पॉल के पत्रों से परिचित व्यक्तित्व के रूप में मार्क का परिचय प्रस्तुत करती है। तथापि पीटर को यथा-प्रदत्त एक रचना में मार्क के बारे में यह उल्लेख ही था जिसने इस परम्परा को जन्म दिया कि मार्क की रचना मार्क द्वारा की गई थी जिसने पीटर की उच्चारित स्मृतियों को अंकित किया था।"[2]

जब तक धर्म-पत्रों (ग्रन्थों) के मूल की सावधानीपूर्वक जाँच-पड़ताल नहीं की गई थी तभी तक इसी पर आग्रह था या माना जाता था कि धर्म-ग्रन्थ एक ही प्रकार की समान रचनाएँ थीं क्योंकि इसके लेखकों को अपनी सारी जानकारी पीटर से प्राप्त हुई थी जो प्रत्यक्षदर्शी के रूप में प्रस्तुत किया गया था।

"शीर्षक और लेखक के बारे में पसन्द कितनी कल्पनाशील हो सकती है—तीसरे धर्मग्रन्थ में समान रूप से चरितार्थ होता है। द्वितीय शताब्दी के गिरजाघर ने इस तथ्य की जानकारी होने पर कि लेखक ने 'पट्ट-शिष्यों (धर्म-प्रचारकों) के कार्य' (ऐक्ट्स ऑफ अपोस्सल्स) नाम से अब ज्ञात पुस्तक

१ प्रोफेसर एफ० सी० ग्रान्ट रचित 'दि गौसपल्स, देयर ओरिजिन एंड ग्रोथ', लंदन, १९५७।
२. 'डिड जीसस ऐक्जिस्ट ?', पृष्ठ ७७।

जो कानून-सम्मत ही था (मैथ्यू ४)। पाल यह नहीं जानते कि जीसस के मानवी शत्रु कौन थे और उन्होंने किस प्रकार उसे सूली-दण्ड पर चढ़ा दिया था।

जीसस को सफलता प्राप्त हो ही नहीं सकती थी जैसा प्रायः जोर दिया जाता है क्योंकि कभी किसी को पता ही नहीं चल पाया कि वह कौन था या उसकी भूमिका क्या थी।

पाल ने नए (कुस्ती) पंथ की श्रेष्ठता प्रदर्शित करने के लिए पूरा आधार जीसस की कल्पित शर्म, अपमान और पीड़ा को ही बनाया। किन्तु हम आश्चर्य करते हैं कि इसको समर्थन कैसे प्राप्त हुआ। कदाचित् यह उस जमाने की सभ्यता ही प्रदर्शित करता है कि सफलता ही सर्वपूज्य है। क्योंकि जीसस की शर्म, अपमान और पीड़ा केवल एक आविष्कार, कल्पना ही है जैसा हम इस पुस्तक में सिद्ध कर चुके हैं, आज भी विश्व में अनेक लोग रोजाना शर्म, अपमान और पीड़ा से ही मर रहे हैं। किन्तु क्या किसी ईश-पुत्र होने के ये विशेष लक्षण हैं? तथ्य रूप में तो एक देव-पुत्र को इसका बिल्कुल विपरीत उलटा ही होना चाहिए। उसे अत्यन्त यशस्वी और परिनिष्ठित रूप से पूर्ण कामोपभोग करके जीवन पूर्ण करनेवाला होना चाहिए।

तथापि धर्म-पुस्तिकाएँ तो जीसस का जीवन सत्ता-शक्ति, वाक्पटुता और बुद्धिमत्ता के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न करती हैं। लेकिन उनके आदर-वचनों का कोई आधार नहीं है। पाल द्वारा निरूपित जीसस धर्म-पुस्तिकाओं द्वारा प्रस्तुत जीसस से बिल्कुल संगत नहीं बैठता। धर्म-पुस्तिकाएँ पाल की इस धारणा को बिल्कुल काट देती हैं कि वे दुष्ट आत्माएँ ही थीं जिन्होंने स्पष्टतः जीसस की सच्ची शान और उसके श्रेष्ठ स्तर को प्रथम मान्य कर पाया था (मार्क १ : २४ और ३४)।[1]

पहली शताब्दी में विभिन्न सन्तों द्वारा यह दावा करना आम, सहज बात थी कि "मैं ईश्वर हूँ" या "मैं ईश्वर-पुत्र हूँ" या "मैं ईश्वर का प्रतिनिधि हूँ" या "मैं दिव्य आत्मा हूँ"...आदि।

कुस्ती धर्म-पुस्तिकाओं के रचनाकारों को यह शीघ्र अनुभव होने लगा कि एक दुर्बल, दीन-हीन, अस्पष्ट जीसस पैगम्बर के रूप में तब तक स्वीकार्य, श्रद्धेय न हो पाएगा जब तक कि वे उसे कुछ चमत्कारी रूप प्रदान न कर दें। "मार्क की सर्वाधिक प्रधान चारित्रिक विशिष्टता दोनों परस्पर-विरोधी परम्पराओं को सम्मिश्रित करने का इसका यही प्रयास है।"[1]

उसके उपदेशों, उसकी शिक्षाओं पर भारी जोर दिया जाता है—श्री वैल्स का कहना है—किन्तु धर्म-पुस्तिकाएँ कहती ही नहीं कि उसकी शिक्षा क्या थी। उसने अन्तिम अध्यायों में कुछ चमत्कार किए हैं, भीड़ की बजाय कुछ शिष्यों को सम्बोधित किया है और अन्त में वे भी उसका साथ छोड़ देते हैं। अपनी मृत्यु के समय वह नितान्त एकाकी होता है। विश्वास किया जाता है कि उसने असहाय, असह्य पीड़ा में उच्चारित किया था, "मेरे ईश्वर, तूने मेरा परित्याग क्यों कर दिया है?" किन्तु, लूके ने इसका उल्लेख नहीं किया है।

उसके घनिष्ठतम अनुयायी भी जीसस के मसीहा-स्तर को नहीं जानते जो उसके चारों ओर भारी भीड़ लगाए रहते थे तब उन सामान्य आदमियों को तो पता ही क्या होता।

जीसस के चमत्कार सार्वजनिक समझे जाते थे किन्तु कहते हैं कि उसने स्वयं ही हिदायत दे रखी थी कि उन चमत्कारों को गुप्त ही रखा जाए। प्रोफेसर वैल्स इसको इस प्रकार घोषित करते हैं "सम्पूर्ण धर्म-साहित्य को अनुशासित करने वाला यह एक कृत्रिम, बनावटी और सैद्धान्तिक कारण है और एक ऐसा लक्षण है जो प्रदर्शित करता है कि यह रचना एक सीधा-सादा और घटनाओं का इतिहास समान अभिलेख नहीं है जिसे ज्यों-का-त्यों मान लिया जाए...यह तो प्रारम्भिक क्रिश्चियनिटी (कुस्ती-पंथ) की असंगत कुस्ती बातों को (बनावटी, जाली तौर पर) संयोगात्मक रूप देने का ढंग, उपकरण था।"

ऐसे संश्लेषणों-सम्बन्धी सुसमाचार लेखकों के प्रयासों के बावजूद बहु-

---

१. मार्टिन स्मिथ लिखित 'अरेटोलोजीस, डिवाइन मैन, गोसपल्स एण्ड जीसस' पृष्ठ १८०।

१. 'डिड जीसस ऐक्जिस्ट?', पृष्ठ १०१।

इस पाखण्ड को करता है।

प्रोफेसर वेल्स द्वारा सुझाया गया सम्भावित स्पष्टीकरण यह है कि एक प्रारम्भिक गिरजाघर (पत्र) के कृस्ती नेता को 'चट्टान' की उपाधि इस कारण मिल गई कि जागृत जीसस के सम्बन्ध में उसका दृष्टि-बिन्दु सभी से पहले आया था और कृस्तो-पंथ के विकास में बाद की अवस्था में यह जरूरी समझा गया कि इस प्रसिद्धि-पूर्व स्थिति को जीसस के जीवन-काल में पूर्व-व्याप्त बनाया जाए। इस प्रकार से, पीटर का रचनाकार ही सब प्रारम्भिक कृस्ती समुदाय में पहला पुनरुत्थान-पर्व (ईस्टर) का साक्षी है। यह तो मैथ्यू-संस्करण में है कि जीसस पीटर को 'चट्टान' के नाम से सम्बोधित करता है जिस पर वह अपने गिरजाघर का निर्माण करेगा और पीटर को स्वर्ग के साम्राज्य की कुंजियाँ देने का वचन देता है। उक्त वाक्यावली का सही, वास्तविक अर्थ है कृस्त-समुदाय से व्यक्तियों को बहिष्कृत करने की शक्ति और उसी शर्त को दूर करने की शक्ति। मैथ्यू का उद्देश्य यहाँ गिरजा-सम्बन्धी मामलों के लिए प्राधिकरण स्थापित करना है।

लूक पहला व्यक्ति है जो १२ अनुयायियों को ईसा के पट्ट-शिष्य, धर्म-प्रचारकों के रूप में सम्बोधित करता है। पॉल १२ का उल्लेख द्वितीय पुनरुत्थान के साक्षियों के नाते ही करता है। पॉल यह पूछकर पट्ट-शिष्य के रूप में अपना दावा प्रस्तुत करता है "क्या मैंने अपने प्रभु जीसस को देखा नहीं है?" (१ कॉर० ९ १)। और वह स्वयं का वर्णन "पट्ट-शिष्य होने-वाला सम्बोधित" के रूप में करता है। इनका संदर्भ एक जाग्रत, प्रबुद्ध जीसस के दर्शनों से है, पूर्वकालिक व्यक्ति से नहीं।

२ कॉर० में पॉल कृस्ती प्रचारकों के इस दावे पर वाद-विवाद करता है कि वे ही लोग ईसा के पट्ट-शिष्य थे—पॉल नहीं, क्योंकि मात्र वे लोग ही स्वर्गिक रहस्योद्घाटन चमत्कार और आत्मा के विश्वसनीय प्रतिरूप प्रदान कर सकते थे। वह उन लोगों को झूठे पट्ट-शिष्य कहता है और वास्तविक पट्ट शिष्य (पट्ट-शिष्य) के लक्षणों का उल्लेख करता है। यदि इन पर्चों पर जीसस के सचमुच ही १२ विशिष्ट और निरन्तर अन्तरंग साथी रहे होते तो यह विवाद शुरू ही नहीं होता। इससे यह स्पष्ट है कि

न तो कोई जीसस ही था और न ही उसके १२ पट्ट-शिष्य। पट्ट-शिष्य का वर्णन प्रबुद्ध जीसस द्वारा कार्य के लिए प्रचारक के रूप में बुलाए गए व्यक्ति के लिए किया गया है।

पॉल कृस्ती-परपीड़कों से आमूलचूल परिवर्तित होकर निष्ठावान धर्म-परिवर्तनकारी बन गया और इस बदलाव को उसने एक लोकोत्तर रहस्यो-द्घाटन के आधार पर उचित ठहराया था, न कि जरुस्लम के कृस्तियों द्वारा मात्र मानव-प्रचार के आधार पर।

जरुस्लम में प्रारम्भिक कृस्तियों में कम-से-कम दो गुट, वर्ग थे। एक गुट यहूदियों का था जो यूनानी भाषा बोलता था। दूसरा गुट उन यहूदियों का था जो हिब्रू भाषा बोलता था। पहले वर्ग के लोगों की शिकायतों में से एक यह थी कि जरुस्लम के कृष्ण मन्दिर के कोष से उनकी विधवाओं के खिलाने-पिलाने के लिए कोई प्रावधान, प्रबन्ध नहीं किया जा रहा था (६ १)। अतः यूनानीभाषी यहूदियों ने एक असन्तुष्ट पृथक् समूह, गुट, दल बना लिया। उनके सात नेता थे। हिब्रूभाषी समूह के साथ बारह नेता थे। यूनानीभाषी समूह को मजबूर होकर अन्ततः (यूनान में एथेंस से लगभग ६० मील की दूरी पर) कॉरिंथ में चला जाना पड़ा जहाँ उनको स्थानीय कृष्ण-मन्दिर कोष से अच्छे जीवन-निर्वाह, साहाय्य की आशा थी।

लूके की स्थिति यह हो गई मालूम पड़ती है कि वह पार्टियों में दोनों गुटों के मध्य खींच-तान की सत्यता को लोगों को बताने का साहस नहीं कर सका। स्टीफन यूनानीभाषी समूह से सम्बन्धित था। लूके यूनानी-संस्कृतिवादी स्टीफन के बलिदान को, शहादत की उपेक्षा अवहेलना नहीं करना चाहता था। अतः हिब्रूभाषी वर्ग के १२ नेताओं द्वारा शासित समुदाय में गरीबों को खाना खिलानेवाले उपयाजकों में स्टीफन सहित सात का प्रतिनिधित्व लूके करता है।

प्रोफेसर वेल्स जैसे लेखक भी, जो यह ढूंढ पाने, खोज लेने में तो सफल हुए हैं कि सम्पूर्ण कृस्तीशास्त्र कल्पना-मात्र ही है, यह बता सकने में सर्वथा विफल रहे हैं कि यह कृस्ती-विज्ञान किस स्रोत से विकसित हुआ, इसका जन्म किस कारण हुआ?

शोध के इस क्षेत्र में हमारा मौलिक सहयोग सर्वप्रथम यह स्पष्ट करना

है कि क्रुस्तीशास्त्र अव्यवस्थित, ऊटपटांग और मनमाने ढंग से हिन्दू कृष्ण-शास्त्र पर ही निर्मित निरूपित है। हम दूसरी बात यह सिद्ध कर पाए हैं कि यरूशलम और कोरिंथ में कृष्ण-मन्दिर विशाल धनकोषवाली संयुक्त संस्थापनाएँ थीं। तीसरी बात हमारे अन्वेषण से यह स्पष्ट होती है कि बैथलेहम आदि में इन तथा अन्य सहायक, गौण कृष्ण-संस्थापनाओं में इन मन्दिरों के कोषों पर नियन्त्रण और प्रबन्धन-परिषदों में सत्ता (शक्ति) व वरीयता के प्रश्नों पर मतभेद उभर आए थे। चौथी बात यह है कि हम पता लगा सके हैं कि ये मतभेद क्रुस्ती-दीक्षित जोहन के समय में प्रारम्भ हुए थे। स्टीफन पॉल और धर्मग्रन्थों के रचनाकार बाद में इस गुट से सांठ-गांठ कर बैठे और इसके आंदोलनकर्ता बन गए। इससे इन दोनों गुटों में सम्पूर्ण पश्चात्ताप की लड़ाई शुरू हो गई। प्राचीन विधान मुख्यत हिब्रू-भाषी यहूदियों का ही था। यूनानीभाषी यहूदियों का असन्तुष्ट समूह कोरिंथ में कृष्ण-मन्दिर का प्रबन्ध भी अपने हाथ में, नियन्त्रण में लेने में स्पष्टतः सफल नहीं हो पाया। अतः वे लोग अपनी भावी कार्यवाही पर विचार-विमर्श करने के लिए किसी मित्र के घर पर लुक-छिपकर एकत्र होने लगे। ऐसे विचार-विमर्श को संस्कृत भाषा में चर्चा कहते हैं। क्रुस्तीशास्त्र और क्रुस्ती-पंथ में चर्च शब्द का यही मूल है। असन्तुष्टों के इस नए वर्ग ने एक नए धर्म-विधान का एक ऊलजलूल रूप निर्मित कर लिया जिसका ताना-बाना अभी भी क्रुस्त (क्राइस्ट) के रूप में उच्चारित कृष्ण के चारों ओर ही बुना हुआ था। यह वर्ग फिर अपने समर्थकों की संख्या बढ़ाने में बड़ा [illegible]-ज्ञान में जुट गया। इस प्रकार सदस्य बनना ही बपतिस्मा दीक्षित होना कहलाने लगा जो क्रुस्ती धर्म-परिवर्तन का आज सामान्य प्रकार बन चुका है।

एक बार [illegible] असन्तोष उभारा कि उक्त क्षेत्र के प्रत्येक कृष्ण-पूजा केन्द्र में एक प्रतिद्वन्द्वी गुट स्थापित हो गया। प्रोफेसर वेल्स कहते हैं, "क्रुस्ती-पंथ का प्रत्येक शिष्य भगवान के शब्दों का आविष्कार करने के लिए प्रेरित हो रहा था जिससे विपरीत भाव पैदा होने लगे जैसे कुछ लोगों का आग्रह था कि यहूदी कानून निर्विकार अपरिवर्तनीय था जबकि अन्य लोग इसको पुराना, तुच्छ, अविकसित कहकर इसकी भर्त्सना करने लगे।

ऐसा प्रायः होता है कि जब किसी प्राचीन परम्परा को अकोशवश त्यागना होता है तब कुछ लोग इसे यथासंभव अधिकाधिक बचाने का प्रयत्न करते हैं और कुछ लोग इसे तेजी से छोड़ देना चाहते हैं।"

जुदास द्वारा विश्वासघात और परिणामस्वरूप जीसस को मृत्यु प्राण-दण्ड के बारे में प्रोफेसर वेल्स उपयुक्त रूप में ही स्पष्ट कहते हैं कि, 'आज के मानक श्रेष्ठ क्रुस्ती-ग्रन्थ स्वीकार करते हैं कि जुदास ने क्या धोखा, विश्वासघात किया था और विश्वासघात उसने किया क्यों था—ये असमाधेय समस्याएँ हैं, जिनका हल हो ही नहीं सकता।'[1]

मैथ्यू द्वारा विशिष्ट उल्लेख किया गया मूल्य हास्यास्पद रूप से कम है और जुदास को लोभी व्यक्ति के रूप में निरूपित करनेवाला पाठ जोहन १२ : ४-६ है। इस प्रकार वित्तीय-प्रलोभन को गैर-ऐतिहासिक करार देकर गार्टनर ने स्वीकार किया है कि, "इन पाठ-सारों में स्वयं जुदास की अभिप्रेरणाओं के बारे में हमें कुछ भी नहीं बताया जाता।"[2]

कुछ भी सही, जीसस किसी षड्यन्त्रकारी गुट का सरगना नहीं था, न ही कोई षड्यन्त्र था। क्रुस्ती-परम्परा के अनुसार भी जीसस एक विनम्र, शान्तिप्रिय व्यक्ति था। इसलिए ऐसे व्यक्ति से धोखा, विश्वासघात करने की प्रेरणा भी किसलिए हो सकती थी? कुछ भी मानो, उसे धोखा देने में, दिलाने में लाभ, हित किसका था? और सभी लोगों में से भी जीसस का अति विश्वस्त शिष्य जुदास ही उससे धोखा, विश्वासघात क्यों करे? जीसस ने जुदास के साथ क्या, कौन-सी बुराई की थी? या प्रशासकों का जुदास का सहयोग लेने में कौन-सा स्वार्थ प्रेरक था? और यदि जीसस एक प्रसिद्ध व्यक्ति था, ऐसा ख्याति-नामा था जिसके पीछे भारी भीड़ चला करती थी, सभी जगह और जो कभी खुद छिपकर नहीं रहता था, तो उसे पहचान, परिचय, शिनाख्त की जरूरत क्यों हुई? यह इस बात का एक अन्य संकेतक है कि जीसस की सम्पूर्ण कथा, जो क्रुस्ती-पंथ का पूरा-पूरा आधार है, एक भ्रमित, भ्रमपूर्ण, बनावटी, लोभ-प्रेरित और ऊटपटांग,

---

१ 'डिड जीसस ऐग्जिस्ट ?', पृष्ठ १३२।

२ बिशप ऑफ़ गोथेनबर्ग, बी० गार्टनर लिखित 'इस्कारियट', पृष्ठ १६।

मनचाहे रूप में विकसित कल्पित, झूठी कहानी-मात्र ही है।

मार्क, लूके ६, १६ में ही जुडास को विश्वासघाती, देशद्रोही कहा गया है। यह भी "समर्पित किया गया हवाले किया गया" भाव की सूचक यूनानी क्रिया-पद को गलत रूप में समझने और उसकी गलत व्याख्या करने के कारण ही भ्रम-आधारित है। प्राचीन विधान से पॉल के माध्यम से सुलभ्य एक पुरातन परम्परा ही सुसमाचार लेखकों ने पुनः प्रारम्भ कर दी है। मार्क और उसके स्रोत ने एक परम्परा को गलत समझा और उसको गलत रूप में निरूपित किया जिसने यही नहीं स्पष्ट किया कि कब, किसके द्वारा या किसको जीसस समर्पित कर दिया गया था। एक भारतीय हिन्दू कृष्ण की व्याख्या करनेवाली यूनानी अभिव्यक्ति का अर्थ मात्र इतना था कि कृष्ण ने अपना अवतार-समय समाप्त कर दिया था।

जीसस को बन्दी बनाने की कथा में असंगतियों की ओर ध्यान दिलाते हुए प्रोफेसर कैल्स कहते हैं, "उपेक्षा और बे-खमीर रोटी की दावत के दो दिन पहले प्रधान पुरोहितों (पादरियों) और लेखकों ने जीसस को बन्दी बना लेने और मार डालने का षड्यन्त्र किया। क्रुस्ती-धर्मग्रन्थ में दी गई यह पहली निश्चित तिथि है यद्यपि उतनी निश्चित तिथि नहीं जितनी मार्क ने विचार की थी, चूंकि उपेक्षा १४वीं निसान को प्रारम्भ होती है और बे-खमीर रोटी की दावत १५वीं को—अतः कोई-सी भी तिथि दोनों से दो दिन पूर्व नहीं हो सकती।"[1]

जीसस का अभिषेक बेथेनी में साइमन के घर पर, जो एक कोढ़ी था, किया जाता है। इस तथ्य का कोई योतन जीसस के जीवन में नहीं है कि यह घटना कब हुई। मार्क, लूके और जोहन्न हमें भिन्न-भिन्न सन्दर्भों में कहते हैं। मार्क में एक महिला का उल्लेख जीसस के सिर पर एक कीमती मरहम उंडेलते हुए किया है वहाँ कुछ साक्षीगण रोष में पूछते हैं कि इस (मरहम) का ऐसे बर्बाद क्यों किया जा रहा है और अच्छा होता यदि इसे बेचकर ३०० दिनारें ले लेते तथा वे गरीबों को दे देते। जीसस यह कहते हुए उस महिला का बचाव करते हैं कि, "सब विश्व में जहाँ कहीं क्रुस्ती

१. 'डिड जीसस ऐग्जिस्ट ?', पृष्ठ १३३।

धर्मग्रन्थ का प्रचार होगा, इस महिला ने जो कुछ काम किया है, वही उसकी स्मृति में उल्लेख किया जाता रहेगा।"

उपर्युक्त वाक्य इस बात का द्योतक है कि सुसमाचार लेखकों ने किस प्रकार बाइबल में वे वाक्य ठूंस दिए थे जो ईसा-पूर्व सन्दर्भों में, क्रिश्चियनों के प्रयोज्य थे, उनके सम्मुख विद्यमान थे। अन्यथा, सुसमाचार विश्व की बात जीसस कैसे कह सकते थे ?

जब वे मेज पर अन्तिम ब्यालू के लिए एकत्र थे तब जीसस ने कहा बताते हैं : "१२ में से जो मेरे साथ खा रहा है वही मुझे समर्पित (हवाले) कर देगा।" किन्तु जीसस ने ऐसा कहा ही नहीं होगा। उसने कहा होगा, "तुममें से एक।"

जो प्रश्न उपस्थित होता है वह यह है कि शेष ग्यारह व्यक्तियों ने उस व्यक्ति को रोकने के लिए कुछ भी क्यों नहीं किया जिसको उन्हीं की उपस्थिति में भावी धोखेबाज, विश्वासघाती के रूप में पहचाना जा चुका था।

अरिस्टाइड्स ने ईसा-पश्चात् १४० में लिखा था कि जीसस के १२ शिष्य थे। जीसस के पुनर्जीवन-पश्चात् वे बारह शिष्य क्रुस्ती-धर्मग्रन्थ के प्रचार हेतु आगे गए। जस्टिन मारटियर ने, जो ईसा-पश्चात् १६५ में मर गया, जुडास का उल्लेख भी नहीं किया यद्यपि उसने अन्तिम ब्यालू और जीसस को बन्दी बनाने की घटना का सविस्तार वर्णन किया है।

जीसस की यह तथाकथित भविष्यवाणी कि उसकी गिरफ्तारी और सूली-दण्ड के समय उसके 'शिष्य' 'दूर हो जाएँगे' मार्क द्वारा इस उद्देश्य से ठूंस दी गई प्रतीत होती है कि नए धर्मागन्तुक लोग उत्साहित हों और कट्टर बन जाएँ जिससे अधिकारियों द्वारा दबाव व उत्पीड़न का मुकाबला कर सकें जैसे स्वयं जीसस द्वारा किया गया था—विचार किया जाता है।

जीसस की गिरफ्तारी के बाद, विश्वास किया जाता है कि उसे गेटसेमाने नामक स्थान पर ले जाया गया था, किन्तु इस नाम का कोई स्थान सुनने में नहीं आया।

किन्तु चौथे सुसमाचार लेखक जोह्न ने सोचा कि जीसस द्वारा मृत्यु-दण्ड से क्षमा-याचना वाला गेटसेमाने वाला प्रसंग अशोभनीय प्रतीत होगा,

[illegible] उसने इसको निरस्त कर दिया, उल्लेख नहीं किया। इसके विपरीत उसने जीसस की [illegible] को एक [illegible]पूर्ण प्रश्न "अब मेरी आत्मा कष्ट में है और मैं अब क्या यह कहूँगा कि हे पिता, मुझे इस घड़ी से [illegible] मैं इसी उद्देश्य के लिए मैं इस घड़ी में आया हूँ।" (जोहन [illegible] १२ [illegible]) में परिवर्तित कर दिया।

प्रोफेसर वैल्स का कहना है कि मार्क के अध्याय १५ के प्रारम्भ में ही [illegible] को तीन-तीन घंटों के अन्तराल में अति सावधानीपूर्वक बाँट दिया गया है। तात्पर्य यह है कि मुर्गाकुन ने जीसस पीलेट को भोर (दिन उगने) के समय सौंप दिया था। जीसस को तीसरे घंटे सूली चढ़ा दी गई (अर्थात् प्रातः ९-०० बजे)। सारी धरती पर छठी घड़ी से नवीं घड़ी तक अन्धकार छा जाता है दोपहर (१२-०० से ३-०० बजे तक)। नवीं घड़ी में जीसस की अन्तिम [illegible] निकलती है और वह मर जाता है। सूर्यास्त के समय [illegible] का [illegible] सूली पर से शव को नीचे उतारने की अनुमति प्राप्त करता है। इन छोटे-छोटे [illegible] का प्रयोजन धर्मग्रन्थ-वर्णन को एक [illegible] प्रदान करना था। स्वयं तीन घड़ी-विभाजन भी एक हिन्दू [illegible] ही है जो 'प्रहर' कहलाती है।

विद्वान् [illegible] का विश्वास है कि जुदास द्वारा धोखा और पीटर द्वारा जीसस की [illegible] दोनों ही मार्क द्वारा जोड़े गए प्रक्षिप्तांश हैं जो जीसस के [illegible] को अधिक सुस्पष्ट सजीव और उज्ज्वल रूप देने के उद्देश्य से [illegible] है। किसी नेता की सर्वश्रेष्ठ महत्ता को [illegible] प्रदर्शित करने के लिए [illegible] विश्वासघाती धोखेबाज की कल्पना व उसका निरूपण कर लेना पुरानी [illegible], कौतुक है। यही बात सम्राट् आर्थर, रॉनाल्ड सिगफ्रायड तथा [illegible] के साथ हुई है। जुदास-प्रसंग को अनेक लोगों ने प्रक्षिप्त-प्रसंग माना है। इस पक्ष का समर्थन मध्य द्वितीय शताब्दी के [illegible] कुस्ती-समर्थक [illegible] द्वारा [illegible] था से इस विश्वासघात-प्रसंग को समाविष्ट न [illegible] है।

[illegible] अप्रामाणिक धर्मग्रन्थ के वर्तमान अंश में, जो सूली चढ़ने और पुनर्जीवित हो उठने का पूरा विवरण प्रस्तुत करता है, वर्णन करनेवाला जीसस की मृत्यु-बाद कहता है, 'भगवान् जीसस के हम १२ पट्ट-शिष्य

विलाप कर रहे थे और दुःख में थे।" इसका अर्थ यह है कि जुदास धोखेबाज नहीं था। या फिर, जुदास-प्रसंग उन लोगों के लिए अरुचिकर था जिन्होंने इसे अलग कर दिया। यह इस बात का द्योतक है कि हम जिसको बाइबल समझते, मानते हैं वह विभिन्न लेखकों द्वारा समाविष्ट किए जाने योग्य समझी गई बातों का संकलन है, चाहे वे घटनाएँ हुई हों या नहीं। उदाहरण के लिए, अरिस्टाइड्स 'कृस्ती-पंथ के लिए याचना' सम्राट् को सम्बोधित करते हुए कहता है कि जीसस को 'यहूदियों द्वारा मर्माहत कर दिया गया व गोद दिया गया था।" स्पष्टतः, वह कलंक—बदनामी से रोमन लोगों को बचाना चाहता था।

२०वीं शताब्दी के विद्वानों द्वारा "जीसस की विशुद्ध काल्पनिक जीवन-गाथाओं" के अनेक उद्धरण देते हुए प्रोफेसर वैल्स आश्चर्य करते हैं कि "हमारे युग के प्रारम्भ में कम अनुशासित प्रबुद्धजीवियों में कितना अधिक आविष्कृत, काल्पनिक अंश बिना चुनौती ही चला गया होगा।"[1]

एक पद-टीप में प्रोफेसर वैल्स कहते हैं कि मैथ्यू विवरण में दिए गए नाम (१० २-४) प्रायः प्रक्षिप्तांश समझे गए हैं क्योंकि पद ५ में उसने पद १ के विषय को ही दोहराया है उपचार और (पाप) आत्माओं का दूर लगाने विषयक हिदायतों को स्मरण कराकर, जो वहाँ पहले ही दी हुई है।

जुदास जुदाईयस है और स्पष्टतः एक कल्पित आविष्कृत नाम है जो यहूदियों को कलंकित करने के लिए गढ़ लिया गया है—ऐसा भी कुछ विद्वानों का मत है।

कृस्ती-धर्मशास्त्र के विद्वान् प्रायः तर्क देते हैं कि यदि जीसस कोई वास्तविक ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं हुआ होता, तो उसका सम्बन्ध गैलिली में नजारथ जैसे अप्रसिद्ध अज्ञात से स्थान से किसी प्रकार भी जुड़ा न होता।

प्रोफेसर वैल्स ने उक्त प्रश्न का उत्तर यह कहकर दे दिया है कि यहूदियों की एक सुदृढ़ परम्परा थी कि मसीहा का जन्म डेविड के वंशज के रूप में होगा और डेविड के बारे में कहा जाता है कि वह जुदाईया में

1. 'डिड जीसस ऐग्जिस्ट ?', पृष्ठ १४०।

बेथलेहम (१ सैमुअल १६) का ही निवासी था।

हमारे पास तथापि उपर्युक्त से भिन्न परन्तु अधिक युक्तियुक्त स्पष्टीकरण है जैसा हम पहले ही कह चुके हैं अर्थात् बेथलेहम तो संस्कृत शब्द वत्सलधाम का अपभ्रंश रूप है—जिसका अर्थ प्रिय बाल (शिशु) का घर है जहाँ हिन्दू रीति रिवाज के अनुसार कृष्ण का जन्म रात्रि के १२ बजे उस मन्दिर में मनाया जाता था जहाँ कृष्ण की मूर्ति स्थापित की हुई थी। क्रिस्त (क्राइस्ट) तो 'कृष्ण' शब्द का मात्र अन्य उच्चारण ही है।

हमारा स्पष्टीकरण इस तथ्य से भी पुष्ट, समर्थित होता है कि ईसा-पश्चात् पहली शताब्दी में यहूदियों में मसीह (अर्थात् महेश) के बारे में [illegible] एक ही मान्य मत, विचार नहीं था। मैथ्यू नहीं कहता कि बेथलेहम [illegible] का घर था और न ही वह अपने धर्मग्रन्थ के अध्याय I में जीसस के पूर्वजों और जन्म के अपने वर्णन में इस स्थान का कोई उल्लेख ही करता है। वह इसका उल्लेख मात्र अध्याय II में मागी की कथा के सम्बन्ध में करता है।

सुसमाचार लेखक स्पष्टीकरण तर्क प्रस्तुत करता है कि यह जन्म उस भविष्यवाणी को पूर्ण करने के लिए हुआ जिसमें कहा गया था कि इस्रायल का नया शासक इस्रायल में आएगा। यह तो मात्र हिन्दू, संस्कृत परम्परा से ही स्पष्टतया प्राप्त, साध्य हो सकता है। इस्रायल (ईश्वर का निवास-स्थान) संस्कृत शब्द 'ईश्वरालय' का संक्षेप है। इसी प्रकार बेथलेहम (प्रिय बालक का घर) संस्कृत शब्द वत्सलधाम का अपभ्रंश रूप है। वह प्रिय बालक कृष्ण के अतिरिक्त अन्य कोई है ही नहीं। अपने शिशुकाल में वह 'बालकृष्ण' अर्थात् बच्चा कृष्ण कहा जाता था।

पुनर्जीवन में अन्य सभी बातों की भाँति, पुनर्जीवित हो जाने का कथानक भी पूरी तरह भ्रामक और परस्पर विरोधी है। मार्क और मैथ्यू पुनर्जीवन प्राप्त करने के बाद मात्र गैलिली में ही प्रकट होने का स्थान घोषित करते हैं जबकि ल्यूक इस घटना को जेरुसलम में हुआ बताते हैं।

ईसाई-अनुसंधान के अनेक विद्वान इस बात पर सहमत हैं कि फिलस्तीनी भूगोल के बारे में मार्क का ज्ञान अस्पष्ट अयथार्थ होने के कारण उसके द्वारा बताया गया जीसस का यात्रा-विवरण समीक्षकों को चकरा देता है

(उदाहरण के लिए ७ : ३१ और १० : १)। यह भी व्यापक रूप से स्वीकृत किया जाता है कि गैलिली का महत्त्व बताने में मार्क का उद्देश्य था जेरुसलम की ओर से कृस्ती (ईसाई) समुदायों का लगाव कम करना। गैलिली एक सीधा-सरल क्षेत्र था जिसे यूनानी विचारों और तत्त्वों की घुसपैठ के कारण रूढ़िवादी यहूदियों द्वारा नापसन्द किया जाता था। दूसरी ओर जेरुसलम फिरीसी, पाखण्डियों और पौरोहित्य रूढ़िवादिता का घर था—प्रोफेसर वैल्स का कहना है।

हम यहाँ फिर कृष्ण-पूजा परम्परा के दो या अधिक वर्गों के मध्य फूट देखते हैं जिससे अन्त में कुछ तत्त्वों को अपनी पहचान अलग से ही करनी पड़ी। उन लोगों की यही इच्छा थी जिसके कारण कृस्त-कथा का विकास हुआ।

प्रोफेसर वैल्स कहते हैं, "कृस्ती पंथ का यहूदी धर्म से सम्बन्ध-विच्छेद की ओर गैर-यहूदी, गैर-ईसाई तिरस्कृत गैलिली में निम्नस्तरीय लोगों के लिए ही मोक्ष का संदेश है—यह दिखाने के लिए ही कहानी का भूगोल धार्मिक आवश्यकता के अनुरूप ढाला गया है।"[1] मार्क ने क्रोध के साथ जेरुसलम को जोड़ दिया है जहाँ तक वह इसे धार्मिक अधिकारियों का स्थान समझता है।

ऐसे साक्ष्य से यह स्पष्ट है कि मार्क ग्रन्थ तब लिखा गया था जब कृस्ती-परम्परा पर्याप्त रूप से इतनी विकसित हो चुकी थी कि वह जेरुसलम में रोमन और यहूदी, दोनों ही प्रकार के अधिकारियों को रोष और आशंका का शिकार कर दे। पूरी पहली शताब्दी-भर, गैलिली रोमन और यहूदी, दोनों ही प्रकार की सत्ता के लिए विरोध का प्रबल केन्द्र बना रहा। चूँकि उन दिनों में धार्मिक रुझान और भावनाएँ बहुत दृढ़ और उग्र थीं, इसलिए गैलिली में विद्यमान विपक्षी नेताओं ने भगवान् कृष्ण को अपना आराध्य-देव माननेवालों का विरोध करने के लिए कृस्त (क्राइस्ट) के नाम से एक नया मत, नया वर्ग खड़ा करने का सुअवसर प्राप्त कर लिया। इस प्रकार, क्षेत्र में परम्परागत कृष्ण-पूजा के कई केन्द्रों में से गैलिली (अर्थात् गोपालय)

---

१. 'डिड जीसस ऐग्ज़िस्ट ?', पृष्ठ १४४।

नए कृस्ती-विवाद के पूजा-स्थान मन्दिर के रूप में विकसित हो गया।

बपतिस्मा का कृत्य भी कृष्ण-प्रकरण का एक प्रकारान्तर ही था—यह भी इस तथ्य से प्रत्यक्ष, स्पष्ट है कि कुछ इससे पूर्व की तारीख की एवरा-... से समारोह का प्रतीक सागर से बाहर आते हुए एक मानवाकृति के रूप में दिखाया गया है। यह इस बात का द्योतक है कि यमुना नदी की उफनती जलधारा में सप्त-फनधारी सर्प कालिया नाग के ऊपर नर्तन करते हुए भगवान् कृष्ण का चित्र कृस्ती-पूर्व काल में फिलस्तीनी क्षेत्र में प्रचलन में था। बाल-कृष्ण को वास्तव में उक्त जलधारा में डुबकी लगानी पड़ी थी और विजयोपरान्त उस दुष्ट नाग के फन पर नृत्य करते हुए ऊपर आने से पूर्व उस सर्प से भीषण संघर्ष करना पड़ा था।

कृष्ण-पूजा सम्प्रदाय के विभिन्न वर्गों में वाद-विवाद, जिसके कारण एक विभिन्न पंथ की स्थापना हुई, चरित २४.५ में स्पष्ट है जहाँ कुछ यहूदी ... का वर्णन नज़रीनों अर्थात् कृस्तियों के सरगना के रूप में ... है। तालमुद में भी यह शब्द पृथक् हुए वर्ग के लिए अपशब्द के रूप में ही यहूदी शब्द है। वास्तविक कृस्ति-पूर्व नज़रीनी लोग हिन्दू तपस्वी ही थे जो पुनः प्रदर्शित करता है कि नज़रथ उपनाम नन्दरथ (अर्थात् भगवान् कृष्ण के पालक बाबा नन्द का रथ) कृष्ण-पूजा का एक स्थान ही था।

मार्क उल्लेख करता है कि जीसस ने एक स्थान पर आए लोगों को (धर्म) प्रचार किया और उनको आश्चर्यचकित कर दिया। किन्तु वह यह स्पष्ट नहीं करता कि उसकी शिक्षा, धर्मोपदेश क्या था और उसमें आश्चर्य-चकित होने करने की बात क्या थी।

जीसस के जन्म और शैशव के वर्णन जो मात्र मैथ्यू और लूके में दिए गए हैं स्पष्टतः उसके लोक-चरित के वर्णन के पूरक के लिए प्राक्कथन के रूप में लिखे गए थे। मैथ्यू जीसस के शैशव और बपतिस्मा के बीच उसके जीवन के बारे में कुछ भी नहीं बताता। लूके उस अभाव को भरने के लिए मात्र एक घटना—कि १२ वर्षीय जीसस मन्दिर गया था—का उल्लेख करता है। वह मन्दिर स्पष्टतः भगवान् कृष्ण का मन्दिर ही था।

जीसस को एक मौलिक वास्तविक ऐतिहासिक व्यक्तित्व माना जाए इसलिए सुसमाचार लेखकों ने उसे जोह्न बपतिस्मी, दीक्षित से जोड़ दिया

है। जोह्न उस युग का एक हिन्दू तपस्वी था। वह अपने अनुयायियों और शिष्यों को अपने संप्रदाय में औपचारिक रूप से प्रवेश देता था और इसके लिए हिन्दू-परम्परानुसार शुद्ध जल उनके ऊपर छिड़क देता था जिस विधि को पवित्र स्नान का प्रतीक माना जाता था। बपतिस्मा नाम से प्रसिद्ध वह दीक्षा-प्रणाली तथ्यतः एक हिन्दू कृत्य, कर्मकांड है। हिन्दू-समारोहों में पवित्र जल व्यक्तियों, वस्तुओं, देव-प्रतिमाओं, पूजा-स्थान तथा चारों दिशाओं में भी छिड़ककर उनको शास्त्रीय, वैध रूप से शुद्ध कर लिया जाता है।

जोह्न, जिसको कृस्ती-अनश्रुति में छद्म-रूप में, चोरी से प्रविष्ट कर दिया गया है, एक (धर्म) प्रचारक था जिसके अपने अनुयायी थे और जो कुछ क्षेत्रों में ईसा-पश्चात् दूसरी शती तक चलते रहे। उक्त सम्प्रदाय के खिलाफ कृस्ती-विवाद इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि जोह्न और उसकी शाखा, दोनों ही, गैर-कृस्ती थे। यदि ऐसे जोह्न ने जीसस को दीक्षित भी किया था तो (भी) वह दीक्षा-कर्म वयस्कता में दीक्षित करने का हिन्दू संस्कार-अंश ही था।

यहूदी धर्मग्रन्थ तालमुद में जोह्न अथवा ईशानियों का भी कोई उल्लेख नहीं किया गया है क्योंकि दोनों ही रूढ़िवादी यहूदी जाति से बहुत कम भिन्न थे। वे यद्यपि यहूदी थे, तथापि जोह्न और ईशानी लोग मूल रूप से हिन्दू ही थे जो विभिन्न सम्प्रदायों, टुकड़ों, वर्गों, शाखाओं में बँट गए थे। इसी का समानान्तर रूप हमारे युग में भी मिल जाता है। भारत में आज हमें सनातन धर्म, आर्यसमाज, 'हरे कृष्ण' अभियान, जैन, बौद्ध, सिख, वैष्णव, शैव आदि शाखाओं के अनुयायी मिल जाते हैं। वे सभी व्यावहारिक रूप से हिन्दू हैं, फिर भी अपना-अपना निजी अस्तित्व बनाए हुए हैं।

ईशानी लोग हिन्दू भगवान् ईशाण अर्थात् शिव के अनुयायी थे। उत्तर-पूर्व दिशा संस्कृत भाषा में ईशाण कहलाती है क्योंकि वह दिक्पाल भगवान् ईशाण द्वारा संरक्षित मानी जाती है।

जोह्न चाहता था कि रूढ़िवादी, पुरातनपंथी यहूदी उसी के सम्प्रदाय के अनुयायी बनें। यहूदी इतिहास-लेखक जोसेफस ने जोह्न का वर्णन एक

रूप में किया है जिसने यहूदियों को दीक्षा-ग्रहण करने के लिए प्रेरित किया था किन्तु टेटरार्च द्वारा जिसकी हत्या कर दी गई थी क्योंकि वह जोहन की प्रचार-शक्ति के राजद्रोहात्मक प्रभाव से आतंकित था। प्रोफेसर वैल्स विश्वास करते हैं कि "यह सत्य है कि जोसेफस के मूल पाठ में कृस्तो-लेखकों ने अन्य उद्धरणों में काफी अदल-बदल, परिवर्तन, पुनर्लेखन, हेरा-फेरी की है।" कहने का अर्थ यह है कि कृस्तो-नेता-गण एक गैर-विद्यमान जीसस के ऊपर एक कृस्त कथा गढ़ डालने पर ही न रुके बल्कि अन्य लोगों द्वारा लिखित इतिहास-ग्रन्थों में भी उन लोगों ने जाली अंश ठूंस दिए। इस तथ्य से विश्व-भर के विद्वानों और सत्य के प्रेमियों को कृस्तो-पंथ से सम्बन्धित मामलों के अध्ययन के समय अत्यन्त सावधान रहने की आवश्यकता अनुभव कर लेनी चाहिए। किसी भी बात पर तब तक विश्वास नहीं करना चाहिए जब तक सूक्ष्म जाँच-पड़ताल द्वारा वह सिद्ध, प्रमाणित न हो जाए।

यहूदी इतिहास-लेखक जोसेफस (दीक्षित) का उल्लेख मात्र एक बार किया है। वहाँ उसने जोहन को जीसस से नहीं जोड़ा है। पहली शताब्दी के भी कृस्ती (धर्म)-पत्रों में जोहन और जीसस का कोई सम्बन्ध नहीं दिखाया गया है। स्वयं पॉल भी, जिसने उल्लेख किया है कि प्रारम्भिक कृस्ती-पंथ एक बपतिस्मी संप्रदाय (दीक्षित वर्ग) था, कभी जोहन का उल्लेख ही नहीं करता। तथ्य रूप में तो, नव-विधान के किसी भी धर्म-पत्र में जोहन के धर्मोद्देश्य के बारे में या जीसस की गैलिली मन्त्रणा परिषद् के बारे में कोई चलते-चलते सन्दर्भ भी नहीं है यद्यपि उनमें जीसस की शारीरिक यातनाओं और उसकी मृत्यु के बारे में पर्याप्त वर्णन किया गया है। कृस्ती धर्मग्रन्थ, जो इन दोनों व्यक्तियों को जोड़ देते हैं, वे धार्मिक प्रवर्तकों के लिए ही लिखा करते हैं।

जोहन को जिस टिप्पणी का श्रेय दिया जाता है (मार्क १ ७), "मेरे बाद मुझसे अधिक शक्तिशाली, सामर्थ्यवान का आविर्भाव होना है"—यह ऐसी टिप्पणी है जो प्रत्येक प्रचारक अपने अनुयायियों के समक्ष किया

१. 'डिड जीसस ऐग्जिस्ट ?', पृष्ठ १५२।

ही करता था। इसी प्रकार (गीत ११८ ६ में) यह कथन कि 'वह भाग्यशाली है जो भगवान् के नाम पर यहाँ आया है" ऐसी शब्दावलि है जो सभी मन्दिरों के पुरोहित सभी दर्शनार्थी भक्तजनों से कहा करते थे। इस वक्तव्य को मसीहा के प्रति सम्बोधित मानकर कृस्तो-पंथी स्वच्छन्द रूप से गलत अर्थ देकर लोगों को भ्रमित कर रहे हैं।

मार्क जोहन को जीसस का पूर्ववर्ती सिद्ध करने के लिए इतना व्यग्र है कि वह कहता है कि जीसस द्वारा धर्म-प्रचार कार्य किए जाने से पूर्व ही जोहन को कारावास देकर स्थान-च्युत कर दिया गया था जोहन बन्दी बना लिया जाने के बाद, जीसस परमात्मा (भगवान्) के धर्म-विधान का प्रचार करने के लिए गैलिली आए।" (१ १४)। इस सन्दर्भ में जोहन की गिरफ्तारी की बात स्पष्टतः बनावटी, जाली रूप से प्रविष्ट कर दी गई प्रतीत होती है ताकि जोहन के कार्यकलापों को जीसस के आचरण से पृथक् किया जा सके।

जोहन के धर्म-प्रचार के वर्णनों के बाद तुरन्त ही जीसस का उल्लेख किया जाता है, और इस प्रकार के सान्निध्य, पास-पास रखने से सुसमाचार लेखक यह भाव प्रेषित करना चाहते हैं कि आविर्भूत होनेवाला शक्ति-शाली, सामर्थ्यवान व्यक्ति यह (जीसस) ही है।

प्रोफेसर वैल्स का विचार है कि, 'बहुत अधिक संभाव्य है कि प्रारम्भिक शैशव कहानियाँ पहले ही विद्यमान थीं और लूके ने उन्हीं को अपने धर्मग्रन्थ में स्थान दे दिया था।" उनका विचार ठीक ही है। सभी हिन्दू समुदायों में भगवान् कृष्ण के शैशव-बाल्यकाल की कहानियाँ प्रायः पढ़ी जाती हैं, स्मरण की जाती हैं और उनका गुणगान होता है। यही बात उनके बारे में प्राचीन यूरप में और अरब-भू-प्रदेशों में थी।

बाइबल में अनेक असंगतियों में से प्रोफेसर वैल्स बताते हैं कि "चौथी धर्म-पुस्तिका में जीसस और बपतिस्मादाता को इतने निकट ला दिया गया है कि उनकी मन्त्रणा-परिषदें परस्पर गड्ड-मड्ड हो जाती हैं। सह-दर्शी में वे केवल जीसस के बपतिस्मा पर मिलते हैं जिसके बाद बंदी बना लिए जाने के कारण जोहन स्थान-च्युत हो गया। फिर जीसस ने धर्म-प्रचार प्रारम्भ किया। किन्तु चौथी धर्म-पुस्तिका में साग्रह कथन है कि जीसस

की मन्त्रणा परिषद् के प्रारम्भ के समय जोहन स्वतन्त्र था और बपतिस्मा दीक्षा-कार्य भी कर रहा था (३ : २२-४)। दोनों को एक ही समय सक्रिय दिखाकर चौथी धर्म-पुस्तिका इस तथ्य पर जोर दे सकने में सक्षम है कि जीसस का बपतिस्मादाता से अधिक प्रभाव था (४ : ११) और परवर्ती ने अपने अनुयायियों का अपने प्रति निष्ठा जीसस की ओर करने को प्रोत्साहित करके पुत्र (जीसस) की श्रेष्ठता स्वीकार, मान्य कर ली थी।"[1] किन्तु यदि यह सत्य होता तो जैसा ४ : १ में तथाकथित रूप से कहा गया है, बपतिस्मादाता जीसस से स्वतन्त्र, अलग ही यह दीक्षा-कार्य क्यों चालू रखे रहा?

स्पष्टतः प्रारम्भिक कृस्ती नेतागण अति सूक्ष्म रूप से धूर्ततापूर्वक यह अनार्य/दार्शनिक सुझाव प्रस्तुत करते जा रहे थे कि किसी भी पंथ, सम्प्रदाय से सम्बन्धित हर व्यक्ति को स्वयं को एक कृस्ती ही घोषित करना चाहिए।

स्वयं बपतिस्मादाता जोहन के सम्प्रदाय को (भी) प्रारम्भिक कृस्तियों द्वारा खतरनाक प्रतिद्वन्द्वी समझा गया था। उसको मार्ग से हटा देने के लिए इन लोगों ने षड्यन्त्र द्वारा ऐसा निरूपित किया मानो वह अपनी मन्त्रणा-परिषद् जीसस को सौंप रहा था और तत्पश्चात् प्रत्येक व्यक्ति को जीसस को प्रथम मसीहा के रूप में ही स्वीकार करना चाहिए।

जोहन द्वारा जीसस को बपतिस्मा, दीक्षित किए जाने के कार्य को सुसमाचार लेखक मार्क द्वारा भी षड्यन्त्र का एक भाग बनाया गया था ताकि अन्यथा अज्ञात, अप्रसिद्ध जीसस को आविर्भूत मसीहा घोषित करने का अवसर मिल जाए।

पाल जो ईसा-पश्चात् ३४वीं सन् के आसपास धर्म-परिवर्तित हो कृस्ती-पंथ अंगीकार कर चुका था और जिसने ईसा-पश्चात् ७०वीं सन् से पहले विद्यमान धर्म-ग्रन्थ लिखे थे जीसस के जोहन के साथ साहचर्य या सहवास के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं जानता और न ही वह उसे नजरीन या नज़रेथ से सम्बन्धित करता है। प्रथम शताब्दी के अन्य धर्म-पत्र लेखक भी

१. 'डिड जीसस ऐग्ज़िस्ट?' पृष्ठ १५४-१५८।

इसके बारे में चुप हैं।

प्रोफेसर वैल्स कहते हैं कि, "मार्क जिसका धर्मग्रन्थ परम्परागत रूप से लगभग ईसा-पश्चात् ७० सन् का लिखित कहा जाता है किन्तु जिसने इसे पहली शताब्दी के अन्त के आसपास ही लिखा होगा, जीसस के बारे में बिल्कुल भिन्न रूप में लिखता है। जब कोई व्यक्ति गिरजाघर (चर्च) के जीवन में हुए भारी परिवर्तनों को—जो पॉल और मार्क के बीच कालखण्ड में हुए—इसके संरचनात्मक तत्त्वों में, इसके भौगोलिक विस्तार में और इसके धार्मिक दृष्टिकोण में हुए परिवर्तनों को देखता है तो हमें यह जानकर आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि मार्क ने उन बातों का निरूपण कर दिया है जो उससे पूर्व के लेखकों को सर्वथा अज्ञात थीं।" प्रोफेसर वैल्स सावधान करते हैं कि "उन बातों को आधिकारिक, सत्य स्वीकार करने के लिए कहना तो हमें कुमन्त्रणा ही होगी।"[1]

श्री वैल्स का यह दावा कि "सुसमाचार लेखकों को जीसस से उस बात को कहलवाने और वह कार्य करवाने में कोई संकोच नहीं था जो तथ्यतः उनकी अपनी धर्म-विधा का ही प्रतिनिधित्व करते हैं उनके धर्म-ग्रन्थों की तुलना से उद्भूत है। जीसस ने अन्तिम ब्यालू के अवसर पर, सूली पर चढ़े हुए और पुनर्जीवित हो जाने पर शेष ग्यारह लोगों को अनुदेश हिदायत के रूप में क्या कहा—यह सब मात्र इस पर निर्भर करता है कि हम कौन-सी ईसाई (कृस्ती) धर्म-पुस्तिका से विचार, प्रेरणा लेते हैं।"

उदाहरण के लिए, मार्क-धर्म-पुस्तिका (१४ : २४) में जीसस ने विस्मय-विदग्ध होकर कहा बताया जाता है "यह मेरे प्रतिज्ञा-पत्र का रक्त है, जो बहुतों के लिए निकाला, बहाया जा रहा है।" इस कथन के साथ मैथ्यू (२६ : २८) ने यह और जोड़ दिया है "पापों की माफी के लिए।"—"इस प्रकार के विवरण प्रदर्शित करते हैं कि सबसे प्राचीन विद्यमान धर्म-पुस्तिका पर भी भरोसा विश्वास करके हम कितने गैर-बुद्धिमान ही होंगे" न ही धर्म-प्रचारक और न ही वे सुसमाचार लेखक कोई निर्लिप्त, अनासक्त, असम्बद्ध इतिहास-लेखक थे और उन्होंने जो कुछ

१. 'डिड जीसस ऐग्ज़िस्ट?', पृष्ठ १५४-१५८।

वर्णन किया उसकी सत्यता की कसौटी उन प्रतिवेदनों के बारे में उनका पत्र-व्यवहार इसलिए नहीं था कि क्या घटित हुआ था बल्कि क्रिस्ती-समुदाय की औसत की छवि के बारे में इन प्रतिवेदनों की निष्ठा थी जो स्वयं अनेक आत्मप्रवानी शक्तियों से निर्धारित होती थी।"[१]

१. 'दि जीसस इन्सिडेन्ट ?', पृष्ठ १५४-१५८।

अध्याय ४

पॉल कौन था ?

पॉल का मूल, वास्तविक, असली नाम सॉल कहा जाता है। इस नाम को किसने व कब पॉल में बदल दिया, ज्ञात नहीं है। हमारे अनुसार तो पॉल व सॉल दोनों ही हिन्दू नाम हैं। सॉल (जो संस्कृत भाषा में 'शाल' उच्चारण किया जाता है) आकार या गुणों में महानता, बड़प्पन का अर्थ-द्योतक है। तथापि उसका यह अर्थ नहीं है कि पॉल आवश्यकीय रूप से वैसा ही (महान्) था क्योंकि शिशु को तो प्रायः वह नाम जन्म से ही दे दिया जाता है जो उसके माता-पिता अथवा अन्य सम्बन्धियों को मन-भावन लगता है। जन्म के समय ही बच्चे को दे दिए गए नाम का प्रायः उसके उत्तरकालीन विकास से कोई सम्बन्ध या लेन-देन नहीं होता।

बदलकर रखा गया, धारण किया गया स्वयं पॉल नाम भी, जो संस्कृत-उच्चारण में 'पाल' कहा जाता है, संरक्षक या पालन करने वाला कहलाता है—उसका अर्थ-द्योतन करता है। चूँकि भगवान् कृष्ण अपने पालक जनक नंद के पशुओं का पालन, देखभाल करते थे, इसलिए उनको प्रायः 'गोपाल' कहा जाता है। इस प्रकार, ग्रहीत 'पॉल' नाम भी कृष्ण से ही सम्बन्धित है। अतः, पॉल कृष्ण-पथ का एक हिन्दू ही था। 'सेंट' नामक उपाधि, सम्बोधन जो उससे सम्बन्धित है, वह भी संस्कृत का 'संत' शब्द है।

यूनान के कोरिंथ नगर में एक विशाल और विश्व-प्रसिद्ध कृष्ण-मन्दिर था। "उक्त नगर के वाणिज्य और धन-दौलत से आकर्षित होकर आनेवाले विदेशी अल्पसंख्यक समूहों में यहूदियों की एक बड़ी बस्ती थी और ईसा के पट्ट-शिष्य, धर्म-प्रचारक पॉल ने इस बस्ती में सम्भवतः ईसा-पश्चात् सन् ५१ में आगमन किया था। वह मैसेडोनिया के अनेक नगरों का भ्रमण कर चुकने और एथेन्स में काफी समय रुकने तथा वहाँ से उपहास का शिकार हो

नगर छोड़कर चला गया था और कोरिंथ में यूनान की उत्तर दिशा से आया था। कोरिंथ में उसने यहूदियों में अपनी धार्मिक गतिविधियाँ चालू रखीं जिसके कारण उसका रोमन अधिकारियों से संघर्ष शुरू हो गया और इस बिन्दु से ही उसने गैर-यहूदी गैर-ईसाइयों का धर्म-प्रचारक बनने की तौर से हट जाने का फैसला कर लिया। वह १८ मास तक कोरिंथ में रहकर तम्बू-निर्माता का अपना धंधा और नए धर्म का प्रचार-कार्य करता रहा। वह जब वहाँ से गया, तब तक एक समृद्धिशाली कृस्ती चर्च स्थापित हो चुका था और उसी के सदस्यों को—कोरिंथवासियों को—उसने अपने दो धर्म-पत्र लिखे थे।"[1]

मासासियो द्वारा पीसा पोलिप्टिक में सेंट पॉल के चित्र में, जो अब पीसी-इटली के म्युजियो नैशनेल डि सान मट्टेइओ (राष्ट्रीय संग्रहालय) में संग्रहीत है उसके एक हाथ में पुस्तक और दूसरे हाथ में तलवार दिखाई गई है। भूल, गलती से बाइबल समझी गई पुस्तक तथ्यतः भगवान् कृष्ण की भगवद्गीता है जिसके दो स्पष्ट सरल कारण हैं जिनमें से पहला यह है कि उस समय के अन्य सभी लोगों के समान ही पॉल भी अपनी शैशवावस्था से ही भगवान् कृष्ण की पूजा करनेवाला और भक्त था तथा दूसरा यह है कि बाइबल जैसी हम इसे आज पाते हैं सेंट पॉल के जीवन-काल में संकलित ही नहीं हुई थी। इतना ही नहीं, तलवार भी एक प्रकार से भगवद्गीता का ही प्रतीक है क्योंकि युद्धक्षेत्र में अपने शिष्य अर्जुन को दिए गए भगवान् कृष्ण के भगवद्गीता के संदेश, उपदेश ने ही अन्ततोगत्वा अपने कर्तव्य-पालन हेतु अन्तिम क्षण तक युद्ध करने के लिए अर्जुन का फौलाद का दिल बना दिया था।

कठोर अनुशासन के इस सिद्धान्त के माध्यम से ही हिन्दुओं ने लाखों वर्षों तक विश्व पर शासन किया था। हिन्दू सम्राटों और ऋषि-मुनियों ने जब इस कठोर अनुशासन के उच्च मानक आदर्श में शिथिलता, ढील कर दी तभी यह विश्व विभिन्न परभक्षी, लुटेरे समुदायों का शिकार हो गया जिसने सभी कानून, व्यवस्था, शान्तिपूर्ण प्रगति और सज्जनता का अन्त

१ कैथोलिक एनसाइक्लोपीडिया, वाल्यूम 7, पृष्ठ ३३३-३४।

आ गया।

चित्र में पॉल के हाथ में दिखाई गई पुस्तक यदि बाइबल होती तो यह असंगत, असम्बद्ध होती क्योंकि जीसस की धर्म-पुस्तक तो दूसरा गाल भी मार, थप्पड़ खाने के लिए कर देने का उपदेश देती है। जीसस के बारे में स्वयं ही कोई दावा नहीं किया जाता कि उसने कभी कोई हथियार उठाया था। फिर उसका एक अनुयायी पॉल किस प्रकार तलवार ग्रहण कर सकता था? यह सिद्ध करता है कि पॉल उपनाम सॉल एक हिन्दू था जो भगवद्-गीता का प्रचार करता था।

पॉल को सिर पर बाल व दाढ़ी सहित चित्रित किया जाता है। उसे एक कुर्ता-धोती धारण किए दिखाया जाता है जो पहली शताब्दी में हिन्दू-प्रचारक की परम्परागत वेशभूषा थी।

पॉल को यहूदी वर्णित किया जाता है। किन्तु यहूदी तो स्वयं भगवान् कृष्ण के अनुयायी हैं। अतः आधुनिक शब्दावली में यहूदी लोग हिन्दू रहे हैं और आज भी हिन्दू ही हैं।

अपने जीवन के प्रारम्भिक कालखंड में पॉल कृस्ती चर्च का घोरतम शत्रु था किन्तु बाद में उसके जीवन ने पूरी कलाबाजी खा ली और वह एक उत्साही कृस्ती धर्म-प्रचारक और धर्मशास्त्री बन गया। उसके पत्र सबसे पूर्व-काल के विद्यमान कृस्ती-दस्तावेज हैं जो नव-विधान के धर्मग्रन्थों से भी पूर्व-तारीख के हैं।

पॉल का जीवन-चरित नव-विधान और उसके पत्राचार से उपलक्षित करना, अनुमानतः समझना है। ये दो स्रोत भी अविश्वसनीय हैं। उसके पत्राचार में से रोमन्स, I व II कोरिंथियंस तथा गैलाशियंस वास्तविक, असली सच्चे, माने जाते हैं। किन्तु पत्रों से स्वयं ही पॉल के जीवन की कोई सम्बद्ध कथा किसी को मिलती नहीं। पॉल की मृत्यु के ३० वर्ष बाद लिखे गए कार्य-चरित उसके जीवन-काल के बारे में कुछ साक्ष्य रखते हैं। किन्तु इससे उसके पत्रों द्वारा प्राप्त विवरण से मेल नहीं बैठता। कुछ विद्वान् (नवविधान में, पट्ट-शिष्यों, धर्म-प्रचारकों के) चरितों के इतिहास पर प्रश्नचिह्न लगाते हैं। कुछ लोग विश्वास करते हैं कि चरित का लेखन पॉल के साथी सुसमाचार लेखक लूक द्वारा हुआ था। धर्म-प्रचारकों के चरित में

वाले के अधिक भाग में पॉल का चरित है। और यह पॉल द्वारा लिखित तथा उसके नाम से सम्बोधित पत्रों को मिलाकर नवविधान का एक-तिहाई भाग बन जाता है।

पॉल का जन्म 'एशिया मधु' (एशिया माइनर) के एक जिले सिलिसिया में तारसुस नामक स्थान पर हुआ था। तारसुस मुख्य पूर्व-पश्चिम व्यापार-मार्ग पर स्थित महानगरीय विश्वविद्यालय स्तरीय उच्च शिक्षा का केन्द्र नगर था। यह नगर कई स्टोइक सुख-दुःख उपेक्षी दर्शनों का घर था। स्टोइक लोग हिन्दू थे। यह संस्कृत शब्द 'स्तविक' है जो संयमी, मिताहारी बनने के लिए ध्यान साधन में लगे रहते हैं। पॉल को अपने महानगर और हिन्दू पृष्ठभूमि का गर्व स्वाभिमान था। उसके वातावरण, परिसर को यूनानी कहना, जैसा विद्वानों का अभ्यास है गलत है। यूनानी और रोम-निवासी हिन्दू देव-देवियों की पूजा करते थे, हिन्दू कर्मकाण्डों और त्योहारों का पालन करते थे—उनको मनाते थे तथा संस्कृतनिष्ठ भाषाएँ, बोलियाँ बोलते थे। पॉल ने अपने पिता से रोम की नागरिकता ग्रहण की। उसने यहूदी नाम के स्थान पर अपना रोमन नाम पॉल रखना ही अच्छा, रुचिकर, श्रेयस्कर माना। यह एक सहज, स्वाभाविक मानव-कमजोरी है। लोग वही करना चाहते हैं जो उनके शासकों के आचरण के अनुसरण में होता है या, हम कह सकते हैं कि प्रशासकों द्वारा प्रयुक्त नाम सुगमता, सरलता से चल सकता, स्थायी बन जाता है।

मत्ती के अनुसार कानून के सुप्रसिद्ध प्रचारक गमालील I द्वारा ही पॉल को एक 'रब्बी' होने के लिए प्रशिक्षित किया गया था। यह रब्बी शब्द भी सूर्य सूचक के अर्थ-द्योतक संस्कृत शब्द 'रवि' का अपभ्रंश ही है। अधिकांश रब्बियों के समान ही पॉल ने भी व्यापार अर्थात् तम्बू-निर्माण का कार्य सीख लिया। विद्वानों ने यही निष्कर्ष निकाला है कि पॉल ने कभी जीसस से भेंट नहीं की किन्तु वही विद्वान यह खोज पाने में विफल रहे कि पॉल और जीसस परस्पर कभी नहीं मिले मात्र इस कारण कि जीसस जैसा हो कभी नहीं था। तथ्य तो यह है कि पॉल मानता था कि जीसस का पात्र सर्वथा काल्पनिक कथा ही है। यही कारण है कि अपने जीवन-काल के प्रारम्भिक वर्षों में पॉल ने ईसाइयों को पीड़ित किया था।

किन्तु प्रतीत होता है कि पॉल का अनियंत्रणशील भावुक स्वभाव था जो एक अति से दूसरी अति पर अति शीघ्रता से परिवर्तित हो जाता था। जीसस से घृणा, द्वेष करनेवाला पॉल किस प्रकार जीसस-प्रशंसक बन गया—इस तथ्य का उल्लेख करते हुए ब्रिटिश ज्ञानकोश का कहना है कि, "दमिश्क की सड़क पर दृष्टिपात से पॉल को निश्चय हो गया कि मृत्यु-दण्डित यह जीसस पुनः जीवित हो गया था। इस अनुभव के तुरन्त बाद पॉल अरेबिया में एकाकीपन में चला गया। परवर्ती वाद-विवाद में उसका साग्रह कथन था कि उसने सीधे कृस्त (क्राइस्ट) से ही न केवल पट्ट-शिष्यत्व ग्रहण किया था अपितु अपना धर्मग्रन्थ भी। उसने तथापि उन परम्पराओं को भी उन लोगों से ग्रहण करने की बात कही जो उससे पूर्व कृस्ती थे।"[1]

लोग ज्ञानकोश में दिए गए कथनों को सामान्य आधिकारिक और पूर्णतः सही, सटीक मानते हैं। परन्तु इन ज्ञानकोशों में लिखित सहयोग, योगदान करनेवाले हमारे ही समान भ्रमशील, अविश्वसनीय भी हो सकते हैं क्योंकि वे भी हममें से ही तो होते हैं। ब्रिटिश ज्ञानकोश भी कोई अपवाद नहीं है। हम पाठकों के ध्यान में यह तथ्य लाना चाहते हैं कि ब्रिटिश ज्ञान-कोश में भी कई विषयों के बारे में भयंकर भूलें समाविष्ट हैं। उदाहरण के लिए, उक्त ज्ञानकोश निरन्तर यही कहता चला आ रहा है कि ताजमहल मकबरा १७वीं शताब्दी में मुगल बादशाह शाहजहाँ द्वारा बनवाया गया था, यद्यपि हम अपने शोध-प्रकाशन 'ताजमहल मन्दिर भवन है' द्वारा इसे अधिक प्राचीन शिव-मन्दिर सिद्ध कर चुके हैं।

बम्बई उच्च न्यायालय के २०वीं सदी के एक न्यायमूर्ति श्री म० गो० रानाडे का नाम इस ज्ञानकोश में गलत वर्तनी में दिया गया है महादेव गोविन्द रानाडे जबकि उनका सही नाम था माधव गोविन्द रानाडे। प्रथम नाम की वर्तनी गलत की गई है। हिन्दू-परम्परा से अनभिज्ञ लोग इस छोटी-सी वर्तनी की त्रुटि कहकर उपेक्षा कर देना चाहेंगे किन्तु जो लोग इन दो नामों के बीच का अन्तर समझते हैं वे गलती को गम्भीरता को अनुभूत कर लेंगे। हिन्दू देवताओं में महादेव एक ईश्वर है और माधव

---

1. एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका, १९७४, खण्ड १३ पृष्ठ १०९१।

कुमार। दोनों ही विशिष्ट ऐतिहासिक विभूतियाँ हैं—उनके भिन्न-भिन्न गुण हैं। प्रथम को संस्कृत देवनागरी लिपि के चार अक्षरों में लिखा जाएगा 'महादेव' जबकि दूसरे को तीन अक्षरों में '[illegible]'। उनके अर्थ, स्वराघात और जीवन-कथानक भी भिन्न हैं।

इसी प्रकार तीसरी भयंकर भूल पॉल और कृस्ती-पंथ (क्रिश्चियनिटी) के बारे में है। यह हमारे लिए उचित ही होगा कि हम ज्ञानकोशकारों को दोष न दें कि वे हमारी इस खोज का पूर्वाभास न कर सके कि जीसस तो कभी था ही नहीं, कल्पना ही है किन्तु ज्ञानकोश को इस बात के लिए तो दोषी ठहराया ही जाएगा कि वह स्वयं अपने कथन का आशय, महत्त्व नहीं समझ पाया। हम इसी बात को यहाँ स्पष्ट करना चाहते हैं।

उक्त ज्ञानकोश स्वीकार करता है "यह सम्भव नहीं है कि (पॉल) कभी जीसस को मिला हो तथापि, जरुसलम में, उसने जीसस के बारे में काफी ज्ञान लिया था जिससे वह पाखण्डी यहूदीवाद के लिए जीसस को एक संकट मानने लगा था, क्योंकि पॉल सर्वप्रथम इतिहास के पटल पर कृस्ती धर्म के पीड़क के रूप में प्रकट होता है।"[1]

आइए हम उपर्युक्त उद्धरण का विश्लेषण करें। यदि पॉल सर्व-प्रथम कृस्ती-पंथ का प्रबल विरोधी था और बाद में इसका एकनिष्ठ अनुयायी बन गया तो क्या वह जीसस को कभी मिला नहीं होगा, या कभी सड़क पर लोगों से बात करते हुए या सार्वजनिक सभाओं में प्रवचन करते हुए जीसस को देखा या सुना नहीं होगा? यह कहना कि जीसस और पॉल समकालीन थे और वर्षों तक जरुसलम में एक ही समय पर रहे थे, कि दोनों यहूदी थे, कि जीसस एक महान् सार्वजनिक, लोक-प्रचारक था, कि पॉल पहले तो जीसस का प्रबल विरोधी था किन्तु बाद में उसका अनन्य अनुयायी और स्वयं पट्ट-शिष्य भी बन गया था, और कि फिर भी पॉल ने सारा जीवन कभी भी सशरीर रूप में भी जीसस को नहीं देखा, अत्यन्त अनोखा, बेतुका है। बुद्धिजीवियों की यही तो मन्द-बुद्धिता है जिसकी हम निन्दा करना चाहते हैं। वे जो कुछ भी लिखते हैं, स्वयं उसका अर्थ व महत्त्व समझते

1 एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका, १९७४, खण्ड १३, पृष्ठ १०९०।

प्रतीत नहीं होते।

और भी अधिक आश्चर्यजनक बात यह है कि अगले ही पृष्ठ पर उक्त ज्ञानकोश कहता है कि, "दमिश्क जानेवाली सड़क पर दृश्य में पॉल यह मान गया कि सूली-दण्डित यह जीसस पुनः जीवित हो चुका था।" यहाँ फिर एक ऐसा कथन है जो आभास देता है कि जीसस और कृस्ती-पंथ पॉल के माया-मोह, मतिभ्रम और दिवा-स्वप्नों से उत्पन्न हुए हैं। उक्त कथन में भी एक बहुत अच्छा संकेतक है जिसका निहितार्थ इस ज्ञानकोश के लिए उक्त रचना का सहयोग देनेवाले लेखक की दृष्टि से भी ओझल हो गया है। यदि पॉल ने सचमुच यह विश्वास किया था कि सूली-दण्ड प्राप्त जीसस पुनः जिन्दा हो चुका था तो क्या वह उस (जीसस) को स्वयं व्यक्तिशः मिलने के लिए आतुर होकर भेंट करने न गया होता। अपने श्रद्धा-पात्र के दर्शन हेतु विशेषकर तब जबकि पॉल जीसस का अकिंचन भक्त हो गया था और किसी मृत व्यक्ति का पुनर्जीवित हो जाना चमत्कार के अतिरिक्त और कुछ था ही नहीं। यही तथ्य, कि जीसस के पुनर्जीवित हो जाने के बाद भी पॉल उसको कभी नहीं मिला और जीसस को बोलते, प्रवचन करते पॉल ने कभी उसे देखा नहीं, स्पष्ट प्रमाण है कि जीसस का कोई अस्तित्व था ही नहीं कि वह कभी जन्मा ही नहीं था—विद्यमान हुआ ही नहीं। आश्चर्य होता है कि विद्वानों की पीढ़ियाँ किस प्रकार इस तथ्य को दृष्टिगोचर करने से रह गई हैं। मनुष्य की सीमाओं की यह द्योतक है। मनुष्य कुछ खास वशीकरण या सम्मोहन में कार्य करता है और इसीलिए स्पष्टतः सत्य तत्त्व को ग्रहण करने से भी प्रायः वंचित रह जाता है। ताजमहल-प्रकरण और जीसस-प्रकरण ऐसे ही दो चकाचौंध करनेवाले उदाहरण, दृष्टान्त हैं। कम-से-कम दो शताब्दियों से तो लोग कृस्त (क्राइस्ट) के अस्तित्व पर ही शंका करते हैं। इसी प्रकार, मेरा यह शोध प्रसिद्ध हुए भी एक दशक से अधिक समय हो चुका है कि विश्व-पर्यटन का एक आकर्षण केन्द्र ताजमहल मन्दिर भवन है, न कि विश्व को घोषित मकबरा, फिर भी लोग अपनी इसी भयंकर भूल-वाली धारणा से चिपके रहना ही पसन्द करते हैं। उनको एक नग्न सत्य की अपेक्षा चमक-दमकवाली झूठ ज्यादा आकर्षक लगती है। यही कारण है कि वे परिचित असत्य को प्यार करते हैं और अपरिचित, अलोकप्रिय सत्य को

में और हर समाज में हमेशा ऐसे कमजोर, डाँवाडोल मनःस्थितिवाले व्यक्ति होते ही हैं जो अपने-आपको नई आन्दोलनकारी शक्तियों के सम्मुख नत होकर उनके साथ चल पड़ते हैं क्योंकि उनकी जड़ें अपनी परम्परा में भावनात्मक रूप से गहरी नहीं होतीं। साहसी नए आन्दोलनकारी लोग प्रायः यह प्रयोग करने के लिए तैयार रहते हैं कि मानवता के विशाल सागर में उस लहर को जन्म दे सकें जिस पर आरूढ़, सवार होकर वे आगे बढ़ सकें।

पाल और बर्नाबस तथा इसका चचेरा भाई मार्क साइप्रस में अभियान हेतु चल पड़े। उन्होंने जिन स्थानों को चुना, वे प्रसिद्ध कृष्ण-पूजा केन्द्र थे जहाँ विशाल जन-उपस्थिति होती थी। इन लोगों में भी शीघ्र ही मतभेद होने लगे। तुर्की में आधुनिक मुर्तना के निकट परगा में साथ छोड़कर मार्क अपने घर के लिए चल पड़ा। पाल अत्यधिक अनमना, अव्यवस्थित था। इस बात का उसे खतरा था कि मार्क पाल व अन्य लोगों के खिलाफ काम करे। तुर्की में आधुनिक हतुनासराय के पास लिस्त्रा में पाल को पत्थर मारे गए और उसे मृत समझकर लोग छोड़ गए। सूली-दण्ड पाने के बाद जीसस के पुनर्जीवित हो उठने का विचार पाल के इसी अनुभव से जन्मा था।

पाल ने बर्नाबस के समक्ष अन्य दौरे का प्रस्ताव रखा किन्तु चूँकि मार्क पाल के विरोधी गुट का था, इसलिए बर्नाबस ने अपने चचेरे भाई मार्क का पक्ष लिया और वे दोनों साइप्रस वापस लौट आए।

पाल ने अब एक अन्य साथी सिलास अपने साथ लिया जिसके नाम को रोमन बनेनी सिलवानस करते हैं। यह भगवान् शिव का संस्कृत नाम है। 'सिलास' कैलाश अर्थात् पर्वत-वन का स्वामी भगवान् है। भगवान् शिव हिमालय व कैलाश (पर्वत) शिखर के स्वामी भगवान् के रूप में विश्व-विख्यात हैं।

पाल की धर्म-प्रचार नीति रोमन-प्रभाव के विशाल केन्द्रों पर ध्यान देने की थी। कृष्णीय-पथ में अपना सबसे पहला कदम मेसेडोनिया में फिलिप्पी की रोमन बस्ती में उठाया था जहाँ विचार-विमर्श का प्रथम केन्द्र संस्कृत के चर्चा शब्द से व्युत्पन्न 'चर्च' बनाया गया था।

कृष्णीय-पथ की इन प्रारम्भिक दिनों की असम्बद्ध, असंगत, अण्ड-बण्ड कथा कहती है कि एक मनोरोगी दासी कन्या के उपचार के बाद रोमन-

विरोधी प्रथाओं के आरोप पर पाल और सिलास को कारावास-दण्डित किया गया था किन्तु क्षमा-याचनाओं के साथ उनको तब छोड़ दिया गया था जब उन्होंने अपनी रोमन-नागरिकता जाहिर कर दी।"[1]

हम आश्चर्य करते हैं कि कोई भी सतर्क, चौकस बुद्धिजीवी इस प्रकार के कथन को किस प्रकार बिना परखे ही मान्य कर ले। आधुनिक विद्वत्ता के साथ यही तो खराबी, घपलेबाजी है। इस प्रकार के बेहूदा कथनों को भी सूत्र, आदर्श घटनाएँ कहकर प्रचलित होने दिया जाता है। यदि पाल और सिलास ने सचमुच एक मनोरोगी कन्या को उपचार से स्वस्थ कर दिया होता तो सरकारी अधिकारियों को तो उन दोनों का पुरस्कृत करना चाहिए था और सामान्य जनता ने उनको अपना देवदूत, पैगम्बर समझा, माना होता। उस स्थिति में इन दोनों ने अविद्यमान जीसस के नाम से प्रचार न किया होता।

उनको कारावास दिए जाने का तथ्य इस बात का द्योतक है कि उन दोनों का उक्त कन्या के साथ कोई अनुचित तालमेल था या वे उसकी कीमत पर सस्ती लोकप्रियता चाहते थे। जाँच-पड़ताल होने पर वे दोनों या तो झूठे, पाखण्डी नीम-हकीम चिकित्सक पाए गए होंगे या फिर अनैतिक व्यवहार, आचरण के दोषी।

थेसल्लोनिका[2] में उनके तीन सप्ताह के प्रचार से दंगा हो गया। पाल जहाँ कहीं गया, नागरिक अव्यवस्था होती गई। यह एक अन्य संकेतक है कि पाल द्वारा प्रचार किसी धार्मिक आधार पर होना तो दूर, राजनीतिक द्रोह तथा खतरनाक माना, समझा गया था। समय से पूर्व ही चले जाने के कारण पाल और सिलास क्रुद्ध थेसल्लोनिका-वासियों के हाथों मारे जाने से बच सके। फिर भी, जनता उनसे इतनी कुपित, नाराज थी कि एक क्रुद्ध भीड़ उनके पीछे-पीछे निकटवर्ती नगर बोरोइया तक गई और उस नगर से

---

१ ब्रिटिश विश्व ज्ञानकोश, सन् १९७४, खण्ड १३, पृष्ठ १०६२।

२ प्रथम शब्द 'ओनिका' सेना का द्योतक संस्कृत शब्द 'अनीक' है। हिन्दुओं के विश्वव्यापी विस्तार की अवधि में 'थेसल्लोनिका' और वैसी ही 'ओनिका' में समाप्त होनेवाले स्थान सैनिक छावनियाँ थीं।

भी उनको बाहर धकेल दिया। उन दोनों को कोई प्रचार-कार्य करने की अनुमति नहीं दी गई। भीड़ द्वारा पॉल का पीछा किए जाने का अनुभव जीसस की काल्पनिक कथा में भी प्रतिबिम्बित होता है।

पॉल वहाँ से एथेन्स चला गया जहाँ सिलास और तिमोथी उसके साथ आ मिले। वहाँ पॉल बीमार हो गया। बाद में वह कोरिन्थ चला गया जो कृष्ण-पूजा का एक अन्य केन्द्र था। वहाँ पॉल अक्वीला और प्रिस्किला के साथ रहा। क्रिश्चियन-पंथ में परिवर्तित होनेवाले शुरू के दम्पति-युगलों में से यह एक युगल था। पॉल के समान ही ये स्वयं भी तम्बू-निर्माता होने के कारण इनसे पॉल के नए आस्था-पंथ में सम्मिलित होने की चर्चा की जा सकती थी।

ईसा-पश्चात् सन् ५७ के प्रारम्भ में पॉल कोरिन्थ में अन्तिम बार था। वह नीरो के शासन-काल में (ईसा-पश्चात् ५४-६८ में) रोम में मार डाला गया था।

ब्रिटिश ज्ञानकोश पॉल का वर्णन इस प्रकार करता है "वह विविध विषमताओं, विरोधोंवाला व्यक्ति था। शारीरिक रचना में छोटा और अ-प्रभावी यद्यपि एक सहज प्राकृतिक भाषणकर्ता न था, फिर भी आध्यात्मिक शक्ति की ताप-दीप्ति से वह श्रोताओं, सभा को प्रभावित कर सकता था। किसी को भी अपने से उच्च स्वीकार न करते हुए अपनी कठोर [illegible] के आग्रह पर वह हिंसक भी हो सकता था। वह भावातिरेक के पंखों पर ऊँचा उड़ता हुआ एक ही समय स्थिर व अस्थिर, दोनों ही हो सकता था। उसे वाणी और भविष्यकथन के उपहार प्राप्त थे तथा दिव्य-दृष्टि या भाव-समाधि के आन्तरिक अनुभव भी यदा-कदा होते रहते थे।"

पॉल ने भगवान् कृष्ण की बजाय एक भिन्न संरक्षक अर्थात् जीसस के बारे में जब से बोलना शुरू किया तभी से उसके अपने परिवार द्वारा वह त्याग कर दिया गया था। कहने का तात्पर्य यह है कि उसका अपना परिवार इस धारणा का था कि या तो पॉल कुछ विक्षिप्त है अथवा वह जान-बूझकर उस जीसस के बारे में लोगों को भ्रमित कर रहा है जो कभी जन्मा था ही नहीं। पॉल के जीवन से सम्बन्धित एक पुस्तक में लेखक का कहना है "पॉल द्वारा क्रिश्चियन-पंथ स्वीकार कर लेने के कारण पॉल अपने

परिवार से अलग कर दिया गया था और साथ उक्त परिवार के उत्तराधिकार से भी वंचित कर दिया गया था।"[1]

चूँकि उन दिनों में रब्बी का पद व व्यवसाय सम्मानजनक प्रतिष्ठापूर्ण समझा जाता था इसलिए पॉल को छोटी ही उम्र में गमालियल नामक एक गुरु के पास भेज दिया गया था जो जरुस्लम में रहता था। स्पष्टतः जब पॉल एक पुरोहित के नाते मान्यता प्राप्त कर चुका, तब उसे जरुस्लम स्थित केन्द्रीय कृष्ण मन्दिर में ही नियुक्ति दे दी गई। जरुस्लम स्थित कृष्ण-स्थापना ही बेथलहम और कोरिन्थ जैसे कृष्ण मन्दिरों का नियन्त्रण करती थी। पुरोहित और अन्य प्रशासकगण एक स्थान से दूसरे स्थान पर प्रायः अदल-बदल, स्थानान्तरित कर दिए जाते थे।

किन्तु गैर-विद्यमान जीसस के बारे में पॉल द्वारा चर्चा किए जाने से पूर्व ही स्टीफन नामक एक यूनानी यहूदी पहले ही कृष्ण-स्थापना के विरुद्ध विद्रोह कर बैठा था। इस बात की खोज आगे की जानी जरूरी है कि क्या स्टीफन मात्र एक विद्रोही था जो सत्ता और प्राथमिकता चाहता था या उसने किसी अन्य आधार पर सत्ताधिकारियों से लड़ाई-झगड़ा कर लिया था, या कि वह मानसिक रूप से असन्तुलित था? किन्तु यह तो स्पष्ट है कि स्टीफन इतना अधिक अवज्ञाकारी और दुर्विनीत, उद्धत हो गया था कि उस पर जरुस्लम में कृष्ण मन्दिर-न्यायालय में ईश-निन्दा के लिए मुकदमा चलाया गया था। सुनवाई के दौरान उसने असमर्थित भाषा का प्रयोग किया था और उसने उलटे न्यायाधीशों पर मसीहा को अस्वीकार करने तथा ईश्वर के पुत्र की हत्या करने का दोष मढ़ डाला था। स्थिति पर विचार करते हुए, स्टीफन द्वारा प्रयुक्त दुर्विनीत, असंयमी भाषा को उस समय एक अस्थिर, विक्षिप्त व्यक्ति की भाषा ही समझा गया होगा क्योंकि जीसस को तो कोई जानता ही नहीं था। जीसस के सम्बन्ध में कोई चर्चा थी ही नहीं और न ही इस सम्बन्ध में कोई साहित्य था। स्टीफन का तात्पर्य कदाचित् यह था कि कृष्ण मन्दिर पर नियन्त्रण रखनेवालों ने अपने

---

१ डब्ल्यू० एच० डी० ऐडम्स विरचित 'सेंट पॉल : हिज लाइफ, हिज वर्क एण्ड हिज राइटिंग्स', पृष्ठ १३।

कोरिन्थ इस्थमस के दक्षिण-पश्चिमी सीमान्त पर स्थित है जो यूनान (ग्रीस) के मुख्य भाग को पैलोपोनीसस से जोड़ता है। कृष्ण की कथात्मक [illegible] जो स्वर्ण-नगरी के रूप में विख्यात थी 'धनी [illegible]' [illegible] कोरिन्थ [illegible] होकर जैसे प्रारम्भिक युग में भी प्राप्त होती है (इलियड ii. ५७० सी० एफ० xiii. ६६४)।

पाल का कोरिन्थवासियों को सम्बोधित प्रथम पत्र शोध के दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण है। यह उन स्थिति पर प्रकाश की एक किरण का स्फुरण [illegible] है जिसने जीसस-कथा और पंथ को जन्म का अवसर दिया। उक्त पत्र का विश्लेषण करते हुए श्री सी० के० बैरट कहते हैं कि "पाल के धर्म-प्रचार ने कोरिन्थ के कई लोगों पर धर्म-परिवर्तन का प्रभाव डाला जिनमें से पहला (कम-से-कम अचइया में तो पहला ही) स्टीफेनुस का परिवार था (xvi. १५)। पाल ने कृस्ती-चर्च की एकमात्र विचारणीय नींव डाल दी थी—जीसस कृस्त (क्राइस्ट) स्वयं—(iii. १० एफ०)। अन्य लोगों को इस नींव पर ही निर्माण करना था और विशाल निर्माण [illegible], नींव पर आधारित था उसमें कम सन्तोषजनक ही रहा। कोरिन्थ में ईश्वर का चर्च किसी भी प्रकार दोषों और त्रुटियों से मुक्त नहीं था" भगवान् के भोज (प्रसाद) के अवसर पर भी धनी और निर्धनों का अलग-अलग समूहों में [illegible] विभक्त कर दिया जाता था। सदस्यों में सार्वजनिक झगड़े थे (vi. १–८)। अनैतिकता का एक कुख्यात मामला था (v. १–५)। [illegible] का [illegible] भाग प्रमादपूर्ण लगाए गए [illegible] की वैधता पर विवाद [illegible] सिद्धान्त अस्वीकृत किया गया प्रतीत हुआ (xv. १२) और पाल का अपना [illegible] प्रश्नवाचक चिह्न बन गया।"[1]

श्री सी० के० बैरट के उपर्युक्त उद्धरण में अनेक महत्त्वपूर्ण बिन्दु हैं। यह स्पष्ट है कि जीसस पाल की कल्पना-सृष्टि का ही फल, उत्पत्ति है। यदि जीसस [illegible] जन्मा था या तो वह मरी के गर्भ से नहीं, पाल के दिमाग में पैदा हुआ था। [illegible] विद्यमान अस्तित्वहीन जीसस पर कृस्ती-चर्च

1. सी० के० बैरट [illegible] 'ए कमेण्ट्री आन दि फर्स्ट एपिसल टू दि कोरिन्थियंस', पृष्ठ ३

निर्मित होने के कारण श्री सी० के० बैरेट यह दिग्दर्शित करने में बिल्कुल सही हैं कि ऊपरी विशाल निर्माण भी उतना ही दोषपूर्ण है जितना दोषपूर्ण इसका स्वयं आधार है। पाल के कथन को जान बूझकर या अनजाने सत्य माननेवाले अन्य लोग जीसस और कृस्त-संबंधी स्वर-रागिनी ही अलापना जारी रखे रहे और उसे आगे बढ़ाते रहे।

कृष्ण मन्दिर संगठन में उत्पन्न असंतोष और मनमुटाव ने उपर्युक्त कार्य के लिए उर्वरा भूमि प्रदान कर दी थी। चूँकि हिन्दू-शासन इन क्षेत्रों में बहुत पहले ही लुप्त हो चुका था, इसलिए कोई केन्द्रीय, नियन्त्रक अथवा मार्गदर्शक सत्ता, प्राधिकरण शेष नहीं रह गई थी। शैक्षिक और प्रशासनिक तन्त्र छिन्न-भिन्न हो जाने के कारण कृष्ण और हिन्दू देव-देवियों से सम्बन्धित हिन्दू-धर्मशास्त्रों, ग्रन्थों का पठन-पाठन अब नहीं होता था। अतः कृष्ण-जनश्रुति और धर्मग्रन्थों के अभाव से दिमागी रूप में शुष्क और शुष्कतर होते रहने पर भी पीढ़ियाँ भगवान् कृष्ण की पूजा-आराधना यथवत् चालू रखे रहीं। मन्दिर-न्यास प्रबन्ध में असन्तोष और पाल जैसे महत्त्वाकांक्षी व्यक्तियों की उपस्थिति ने स्थिति को और भी अधिक शोचनीय, बदतर कर दिया।

पाल ने अपना ही आध्यात्मिक संगठन स्थापित करने के लिए इस स्थिति का लाभ उठाना ठीक समझा प्रतीत होता है। इस संगठन, केन्द्र का नाम कृस्त के रूप में उच्चारित कृष्ण के नाम पर रखना ही उसे श्रेष्ठ लगा और उसने यह भी लोगों के ऊपर ही छोड़ दिया कि वे स्वयं विचार करते रहे कि इसमें प्रतिष्ठित देव जीसस क्राइस्ट (कृस्त) था या ईशस कृष्ण। वास्तविक मनगढ़ंत कई दशकों बाद हुआ था और लोगों को बता दिया गया कि एक विशिष्ट व्यक्ति जीसस जन्मा था और वह युवा-वय में ही स्वर्ग सिधार गया था। अतः उसके अस्तित्व को सत्यापित करना किसी भी व्यक्ति के लिए दुष्कर, लगभग असम्भव ही हो गया था। यदि किसी ने इसका विशेष आग्रह किया तो यह कहकर उसका मुँह बन्द कर दिया जाता था कि कृस्त का अर्थ केवल कृष्ण ही से था और वह स्वप्न में पाल के मानस में अवतरित हुआ था। जब और अधिक वर्ष गुजर गए, तब लोगों को बता दिया गया कि कृष्ण से बिल्कुल पृथक् कृस्त नामक एक विशिष्ट व्यक्ति

वास्तव में हुआ कर रहा था। इस एक ही समय दोनो तरह की बातें करने की पद्धति से कृस्ती-कथा को प्रचलित रखने और इसे सुदृढ़ करने का आश्वासन तब तक बनाए रखा जब तक कि रोमन सम्राट् से ही इसे स्वीकार नहीं करा लिया। तत्पश्चात्, रोमन सेना ने शेष कार्य तेजी से पूरा कर दिया। जिसको एक धार्मिक प्रकाश समझा गया था, यूरोपीय सेनाओं के हाथ में वही अवसर होते समय प्रत्येक गैर-कृस्ती वस्तु को जलाकर नष्ट कर देने के लिए उसी प्रकार प्रखर अग्निशलाका हो गई जैसा कि बाद में कुछ शताब्दियों पश्चात् मुस्लिमों द्वारा किया जाना था।

श्री बैंट के विश्लेषण से यह भी स्पष्ट है कि भगवान् का भोग-प्रसाद रूप में प्राप्त कृष्ण मन्दिर का भोग जीसस का तथाकथित अन्तिम ब्यालू रूपान्तरित मायान्तरित कर दिया गया है।

पॉल का पुनर्जीवित हो जानेवाला सिद्धान्त उसके समकालीन व्यक्तियों द्वारा स्वीकृत न किए जाने और उसके शिष्यत्व पर प्रश्नचिह्न लगने का तथ्य इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि पॉल के समकालीन व्यक्तियों को पॉल के कथनों में कोई आस्था, विश्वास नहीं था।

पॉल ने तीव्र गहन घृणा पैदा कर दी। उसने कोरिन्थ त्याग दिया किन्तु पत्राचार के माध्यम से अपने से सहानुभूति रखनेवाले कुछ लोगों से सम्पर्क बनाए रखा। क्लो के कुटुम्ब ने पॉल के अपने ही अनुयायियों में हुए वाद-विवादों के बारे में पॉल को सूचित कर दिया था (i. ११)। पॉल द्वारा कोरिन्थवासियों को सम्बोधित पत्र ने उसके प्रति और भी अधिक दुर्भावना उत्पन्न कर दी थी (v. ९)। जैसा प्रायः नाम दिया जाता है 'पूर्व पत्र' द्वारा उत्तेजित दुर्भावनाओं को शान्त करने के उद्देश्य से ही यह प्रथम पत्र-सूची (धर्म-पत्र) आई थी।

पॉल को अखाया के प्रान्तपति प्रभारी गेल्लियो के समक्ष उपस्थित होना पड़ा था क्योंकि स्पष्टतः उसकी गतिविधियाँ भड़काऊ समझी गई थीं। समझा जाता है कि पॉल कोरिन्थ में ईसा-पश्चात् ५० सन् के मार्च में पहुँच गया था और वहाँ सितम्बर ५१ ईसा-पश्चात् तक रहा था।

इसके बाद पॉल सीरिया के लिए चल पड़ा, ईफेसस पहुँचा वापस जेरूसलम के चर्च के साथ—इस प्रकार उसकी तथाकथित दूसरी यात्रा

समाप्त हो गई। कोरिन्थवासियों को पत्र की सर्वाधिक संभाव्य तिथि ईसा-पश्चात् सन् ५४ के प्रारम्भिक मास अथवा ५३ के अन्तिम मास है।

श्री बैंट के अनुसार, "धर्म-पत्र सफल अभिलेख दस्तावेज नहीं था। कोरिन्थ में कार्य और कोरिन्थवासियों, चर्च व पट्ट-शिष्य के बीच सम्बन्ध बिगड़ गए।"

पॉल की कोरिन्थ-यात्रा लगभग पूरी तरह विनाशक, विफल रही। उसने जवाब में एक कठोर पत्र लिख भेजा जिसने अमनाव और भी उग्र कर दिया। उसने टाइटस को कोरिन्थ भेज दिया और उससे कुछ अच्छा समाचार सुनकर बहुत खुश था। (२ कोरिन्थ, vii ६ एफ०)। किन्तु मित्रों की अपेक्षा उसके शत्रु अधिक थे। जिन लोगों को उसका बचाव करना चाहिए था, उन्हीं ने उसको खूब दुत्कारा, उसका विरोध किया (२ कोरिन्थ, xii ११) और उसके प्रतिद्वन्द्वियों ने उसका स्थान हथिया लिया। इस प्रकार धर्म के नाम पर यह स्पष्टतः वैयक्तिक या सामूहिक राजनीति ही थी।

श्री पॉल का यह पर्यवेक्षण कि, "कोरिन्थवासी स्वयं पॉल से भी अधिक मूल-प्रचार के ही ज्यादा निकट रहे थे", इस तथ्य का द्योतक है कि जबकि कोरिन्थवासी कृष्ण-पूजा और गीता-पठन, वाचन से दूर रखे जाने पर रोष प्रकट कर रहे थे, तब (भी) पॉल शनैः-शनैः एक नई जीसस-कथा का आविष्कार कर रहा था।

"पॉल ने कोरिन्थ में अपनी धर्म-परिषद् में इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था कि पुरुष के लिए सर्वोत्तम यही है कि वह किसी नारी का स्पर्श (भी) न करे (डॉ० जे० सी० हर्ड, दि ओरिजिन ऑफ कोरिन्थियन्स, १९६५—१, कॉर० vii १)। वह स्वयं अविवाहित था और चाहता था कि अन्य लोग भी उसी के समान हों। वह आध्यात्मिक विवाह को स्वीकार करता और उसी की प्रेरणा देता रहा (चाहे इसका अर्थ जो भी हो!)। देवमूर्ति का अनुमोदित भोग-प्रसाद के बारे में उसने सिखाया था कि सभी वस्तुएँ विधि-सम्मत थीं (x. २३) और मूर्तियों की कोई वास्तविक सत्ता न थी (viii ४)। हम सभी के पास ज्ञान है, उसने कहा था (viii १) और उसका व्यवहार/आचरण ऐसा होता था मानो वह विधि,

कानून से बाहर परे हो (१४ २१)''''।''

उपर्युक्त उद्धरण से दो महत्त्वपूर्ण बिन्दु प्राप्त होते हैं—पहला तो यह कि जिस देव-प्रतिमा का सदर्भ प्रस्तुत किया गया है वह कृष्ण की प्रतिमा थी और पॉल अपना कानून खुद ही था उसका ढंग निरकुश तानाशाह का था। वह किसी भी कीमत पर नेतृत्व चाहता था और इसीलिए उसने किसी अन्य उद्धारक मुक्तिदाता की चर्चा प्रारम्भ की, तथा उसकी चाहना अनुयायियों की थी ताकि वह अपने अनेक शत्रुओं के समक्ष एक प्रबल शक्तिशाली व्यक्तित्व के रूप में बना रह सके।

दूसरे पत्र ने विवाह अनुमोदित किया देव-प्रतिमाओं को भेंट-भोग-प्रसाद वर्जित किया आग्रह किया कि महिलाएँ पर्दे में रहे वचन दिया कि कृष्णी लोग ईश्वर के साम्राज्य में अपना भाग प्राप्त करने के लिए अपने-अपने ताबूतों/कब्रों में से खड़े होकर दिए जाएँगे और गरीबों के लिए धन-संग्रह करने के लिए (परोपकारी) कार्य का उल्लेख किया। उक्त पत्र को प्राप्त कर विस्मित हुए कोरिन्थवासियों ने क्रुद्ध होकर कई प्रश्नों में पूछा कि पॉल की वास्तविक इच्छा क्या थी। उन लोगों को विवाह करना था या नहीं? देव-प्रतिमाओं को समर्पित, भोग लगाया गया खाद्यान्न खाना था या नहीं? क्या औरतें पर्दे में जबरी रूप में ही रहें? क्या मृत शरीर कब्रों में (शवमुक्त) खड़े हो जाएँ? क्या कारण था कि बपतिस्मा, धर्म-दीक्षा के बाद भी तथाकथित कृष्णी लोगों का मरना जारी ही रहा?

महिलाओं और औरतों को पर्दे में रखने की अरब देशों की कमजोरी कृष्ण-पंथ और इस्लाम दोनों में ही चली आई है। कृष्णी-पंथ ने तो बाद में अपनी महिलाओं को पर्दे से मुक्त कर दिया किन्तु इस्लाम अपने महिला-वर्ग को ऐसी कोई स्वाधीनता देने से अभी भी इकार करता है। नाक के अग्र भाग तक और गर्दन की पिछली गुद्दी तक ढके रखनेवाली बुर्के की दीवार में महिलाओं, बालिकाओं का एकाकी कोठरी में अभी तक सीमित रहना पर्दे पर अभी भी आग्रह करनेवाले समुदाय के अर्ध-भाग की दुर्दशा का आभास हो जाता है।

१ जी० के० हैरिस, 'ए कमेंटरी ऑन दि फर्स्ट एपीसल टू दि कोरिन्थियंस', पृष्ठ ६।

इधर जब पॉल जीसस के नाम से एक ऐसे नये धर्म को स्थापना करने का भरपूर प्रयत्न कर रहा था जिसका वह सर्वोच्च धर्माधिकारी बना रहे तभी अपोलो नामक एक अन्य व्यक्ति भी एक अन्य धर्म-व्यवस्था स्थापित करने में लगा था जिसका वह स्वयं धर्माध्यक्ष बन सके। तथापि, बाद में अपोलो ने अपना प्रयास छोड़कर पॉल के साथ मिल जाना ही अधिक लाभकारी समझा। किन्तु सेफस भी एक अन्य प्रतिद्वन्द्वी था।

पॉल ने अपने कोरिन्थवासी अनुयायियों और मित्रों को कम-से-कम चार पत्र लिखे थे जिनमें से मात्र दो ही सुरक्षित रखे गए हैं।

कोरिन्थ में विवाद के समय पॉल का पक्ष लेनेवाले स्टीफेनस ने ईफेसस में आकर यह चौंकानेवाली खबर दी कि कोरिन्थवासी लोगों का पॉल पट्ट-शिष्यत्व के और जीसस के पुनर्जीवित हो जाने के (उसके) दावे में कोई विश्वास नहीं था तथा वे सामान्य रूप में विद्रोही स्वर में थे।

ईफेसस में भी लोग इतने क्रुद्ध व उत्तेजित थे कि पॉल को नगर छोड़ देना पड़ा और ग्रामांचल में भेष बदलकर, छुपकर रहना पड़ा था। पॉल जहाँ कहीं भी जाता था, लोग क्रुद्ध होकर उसके पीछे पड़ जाते थे। पॉल ने विकल्प के रूप में टिमोथी और ईरास्टस जैसे अपने सहानुभूति रखनेवाले लोगों को मेसेडोनिया व कोरिन्थ भेज दिया (एक्ट्स xix, २२ और १. कोर० iv, १७, xvi १ एफ०)। इससे यह प्रतीत होता है कि बाइबल का जीसस पॉल का व्यक्तित्व ही है और जीसस के तथाकथित १२ पट्ट-शिष्य भी तथ्य रूप में पॉल के ही १२ पट्ट-शिष्य थे यथा, अपोलो, स्टेफेनस, टिमोथी और ईरास्टस।

जब क्लो परिवार के लोग पॉल के अपने ही अनुयायियों के मध्य सामूहिक विवादों की जानकारी देने के लिए पॉल से मिले तब पॉल ने अति उत्तेजना में एक पत्र लिखा जो १ कोरिन्थ १, १—६; १, १०—vi ११, xvi, १०—१४ और सम्भवतः पद्य २२ एफ० एफ० में समाविष्ट है।

अध्याय iv में पॉल ऐसा देखा जा सकता है मानो वह अपने उद्दंडी शिष्यों को चेतावनी दे रहा हो। ''कोई गलती मत करो''—वह कहता है ''मैं कोरिन्थ में फिर वापस आऊँगा तुम लोग जो सोचते हो उससे पूर्व ही आ जाऊँगा। फिर हम जान पाएँगे न केवल वह जो ये व्यक्ति कह सकते

(ईश्वर उसके पुत्र और पवित्र आत्मा के रूप में प्रभाभिव्यक्त) ब्रह्मा, विष्णु और महेश को पावन करों की चिर-वन्दना में ही लगा रहा।

इसी प्रकार माता मेरी जीसस की माँ नहीं है जैसा कृस्ती-पंथ में कहा और विश्वास किया जाता है जिसका सीधा-सादा कारण यह है कि मेरी [illegible] अस्तित्व-रहित ही था और जीसस कोई था ही नहीं। यदि तब भी माता मेरी का नाम कृस्ती पंथ में श्रद्धा-पद अर्जित कर सका (या उसे बनाए रख सका), तो उसका कारण यह है कि माता मेरी संस्कृत, हिन्दू शब्दावली मेरी अम्मा का यथार्थ अनुवाद ही है वह देवी माता है जिसका नाम मातर [illegible] तत्कालीन [illegible] अभी भी कृस्ती-मठों के विद्यालयों में ('मातृ-देवि' के रूप में) प्रयुक्त चला आ रहा है। वह फिर संस्कृत शब्द 'मातृ-देवि' है जिसका अर्थ माता देवी है। यह हिन्दुओं की वही माता देवी मेरी है जो कृष्ण-देव भगवान से जीसस की माँ की आविष्कृत थोपी गई, गढ़ ली गई [illegible] में पुनर्स्थापित कर दी गई है। हिन्दुओं के भी मरिअम्मा मन्दिर हैं।

इस प्रकार यह लक्षित किया जा सकता है कि कृस्ती-पंथ न केवल कृष्ण-नीति नाम को थोड़े से भिन्न उच्चारण से चालू रखे हुए है बल्कि [illegible] में लगभग पूरे हिन्दू देवगणों को भी सँजोए हुए है।

कृस्तियनिटी में चर्च का सामाजिक ढाँचा बिना किसी प्रकार की चापलूसी [illegible] में वर्णन किया गया है इसमें बहुत सारे लोग ऐसे नहीं थे जो मानव-मानक आदर्शों की दृष्टि से बुद्धिमान, शक्तिशाली या उच्च-कुलोत्पन्न हों, इसमें गुलाम दास थे [११-२३] इस संगठन की प्रारम्भिक अवस्थाएँ [illegible] के उदीयमान होने में लक्षित होती हैं। पचासवें दशक में कृस्तियन [illegible] चर्च का कोई स्पष्ट निरूपित आकार या ढाँचा नहीं था।"[1]

[illegible] ने ठीक ही संकेत दिया है कि कृस्ती-पंथ स्टीफेनस के घर पर सामूहिक चर्चा में ही जन्मा था। संस्कृत शब्द 'चर्चा' अर्थात् चर्च [illegible] का विचार-विमर्श सम्मिलितों का द्योतक है। चूँकि इसके पीछे कोई नई [illegible] धार्मिक आस्था नहीं थी इसलिए इस नए समूह वर्ग ने अपने 'चर्च' के लिए कोई रूप, आकार निश्चित किया ही नहीं। इसी कारण अति

---

१ '[illegible] ऐक्जिस्ट?', पृष्ठ २३-२४।

क्षुद्र और घरेलू नौकर-चाकर अथवा गुलाम, जिनका काम दूसरों के आदेश पालन करना ही था या जो पॉल और स्टीफेनस जैसे लोगों के प्रभाव में थे, इसके प्रारम्भिक सदस्य थे। इस प्रकार मनोरंजन और निरंकुश घोषणाएँ रखनेवाला कोई भी व्यक्ति इस संसार में अपना कोई भी धर्म/पंथ स्थापित कर सकता है क्योंकि कुछ-न-कुछ, थोड़े-बहुत ऐसे लोग तो हमेशा ही मिल जाएँगे जिनको बातचीत के माध्यम से किसी नए पंथ या धर्म में प्रवेश के लिए तैयार कर लिया जा सके।

ये प्रारम्भिक सदस्य इतने भोले-भाले और अज्ञानी, प्रवञ्च्य थे कि इनको विश्वास था कि पॉल के नए कृस्ती-पंथ को अंगीकार कर लेने से वे मृत्यु से बच जाएँगे और या मृत्यु के तुरन्त बाद वे पुनः जीवन प्राप्त कर सकेंगे तथा उसके बाद कृ्षी के साथ आनन्दोपभोग कर जीवित रह पाएँगे। कुछ लोग विश्वास करते थे कि बपतिस्मा, कृस्ती-पंथ अंगीकरण रोगों से मुक्ति या उपचार कर सकता था। इस प्रकार, यह कोई प्रबुद्ध समर्थन न था। किन्तु मानव जीवन में अनेक बातों में मात्र संख्या का ही महत्त्व होता है। जिस धर्म के जितने अधिक अनुयायी होते हैं, उतना ही अधिक उसका आकर्षण, उसकी गड़गड़ाहट व उसकी विनाशकारी शक्ति होती है। महा-काय बुलडोज़र के समान यह अन्य पंथों को चकनाचूर, ध्वस्त कर सकता है और फिर भयंकर बाढ़, जल-प्लावन की तरह विशाल क्षेत्रों, इलाकों को उसमें जलमग्न, आत्मसात् कर सकता है। कृस्ती-पंथ ने यूरोप और एशिया में यही किया था। जितनी अधिक संख्या इससे चिपकी रहेगी, अन्य लोग उतनी ही अधिक संख्या में इसकी ओर आकर्षित होंगे।

ब्रिटिश ज्ञानकोश के अनुसार, "आगे चलकर, सच्चा कृस्ती-पंथ भी परम संस्कारों से स्वयं को मुक्त रखने में अयोग्य सिद्ध हुआ है, पूर्वी चर्च तो विशेष रूप में गूढ़ रहस्यवाद से ही दिशा-निर्देश प्राप्त करता रहा है। धर्म में मुक्ति के विचार पर प्रबल आग्रह में भी कृस्ती-चर्च का प्रवर्तक गूढ़ रहस्यवाद ही तो था।"[1]

---

१ एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका, खण्ड १२ ११वाँ संस्करण, १९१०-११, पृष्ठ १२५।

'नास्टिक (जी एन ओ एस टी आई सी) संस्कृत शब्द है जो 'ज्ञ' और
'नास्तिक' से बना है जिसका अर्थ ज्ञानवान ईश्वरवादी होता है। वह हिन्दू-
धर्म की एक शाखा है। हिन्दुओं ने ही परम संस्कारों—गूढ़ रहस्यों पर
विशेष बल आधार प्रदर्शित किया है। कृस्ती-पंथ ने हिन्दू देवगणों के साथ-
साथ ऐसे रहस्यमय संस्कार भी ग्रहण कर लिए थे। इसलिए कृस्ती-पंथ
कृष्ण-नीति अर्थात् भगवान् कृष्ण का हिन्दू-पंथ, सम्प्रदाय ही है।

श्री बैरट द्वारा दिए गए एक भाषण में उन्होंने 'विशाल अन्तर' को
स्पष्ट किया था जो 'कारिन्थ में घटित तथा पॉल ने सोचा कि किस प्रकार
होना चाहिए'[1] के मध्य था।

श्री बैरट ने कोरिन्थ के पत्रों से किसी प्रकार के स्पष्ट या क्रमानुसार,
समग्र विवरण-प्राप्ति को कठिन कार्य कहते हुए कहा है कि तत्कालीन स्थिति
के बारे में उन पत्रों में फिर भी कुछ महत्त्वपूर्ण संकेत या तथ्य उपलब्ध,
समाविष्ट हैं साथ ही 'नितान्त महत्त्व के पदों में मुश्किल से एकाध पद
ही ऐसा है जिसकी व्याख्या विवादास्पद नहीं है।" "कोरिन्थ-पत्रों में
सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण समस्या उनकी निष्ठा, एकता की है।"

पॉल ने कोरिन्थ को चार पत्र लिखे माने जाते हैं। प्रथम पत्र खोया जा
चुका है जब तक कि इसका कोई हिस्सा २ कोरिन्थ, vi १४—vii—१
में सुरक्षित न मान लिया जाए।

दूसरा पत्र वह है जो १ कोरिन्थवाला नाम से ज्ञात है। तीसरा पत्र
आंशिक रूप से २ कोर०, x—xiii में सुरक्षित है।

चौथा पत्र २ कोर० i—ix में संग्रहीत है (सम्भवतः vi १४— vii १
को छोड़ दिया गया है)।

प्राचीन कोरिन्थ नगर लगभग एक सौ वर्ष तक उजड़ा, वीरान पड़ा
रहा था जब (चाहे इसका जो भी अर्थ हो) रोमन लोगों ने ईसा-पूर्व ४४ वर्ष
में वहाँ नए कोरिन्थ नगर की नींव डाली थी।

स्वयं उन धर्म-पत्रों से ही स्पष्ट है कि 'कृस्ती-प्रचारकर्ता, पॉल से

1 मानचेस्टर विश्वविद्यालय में २६ नवम्बर, १९६३ को दिया गया मैन्सन मेमोरियल लेक्चर' पृष्ठ २६६।

भिन्न और कुछ तो उससे बिल्कुल ही अलग शहर में काम करते रहे थे
जिनमें अपोलो निश्चित रूप से था, पीटर के होने की भी बहुत ज्यादा
सम्भावना थी और यदि स्वयं पीटर न था, तो भी उसके शिष्य तो थे जो
स्वतन्त्रतापूर्वक उसके नाम का प्रयोग कर रहे थे। ये लोग उन्मादकारी रहे
होंगे। अन्य लोग भी थे और एक भिन्न धर्म-पुस्तिका, एक अन्य जीसस और
अन्य आत्मा प्रचारित किए गए थे। सिकन्दराई यहूदीवाद, कृस्ती-पंथ,
हेलेनवाद सभी ने कोरिन्थ में पूर्व संग्रहीत प्रज्वलनशील, ज्ञोणोनी सामग्री
में आग में घी का काम किया प्रतीत होता है।"[1]

चूँकि हिन्दू शासन और शिक्षा कोरिन्थ में बहुत पहले ही अपना
अस्तित्व समाप्तप्राय कर चुके थे, अनेक नए स्थानीय विश्वास अपने-अपने
अनुयायियों की संख्या बढ़ाने में स्पर्धा करने लगे ताकि इनके नेतागण अपना
प्रभाव बढ़ा सकें और सम्मान, महत्त्व व धन अर्जित कर सकें। इसी पृष्ठ-
भूमि का उल्लेख करते हुए श्री बैरेट कहते हैं कि "तत्कालीन परिस्थिति ने
स्वयं पॉल से भी एक मिथक, काल्पनिक कथा विकसित करा दी जिसमें कृस्त
का आगमन, उसको दुष्टात्माओं द्वारा सूली-दण्ड व उन आत्माओं पर
विजय, और परिणामस्वरूप मानव-जाति का पुनरुद्धार वर्णित था।"[2]

पॉल ने १-कोरिन्थ-पत्रावली में अनेक स्थानों पर कोरिन्थ में उस समय
प्रचलित मतों, रायों का उद्धरण दिया है। १ कोर में कृस्त-वर्ग रहस्यवादी
प्रकार के कृस्ती थे जो करिश्मे और आध्यात्मिक प्रक्रिया पर आग्रह, जोर
देते थे 'जिनके मुकाबले में पॉल को अहना पट्ट-शिष्यत्व सिद्ध करना ही
पड़ता था।" उसके विरोधी इन विषयों में पॉल की कमियों के लिए उसका
तिरस्कार करते थे, उसे तुच्छ समझते थे। उत्तर में पॉल अपने पट्ट-शिष्यत्व
को बेतहाशा बचाने का यत्न करता था।

श्री बैरेट के विश्लेषण के अनुसार जीसस और कृस्ती-पंथ दोनों ही
पॉल की सृष्टि हैं। 'समय-समय पर, जब-तब पॉल कोरिन्थवासियों का
उल्लेख कुछ कटुता के साथ करता है।" अतः पॉल ने अपने विरोधियों का

१ मानचेस्टर विश्वविद्यालय में २६ नवम्बर, १९६३ को दिया गया 'मैन्सन मैमोरियल लेक्चर', पृष्ठ २७२।

२. वही, पृ० २८३।

भीतर होकर जाते थे किन्तु जनसंख्या बस्तियों में ऐसे स्थान कम ही थे जो विशुद्धरूपेण यहूदी या गैर-यहूदी ही हों।

हिन्दू धर्म शासन और शिक्षा के स्रोतों के सूख जाने से प्रथम शताब्दी में पश्चिमी विश्व में धार्मिक हौदियाँ निर्मित हो गई थीं। पॉल, स्टीफन और सफ़ास जैसे महत्वाकांक्षी व्यक्तियों ने इस अवसर का पूरा लाभ उठाने का निश्चय किया और शीघ्रातिशीघ्र अपने प्रतिद्वन्द्वियों को इस क्षेत्र से बाहर कर देने के लिए अपने सतत बढ़ रहे अनुयायियों की संख्या अतिशय अधिक बढ़ाने का क्रम बनाया।

श्री बैरेट कहते हैं : "इस तथ्य से चकित होने की कोई वजह नहीं है कि इस प्रकार की संकटावस्था कोरिन्थ में उत्पन्न हुई।...पद्य २ एफ० में पॉल ने शैतानी सत्ता द्वारा कोरिन्थ-स्थित चर्च के प्रलोभन की बात कही है और पद्य ४ में उस (व्यक्ति) की चर्चा की है जो आता है और एक अन्य यीशु, एक भिन्न आत्मा (और) एक भिन्न धर्मग्रन्थ का प्रचार-कार्य करता है।"[1]

इन सभी पट्ट-शिष्यों को जरुस्लम का वर्चस्व स्वीकार करना पड़ता था और उसी के नाम से प्रचार करना होता था क्योंकि भारत से बाहर सबसे बड़ा कृष्ण मन्दिर और धार्मिक केन्द्र जरुस्लम अर्थात् यदु-ईश-आलयम ही था।

कोरिन्थ में भारी प्रतिद्वन्द्विता होने के कारण पॉल ने कोरिन्थ से परे छोटे-छोटे उपनगरों के गाँवों में सरल भोले-भाले लोगों में अपना प्रचार-कार्य शुरू कर दिया जिससे अनुयायियों की संख्या बढ़ सके, उस (पॉल) का महत्त्व बढ़ जाए और फिर वह अपने विरोधियों से समर्पण करा सके तथा उन्हें अपने अधीन कर ले।

श्री बैरेट पद्य क्रमांक १ और ५ का विश्लेषण करते हुए कहते हैं : "विचार-प्रवाह निम्न प्रकार होता है : कृपया मेरी कोई छोटी त्रुटि भुला दो (पद्य १)। मुझे अवश्य मानना पड़ेगा क्योंकि मुझे तुम्हारे बारे में बहुत अधिक आतुर चिन्तित होने की बात है (पद्य २ एफ०)। तुम तो उसके साथ

१. मानचेस्टर विश्वविद्यालय में २६ नवम्बर, १९६३ को दिया गया 'मैन्सन मैमोरियल लेक्चर', पृष्ठ २९४-२९५।

भी निर्वाह करने को तैयार हो जो तुमको एक झूठे, जाली धर्मग्रन्थ का प्रचार करता है (पद्य ४)। तुम्हें मेरे साथ मिलकर रहना चाहिए क्योंकि मैं उन लोगों के पीछे नहीं चलता जिनको तुम सबसे बड़ा शिष्य समझते हो (पद्य ५)। यह सत्य है कि कुछ लोग मेरी वाक्-शक्ति का तिरस्कार करते हैं, किन्तु मुझमें ज्ञान का अभाव नहीं है (पद्य ६)।"[1]

श्री बैरेट को यह सम्भव नहीं लगता कि (बाद के दिनों में) पॉल व्यंग्यात्मक रूप में जरुस्लम के शिष्यों के बारे में कहने में कोई निषेध अनुभव करने लगा था, किन्तु यह भी सम्भव नहीं लगता कि वह उनको झूठे, ढोंगी, पाखण्डी शिष्य कहने लगा था।[2] यह तो सहज, स्वाभाविक ही था क्योंकि पॉल जरुस्लम में अपने उच्चाधिकारियों के प्रशासनिक नियंत्रण से मुक्त हो जाना चाहता था। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए एक-मात्र उपाय एक नये मुक्तिदाता, संरक्षक के नाम से एक नये धर्म विधान का प्रचार करना ही था। इस प्रकार पॉल यद्यपि मूल सैद्धान्तिक रूप से भगवान् कृष्ण की पूजा-आराधना से भ्रान्त-क्लान्त नहीं हुआ था फिर भी उसने अपने जरुस्लम-अधिकारियों के विरुद्ध विद्रोह करने का मन बना ही लिया और उस विद्रोह की घड़ी में रोष से अथवा निजी आकांक्षा से ग्रस्त-त्रस्त पॉल ने जरुस्लम के प्रति निष्ठा के साथ-साथ कृष्ण-शिशु का भी परित्याग कर दिया और जीसस के नाम से एक अजन्मा दिखावटी काल्पनिक व्यक्तित्व अंगीकार कर लिया।

श्री बैरेट का भी यही मत है। उन्होंने लिखा है कि, 'पॉल के प्रचार से कोरिन्थ में कई लोगों का धर्म-परिवर्तन हुआ, जिनमें प्रथम (अकाइया में तो कम-से-कम प्रथम) स्टीफेनस के परिवार के लोग ही थे (xvi—१५)। पॉल ने तो केवल एक कृस्ती चर्च (अर्थात्) जीसस कृस्त (क्राइस्ट) खुद के लिए मनोगम्य, कल्पनीय नींव ही रखी थी (iii १० एफ०)। अन्य लोगों को इसके (नींव के) ऊपर निर्माण करना था, और ऊपरी निर्माण कम सन्तोषजनक सिद्ध हुआ उस नींव, आधार की अपेक्षा, तुलना में जिस पर

१. मानचेस्टर विश्वविद्यालय में २६ नवम्बर, १९६३ को दिया गया 'मैन्सन मैमोरियल लेक्चर', पृष्ठ २९५।
२. वही, पृष्ठ २९६।

यह सारा बना था।"[1]

इस प्रकार भी बैरेट जैसे इस्लाम-बुद्धि, विवेकी विद्वानों के अनुसार आधार से लेकर ऊपर तक सम्पूर्ण ईसाई-निर्माण पॉल की सृष्टि ही है। एक बार जब पॉल ने इस दिशा में कार्य प्रारम्भ कर दिया, तब किसी ने भी जीसस के अस्तित्व के बारे में प्रश्न करने या उसकी परख करने का कष्ट नहीं किया। और आज हमारे सम्मुख एक अति विशाल ऊपरी निर्माण है जिसमें [illegible] से नीचे तक तथा शाखाओं-प्रशाखाओं तक और करोड़ों की संख्या तक अनुयायी धर्मावलम्बी हैं। किन्तु जब श्री बैरेट और प्रोफेसर डा० ए० केन्स जैसे विद्वान् इस प्रश्न की जाँच-पड़ताल करते हैं कि वास्तव में वे [illegible] किसका अनुसरण करते हैं तब वे विफल हो जाते हैं।

हम ऐसा ही समान उदाहरण ताजमहल की कथा में पाते हैं। तीन लम्बी शताब्दियों तक ढोल बजा-बजाकर विश्व-भर में प्रचार ने यह विश्वास [illegible] विश्व को दिग्भ्रमित किया है कि ताजमहल का निर्माण एक इस्लामी मकबरे के रूप में १७वीं सदी में हुआ था। हमने जब इस मामले की जाँच-पड़ताल की तो यह पाया कि यह ताजमहल तो उस शाहजहाँ से पूर्व लगभग ५०० वर्षों से ही अस्तित्व में रहा है जिसे आमतौर पर इसका निर्माण-श्रेय दिया जाता है। यहाँ भी सम्पूर्ण विश्व ने किसी भी तथ्य को सत्यापित करने की परवाह किए बिना ही मात्र कानाफूसी पर ही अपना भावात्मक काल्पनिक विश्वास जमा लिया।

पॉल और उसके समकालीन सभी भगवान् कृष्ण की पूजा करनेवाले होने के कारण उनके पास भगवद्गीता (या उसका सार-संक्षेप) किसी-न-किसी रूप में था ही। यह वह उपदेश ग्रन्थ है जो महाभारत-युद्ध-क्षेत्र में भगवान् कृष्ण ने अपने शिष्य अर्जुन को परामर्श रूप में दिया था।

[illegible] ने लिखा है 'सैण्ट् ने सूक्ति-संग्रह (लॉगिया) हिब्रू भाषा में लिपिबद्ध किया [illegible] जो प्रकटतः क्राइस्ट (कृस्त) के कथनों का एक पूर्वकालिक [illegible] संग्रह था। सम्भवतः पॉल के पास कोई ऐसा अभिलेख—

१. प्रो० ई० बैरेट : '[illegible] ऑन दि फर्स्ट एपिसल टु दि कोरिन्थियन्स' पृष्ठ ६

दस्तावेज था क्योंकि वह चाहे किसी धर्मग्रन्थ का उल्लेख नहीं करता, फिर भी जीसस के प्रत्यक्ष शब्दों, उद्गारों को वह प्रायः उद्धृत करता ही रहता है।'[1]

उपर्युक्त अवतरण केवल तभी सार्थक होगा जब क्राइस्ट (कृस्त) को कृष्ण का एक रूपान्तरण और जीसस का ईशस का रूप समझ लिया जाए। उपर्युक्त अवतरण में यह भी उल्लेख किया गया है कि पॉल के पास कोई धर्मशास्त्र (धर्मग्रन्थ) न था और इसीलिए वह किसी धर्मग्रन्थ का उल्लेख भी नहीं करता। इसी प्रकार हम पहले ही यह भी अवलोकन कर चुके हैं कि जीसस का जन्म कभी हुआ ही नहीं था। अतः स्वाभाविक ही है कि यदि पॉल के पास (बाइबल से पहले भी) कोई पुस्तक थी जिसमें वह स्वयं उस भगवान् के उद्गारों को उद्धृत करता था जिसका नाम जीसस क्राइस्ट (कृस्त) अर्थात् ईशस कृष्ण था, तब वह धर्मशास्त्र (ग्रंथ) या पुस्तक स्वयं 'भगवद्गीता' के अतिरिक्त अन्य कुछ भी ही नहीं।

प्रारम्भ में पॉल अर्थात् सॉल भगवान् कृष्ण का इतना कट्टर, एक-निष्ठ भक्त और हिन्दू धर्म का अनुयायी था कि जब लगभग ईसा-पश्चात् सन् ३० में स्टीफन पर मुकदमा चला था और उसे मृत्युदंड दिया गया था तब उस पर आक्रमण में पॉल ने भी भाग लिया था।

स्टीफन को ७१ सदस्यवाली प्राचीन जरुसलम की सर्वोच्च परिषद् और न्याय के उच्चतम न्यायालय 'सन्हेड्रिन' के समक्ष इस आरोप पर बुलाया गया था कि उसने मोजेज तथा ईश्वर के विरुद्ध अपशब्दोंवाली भाषा का प्रयोग किया था। उसने अत्यधिक प्रतिशोध के साथ अपना बचाव किया था यह कहकर कि "मूर्तिपूजक दिलों और कानोंवाले तुम जिद्दी, हठी लोगो! तुम हमेशा पवित्र आत्मा का विरोध कर रहे हो जैसा तुम्हारे पूर्वजों ने किया था। तुम्हारे पूर्वजों ने किन पैगम्बरों पर मुकदमा नहीं चलाया? तुमने उन आदमियों को मार डाला जिन्होंने सत्पुरुष के आने का भविष्य कथन किया था तुमने जिसको अब धोखा दिया है और मार डाला है।"[2]

१. 'सभ्यता की कहानी', खण्ड ३, पृष्ठ ५५५।
२. वही, खण्ड ३, पृष्ठ ५७५-५७६।

स्टीफन की वार्ताओं जैसी बातों से कुपित होकर, क्योंकि जैसा हम देख ही चुके हैं कोई जीसस हुआ ही नहीं था "सन्हेड्रिन ने क्रुद्ध होकर उसे बाहर तक घसीटकर निकलवा दिया और पत्थरों की मार से मरवा दिया।" ताकि पॉल ने हमले में साहाय्य बढ़ावा दिया और बाद में वह जरुस्लम से घर-घर की तलाशी लेने के लिए गया जहाँ उसे शंका थी कि स्टीफन जैसे अन्य लोग छुपे होंगे जो हिन्दू-पूजा के विरोध में प्रचाररत होंगे, और फिर उसने उनको कारावास में ठूंस दिया।

विल ड्यूरण्ट के अनुसार "बाइबल की व्याख्या करने का पॉल का ढंग अति छलनापूर्ण और प्रखर था। पॉल ने स्वयं को व्यक्तित्व की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वहीन और भयंकर शारीरिक पीड़ा से ग्रसित बताया। वह एक झुका हुआ गंजा विशाल मस्तक, पीला मुख कठोर मुखाकृति तथा घनी भौंहोंवाला दाढ़ीयुक्त तपस्वी था। वह कार्य करने में शक्तिशाली था यद्यपि विचारों में वह संकुचित था। वह ईश्वर की मस्तीवाला व्यक्ति था जो धार्मिक उत्साह उमंग से मदमस्त ओतप्रोत था। वह स्वयं को दैवी प्रेरणावाला व्यक्ति विश्वास करता था जिसको चमत्कार करने की योग्यता ईश्वर से कृपावश प्राप्त थी।"[१]

पॉल ने यहूदीवाद के नाम से कृस्ती-पंथ पर आक्रमण करने से प्रारम्भ किया और क्राइस्ट (कृस्त) के नाम से यहूदीवाद की अस्वीकृति से अन्त, समाप्त किया।"

विल ड्यूरण्ट का यह पर्यवेक्षण ठीक सही नहीं है। पॉल ने कृस्ती-पंथ पर आक्रमण नहीं किया जिसका सीधा-सादा कारण यही था कि पॉल को मालूम था कि कोई जीसस था ही नहीं और इसी कारण कोई कृस्त-नीति भी नहीं थी। पॉल स्टीफन और उसके अनुयायियों से इस कारण चिढ़ गया, कुपित हो गया कि वे एक गैर-मौजूद, अस्तित्वहीन पैगम्बर के नाम से एक स्थापित धार्मिक व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह बगावत खड़ी कर रहे थे। इसलिए पॉल स्टीफन के विरुद्ध तीव्र हो उत्तेजित था।

विल ड्यूरण्ट का कहना है कि, "विधि (कानून) के प्रति स्टीफन की

१. 'सभ्यता की कहानी', खण्ड ३, पृष्ठ ५८०।

अवहेलना-वृत्ति से आहत होकर पॉल स्टीफन की हत्या करने में शामिल हो गया और जरुस्लम में कृस्ती-पंथियों के सर्वप्रथम उत्पीड़न में नेतृत्व प्रदान किया। यह सुनकर कि नये धर्म ने दमिश्क में धर्म परिवर्तन कराया है, उसने प्रधान पुरोहित से वहाँ जाने की, उक्त पंथ से सम्बन्धित सभी व्यक्तियों को बन्दी बना लेने की और उनको जंजीरों में बाँधकर जरुस्लम ले आने की अनुमति (लगभग ईसा-पश्चात् सन् ३१ में) प्राप्त कर ली।'

सभी विद्वानों ने अभी तक यही विश्वास करने में गलती की है कि स्टीफन और पॉल का समान, एक ही धर्म था और वह धर्म था ईसाई-धर्म, कृस्त-नीति। यह दुहरी, दुतरफा गलती है। स्टीफन कृस्ती नहीं था। वह तो स्थापित धार्मिक प्रणाली का एक विरोधी मात्र था। उन दिनों कृष्ण मन्दिरों का नियन्त्रण करने वाले लोगों के विरुद्ध अपने क्रोध में स्टीफन अपना आगा-पीछा भुला बैठा। अपनी दिमागी उत्तेजित अवस्था में उसने अपने विरोधियों पर भगवान् की हत्या करने, सत्य व न्याय का नाश कर देने के आरोप लगा दिए। मनुष्य क्रोधित होने पर इसी प्रकार की परिचित भाषा का इस्तेमाल करता है। पॉल ने भी बाद में इसी भाषा को दोहराया था। किन्तु पॉल ने भिन्न अवसरों पर भिन्न-भिन्न भूमिकाएँ निभाईं। पहले की भूमिका में उसने स्टीफन का विरोधी करार देते हुए उसकी निन्दा की और उसको मार डालना उचित बताया। बाद में जब वह स्वयं पुरोहित-वर्ग के साथ झगड़े में पड़ गया, तब उसने पुरोहित-समाज को कृष्ण अर्थात् कृस्त (क्राइस्ट) की हत्या का दोषी ठहराया—अर्थात् देवत्व के प्रत्येक सिद्धान्त की उपेक्षा, अवहेलना करने का पुरोहित-वर्ग को दोषी कहा। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो देवत्व की 'भावना, आत्मा' का हनन करने के लिए पुरोहित-वर्ग को ही पूरी तरह अपराधी कहा गया था। यह सामान्यतः प्रचलित वाक्य-शैली है जिसका प्रयोग अन्याय की शिकायत करनेवाला प्रायः हर व्यक्ति सामान्यतः करता ही है।

कृस्ती-पंथ ने स्टीफन और पॉल द्वारा विभिन्न अवसरों पर प्रयुक्त क्रुद्ध भाषा का मूलार्थ निकालने में भयंकर भूल की है। सर्वप्रथम जब पॉल और स्टीफन ने पौरोहित्य को कृस्त की हत्या करने का अपराधी कहा था, तब उनका भाव, नाम-संकेत कृष्ण था क्योंकि उन दिनों के यूरोपीय-अरब

जरुस्लम से भेजे गए एक दल ने किया जिसका आग्रह था कि नए धर्म में भी खतना करानी चाहिए क्योंकि यहूदियों में इसको प्रचलित रखा हुआ था। [illegible] से जरुस्लम में प्रविष्ट यहूदियों को समझाने-बुझाने के लिए वहाँ [illegible] कि वे खतना—मुसलमानीकरण—के लिए आग्रह न करें। जरुस्लम के दल को अंटियोक समूह ने विशाल धनराशि देकर सम्भवतः मना लिया गया था। किन्तु बाद में भी पॉल और बर्नाबस को [illegible] और उन्हें दबाया उन पर जोर भी डाला जाता रहा।

ईसा-पश्चात् सन् ५० के आसपास, विश्वास किया जाता है कि पॉल ने अपनी दूसरी धर्म-प्रचार यात्रा की थी। लगभग इसी कालावधि में बर्नाबस साथ में मतभेद कर बैठा था और फिर इतिहास में कभी उसका नाम नहीं सुना गया। विश्वास किया जाता है कि वह मूल स्थान साइप्रस वापस चला गया था। किन्तु पॉल को एक युवा टिमोथी मिल गया तथा लूके व सिलास भी आकर उसके साथ हो लिए।

मसीडोनिया में फिलिप्पी में पॉल और सिलास बन्दी बना लिए गए थे, उन्हें मारा गया तथा कारागार में डाल दिया गया। किन्तु उन्हें तब मुक्त कर दिया गया जब उन्होंने अपनी रोमन नागरिकता सिद्ध, प्रमाणित कर दी।

थेसालोनिका में जीसस के नाम में प्रचार करने के लिए पॉल का विरोध किया गया था और उसे गुप्त रूप से रात्रि के समय शहर से बाहर सुरक्षित निकाल दिया गया था।

तब पॉल बेरोइया के लिए चल पड़ा लेकिन वहाँ भी उसका विरोध हुआ और उसे रात बचाकर भागना पड़ा। पॉल एथेन्स पहुँच गया। वहाँ वह बाजार में खड़ा हो जाता था और अन्य कई धर्म प्रचारकों के समान लम्बा-चौड़ा उग्र भाषण दिया करता था। लोग उसको ताना मारते और मज़ाक उड़ाते थे।

उन दिनों के एथेन्स में, आक्रमणों से ध्वस्त होने के कारण, अनेकों उपासनागृह बने पड़े थे। एक स्थान पर लगी पुरातत्त्वीय-सूचना के अनुसार वह पूजा-स्थान 'अज्ञात ईश्वर' का था। पॉल ने उसकी व्याख्या इस ढंग से की कि इस पूजा-स्थान का सम्बन्ध उस ईश्वर से था जो अदृश्य था।

एथेन्सवासियों ने उसकी ओर तिरस्कार-दृष्टि ही रखी। पॉल निराश हो कोरिन्थ के लिए चल पड़ा, जो समृद्धिशील व्यापारी केन्द्र था। पॉल वहाँ १८ महीने रहा, आजीविका के लिए टेण्ट बनाने का काम करता रहा और साप्ताहिक छुट्टियों में उपासनागृहों की धर्म-सभाओं में प्रचार-भाषण करता रहा जो 'सब्बाथ' के नाम से जाने जाते हैं।

यहाँ पॉल ने अपने अनेक अनुयायी बना लिए यद्यपि उसका अपने विरोधियों से झगड़ा भी हुआ जिन्होंने पॉल पर मुकदमा दायर कर दिया।

कोरिन्थ से पॉल 'चर्च को सलामी' देने के लिए जरुस्लम चला गया। जरुस्लम उन दिनों में सभी धर्मों का प्रधान केन्द्र होने के महत्त्व को बनाये हुए था क्योंकि इसमें अरब-यहूदी केन्द्र का सबसे बड़ा कृष्ण-मन्दिर स्थित था।

ईसा-पश्चात् सन् ५४ के आसपास पॉल अपनी तीसरी धर्म-प्रचार-यात्रा के दौरान जरुस्लम से अंटियोक और एशिया लघु के लिए चल पड़ा। ईफिसस में अपने दो वर्षीय प्रवास के मध्य आध्यात्मिक उपचार का अभ्यास करने के लिए उसने अनेक लोगों को अपना अनुयायी बना लिया। यहाँ कई कलाकार हिन्दू देवताओं की प्रस्तर या धातुओं की मूर्तियाँ/प्रतिमाएँ बनाकर या उनके मन्दिरों के प्रतिरूप बनाकर अपना जीवन-निर्वाह करते थे। पॉल द्वारा नए मत/पंथ के प्रचार का उनके व्यवसाय पर कु-प्रभाव होता था। अतः उन्होंने पॉल को वह स्थान छोड़कर चले जाने के लिए विवश, मजबूर कर दिया।

इसके पश्चात् उसने कुछ मास फिलिप्पी, थेसालोनिका और बेरोइया में स्थापित लघु सभाओं के साथ सुखपूर्वक गुजारे। उसे सन्तोष था कि उसने प्रबल विरोध और घृणा का बहादुरी के साथ मुकाबला किया था और उसे एक नायक के रूप में अपनी छवि बनाने की अपनी महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति भी होती हुई दिखी थी जो कई स्थानों पर चाहे थोड़े ही लोग मानने लगे। पॉल को पता था कि इसके बाद अन्य पंथों से विलग हुए लोग इस नए पंथ में आ ही जाएँगे क्योंकि यह क्रम उसने एक बार तो शुरू कर ही दिया था। चूँकि अब नया पंथ प्रारम्भ कर ही दिया गया था, अतः समय बीतते-बीतते उसके अनुयायियों की संख्या बढ़नी भी लाजिमी, आवश्यकीय ही थी।

इसी घड़ी में पॉल ने कोरिन्थ स्थित अपने अनुयायियों में मौजूद मतभेद,

अपमान और अत्याचार की शिकायतें भी प्राप्त कीं। उसने उनकी भर्त्सना के कई पत्र उनको लिखे। बाद में, जब ईसा-पश्चात् सन् ५६ के आसपास पॉल कोरिन्थ गया तब उसकी मुखालफत करनेवालों ने उसके ऊपर आरोप लगाए कि उसने धर्म-प्रचार के कार्यकलापों से बहुत भौतिक लाभ उठाए थे, उन्होंने उसके अलौकिक रहस्यमय दृश्यों का भी मजाक उड़ाया।

पॉल की जीवन-गाथा सताए गए, तंग किए गए, उखाड़े गए, दुःखी व्यक्ति की जीवन गाथा थी। उसने आठ कशाघात (कोड़ों-चाबुकों की मार), एक बार पत्थरों की मार, तीन बार सर्वनाश और नदियों, लुटेरों तथा प्रतिद्वन्द्वियों से हजारों बार विपत्तियाँ सहन की थीं।

चूँकि नव-धर्मावलम्बी अधिकांशतः यहूदी थे, उन्होंने कृस्ती-पंथ में भी 'सुन्नत' कराने को अनिवार्यतः जरूरी कर देने पर जोर दिया। पॉल उस यहूदी-प्रथा का कोई आग्रही नहीं था। यह विवाद तथापि बना रहा और बाद में अति तीव्र हो गया। पॉल जरूसलम आने के लिए और यह मामला सदैव के लिए निपटा देने के लिए मजबूर हो गया।

जरूसलम में पॉल का प्रत्यक्षतः भव्य स्वागत किया गया। अनेक कृस्ती-अन्यों उपनिवेशों के संस्थापक नेता के रूप में परन्तु परोक्ष, निजी रूप से सुन्नत पर आग्रही न होने के लिए उसकी निन्दा, भर्त्सना की गई। अपनी भूल चूक के लिए प्रायश्चित्त के निमित्त विशुद्धिकरण-रीति पूरी करने का आग्रह किया गया। किन्तु जब वह यहूदी-मन्दिर में देखा गया, तो उसके विरुद्ध जन-रोष मुखर हो गया। उसे घेर लिया गया और घसीटकर बाहर कर दिया गया। रोमन सैनिकों ने बीच-बचाव किया और उसे सुरक्षात्मक अभिरक्षा प्रदान की। उसे कैसरिया भेज दिया गया और वहाँ दो वर्ष तक ईसा-पश्चात् ५८ से ६० सन् तक घर में नजरबन्द रखा। उस पर नया पंथ, धर्म प्रारम्भ कर व्यवस्था को भड़काने का आरोप लगाया गया। छूटने पर, पॉल को जलपोत से भेजा गया जो समुद्र में नष्ट हो गया।

रोम में आने पर पॉल पर निगरानी रखी गई। वहाँ से वह विभिन्न स्थानों पर अपने अनुयायियों को प्रेममय पत्र लिखा करता था। उन पत्रों में पॉल की इस अपराध-स्वीकृति से कि "मैं सब लोगों के लिए सभी कुछ हो चुका हूँ" यह बिल्कुल स्पष्ट है कि पॉल सभी लोगों को उनकी ही इच्छानु-

सार शर्तों पर नया पंथ स्वीकार करने के लिए एकत्र होने का आग्रह कर रहा था, जो उनके अपने मूल विश्वासों का मात्र थोड़ा भिन्न रूप ही था।

इस प्रकार भगवान् कृष्ण के महान्, अटल हिन्दू भक्तों को—कोरिन्थ-वासियों को पॉल कहा करता था : "क्या तुम नहीं जानते कि तुम्हारा शरीर उसमें निवास करनेवाली पवित्र आत्मा का मन्दिर है? प्रत्येक आत्मा दिव्य आत्मा, परमात्मा का ही एक अंश है—यह मान्य सिद्धान्त हिन्दू लक्षण ही है।"

पॉल के विरोधियों को पॉल स्वयं ही दिग्भ्रमित तथा एक नए पंथ का नेता बनने और एक नए 'चर्च' का प्रधान बनने के लिए अन्य लोगों को भ्रम में डालनेवाला प्रतीत होता था। अन्य लोगों को अपने पंथ में लाने के लिए उनको यह समझाने के बारे में कि उनके पुराने विश्वासों, पंथों से उसका नया पंथ थोड़ा-सा ही भिन्न था, विल डूरण्ट कहते हैं कि "पॉल ने यहूदियों के नीतिशास्त्र, आचारशास्त्र को यूनानियों की तत्त्वमीमांसा में गूँथ दिया था और धर्मग्रन्थ के जीसस को देव, ब्रह्म-विज्ञान के क्राइस्ट (कृष्ण) में रूपान्तरित कर दिया था। उसने एक नया रहस्य सृजित कर दिया था।"[1]

अपने शोचनीय, त्रासदायी अन्त से कुछ माह पूर्व ही पॉल ने कोरिन्थ-वासियों को लिखा था : "नियत घड़ी बहुत थोड़ी रह गई है··· विश्व का वर्तमान रूप बदलता जा रहा है···मारानाथ, भगवन्, शीघ्र आओ।"

यह विशिष्ट हिन्दू-आह्वान है। स्वयं 'मारानाथ' विशेषण-सम्बोधन 'मारण-नाथ' है जो मृत्यु-देवता के लिए संस्कृत उपाधिगत शब्द है। मृत्यु की कामना करते हुए पॉल द्वारा उस नाम का उच्चारण इस तथ्य का स्पष्ट संकेतक है कि पॉल का देवता भगवान् कृष्ण ही था, जिसके जरूसलम और कोरिन्थ-स्थित देवालयों, मन्दिरों में पॉल एक सहायक के रूप में नियुक्त था। उसका अपना स्वयं पॉल अर्थात् पाल नाम भी गोपाल, धन्यपाल या असुर बेनीपाल में प्रयुक्त सामान्य संस्कृत प्रत्यय ही है। चाहे सॉल हो या पॉल, नाम तो संस्कृत भाषा का ही है जिसमें से 'गो' उपसर्ग पृथक् हो गया था। 'गोसाल' अर्थात् 'गोपाल' नाम का अर्थ गौओं का लालन-पालन,

---

१. 'सभ्यता की कहानी', खण्ड ३, पृष्ठ ५६१।

जीसस का तीन दिनों के बारे में संदर्भ १४ : ५७, ५८ ऐसा सुझाता है कि यह रोष पॉल, स्टीफन, मार्क आदि का है (मैं हाथों से बनाए गए इस मन्दिर को नष्ट कर दूंगा और तीन दिन में ही दूसरा मन्दिर बना दूंगा जो हाथों द्वारा निर्मित नहीं होगा।) मन्दिर के प्रबन्ध में उनकी कोई भी राय न सुनी जाने पर उन लोगों ने सोचा कि मन्दिर नष्ट हो जाए, तभी ठीक है। यही वह असन्तोष और क्षोभ है जिसके कारण उन्होंने कृस्ती-पंथ अर्थात् कृष्ण-नीति का अपना पृथक् समूह स्थापित कर लिया और इसे जनप्रिय बनाने के लिए कठोर परिश्रम किया जिससे वे प्रचार, प्रतिष्ठा, समृद्धि और शक्ति के प्रमुख केन्द्र बन जाएँ।

धन की अदला-बदली करनेवालों की मेजें पलट देने, हर एक को बाहर निकाल देने, मन्दिर को लुटेरों-ठगों का अड्डा कह देने और उसे उन लोगों से मुक्त स्वच्छ करने की यह विद्रोही-योजना, जिसके लिए अजन्मे क्राइस्ट (कृष्ण) को श्रेय दिया जाता है, वास्तव में वह चाहना-इच्छा थी जिसे पॉल, स्टीफन और अन्य प्रारम्भिक कृस्ती नेतागण गम्भीरतापूर्वक पूर्ण करना चाहते थे। उपर्युक्त उद्धरण इस बात का अत्यन्त सशक्त, महत्त्वपूर्ण साक्ष्य प्रमाण है कि बाइबल प्रारम्भिक कृस्ती (ईसाई) नेताओं की ऐसी ही काल्पनिक कथा से भरी पड़ी है। उनकी यह विद्रोहात्मक योजना ही है जो उन्होंने बाइबल में जीसस के नाम से अभिलेख, अंकित कर दी है।

उपर्युक्त उद्धरण ही इस बात का भी निर्णायक साक्ष्य है कि कृस्ती-पंथ किसी नई दिव्य-दृष्टि या धर्म विज्ञान के रूप में प्रारम्भ न होकर उस वर्ग-समूह का झगड़ालू दल था जो उन लोगों से कृष्ण मन्दिर का प्रबन्ध छीन लेना चाहता था जिनके नियन्त्रण में वह था।

इतिहास छः सौ वर्ष बाद उस समय भी पुनः दोहराया गया था जब मक्का स्थित विख्यात हिन्दू काबा मन्दिर पर नियन्त्रण के लिए संघर्ष के परिणामस्वरूप इस्लाम का जन्म हुआ। इसका अपना संस्कृत-नाम 'ईश-आलयम' (अर्थात् ईश्वर का निवास-स्थान) और वे सात परिक्रमाएँ जो विश्व भर के मुसलमान वहाँ पर स्थित भगवान् शिव की प्रस्तर-प्रतिमा के चारों ओर अभी भी लगाते हैं, इस तथ्य का प्रमाण पर्याप्त रूप में है कि इस्लाम की किसी धर्म विज्ञान, ईश्वर-मीमांसा के रूप में प्रारम्भ नहीं हुआ

था अपितु उस विलग धड़े के रूप में जन्मा था जो काबा-मन्दिर पर नियंत्रण करने के लिए तत्कालीन नियन्त्रक-प्रबन्धक से लड़-झगड़ रहा था। अरब के काबा-मन्दिर में ३६० हिन्दू-देवमूर्तियों में से एक मूर्ति भगवान् कृष्ण की थी।

कृस्ती-पंथ और इस्लाम दोनों की ही विशेष, अलग-थलग लक्षणोंवाली धर्म-विज्ञानी-परिभाषाएँ अपनी विशिष्ट पहचान बनाने के लिए इन सम्प्रदायों के सर्वेसर्वा लोगों की तत्कालीन आवश्यकताओं और इच्छाओं के अनुरूप निर्धारित कर ली गई थीं।

विद्रोह में ही दोनों का जन्म होने के कारण इस्लाम और कृस्ती-पंथ का अन्त भी विद्रोहों में ही हो सकता है क्योंकि अ-दृश्य अज्ञात अलौकिक शक्तियों द्वारा नियन्त्रित ब्रह्मांड में, सभी लोगों के लिए शान्ति और सुख का भाव रखनेवाली धारणा में अपनी जड़ें न रखनेवाली व्यवस्थाएँ स्थायी नहीं बनी रह सकतीं। दैवी-योजना में, इस्लाम और कृस्ती-पंथ जैसे विश्वासों का मात्र कार्य दुष्कर्मियों को अस्थायी दण्डात्मक स्वरूप तक ही सीमित हो सकता था। उक्त भूमिका के समाप्त होते ही ये सभी पंथ एक स्थायी, शाश्वत, सर्वस्नेही, सर्वसुखदा, मातृ-सदृश दार्शनिकता के अभाव में नष्ट, ओझल हो सकते हैं।

कृस्ती-पंथ का जन्म कृष्ण मन्दिर पर नियन्त्रण के विवाद से उत्पन्न, केन्द्रित होने का प्रत्यक्ष प्रमाण, निष्कर्ष उस प्रतिवेदन से होता है कि मन्दिर को नष्ट करने की जीसस की योजना सुननेवाले प्रधान पुरोहितों और उसके अन्य सहायकों ने स्वयं "जीसस को नष्ट कर देने का ही उपाय ढूंढ़ना चाहा था।"

कृस्ती (ईसाई) साहित्य और उसके इतिहास के सभी विद्वानों ने इस १९०० वर्षों तक इस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बिन्दु पर ध्यान ही नहीं दिया है। बाइबल में और कृस्ती परम्परा में मिलनेवाली विपरीत बातें और असंगतियाँ तभी ग्राह्य, बोधगम्य हो जाती हैं जब यह मूल विवाद समझ लिया जाए।

उदाहरण के लिए, मार्क ने लिखा है कि जीसस के अनुयायियों ने उसका परित्याग कर दिया और उसकी गिरफ्तारी पर भाग खड़े हुए थे।

यदि यह बात है तो जीसस-सम्बन्धी मुकदमे के विवरण आधिकारिक कैसे हो सकते थे। सही मन्तव्य तो यह है कि विरोध-प्रदर्शनकारियों के कई प्रारम्भिक समर्थक भयभीत हो गए थे और भाग गए थे।

मध्य रूप से तो उन लोगों के कठोर श्रम, जिन्होंने मन्दिर-प्रबन्ध पर नियन्त्रण या उसे ध्वस्त कर देना चाहा था, एक आविष्कृत जीसस के व्यक्तित्व में ही मूर्त रूप धारण कर लिए प्रतीत होते हैं। अतः यह जीसस नहीं था जिसे यहूदियों द्वारा धोखा दिया गया था और जो रोमनों द्वारा मृत्युदण्ड [illegible] दण्डित सूली पर चढ़ाया गया था। पॉल और स्टीफन [illegible] नेतागण ही जिन्होंने मन्दिर-व्यवस्था के विरोध में आन्दोलन भड़काया प्रतीत होता है वे व्यक्ति थे जिन पर मुकदमे चले थे और जिन्हें दण्डित किया गया था क्योंकि इन्होंने ही प्रत्यक्ष रूप में एक विद्रोह करने की और सार्वजनिक शान्ति भंग करने की धमकी दी थी।

जीसस और उसके बारह पट्ट-शिष्यों की कल्पित अन्तिम ब्यालू वास्तव में पॉल और उसके बारह (१२) समर्थकों की ही थी। सम्भव है कि रोमन प्रशासन ने इन १३ व्यक्तियों को रात्रि-ब्यालू के समय उस मध्यम [illegible] कमरे में उपस्थित होकर चकित विस्मित कर दिया हो और एक विद्रोह करने की साजिश बनाने के लिए मुकदमा चलाने के अभियोग/आरोप में गिरफ्तार कर लिया हो। कृष्ण-मन्दिर पर नियन्त्रणाधीन यहूदियों का जिन्होंने रोमन अधिकारियों के समक्ष असन्तुष्टों की सूचना दी, विश्वासघाती जूडास के रूप में मूर्त कर दिया गया है।

[illegible] का विद्रोह-सम्बन्धी सदर्भ अभी तक कृस्ती-विज्ञान, कृस्ती-शास्त्र के [illegible] के लिए एक गुत्थी पहेली रहा है। अब यह ऐसा नहीं होना चाहिए।

मन्दिर के मुख्य पुरोहितों द्वारा लगाया गया 'गम्भीर आरोप' जीसस के विरुद्ध नहीं था बल्कि उन प्रारम्भिक कृस्ती-नेताओं के खिलाफ था वह जिनका व्यक्तित्व-प्रतिरूपण था।

मार्क ने लिखा है 'अब दावत (भोज), पर वह (पॉलेट) उनके लिए उन्हीं की इच्छानुसार एक कैदी को छोड़ दिया करता था और जेल में विद्रोहियों ने जिन्होंने विद्रोह-राजद्रोह में हत्या कर दी थी, बाराब्बस

नामक एक व्यक्ति था "और पॉलेट ने भीड़ को सन्तुष्ट करने की इच्छा से, उनके लिए बाराब्बस को मुक्त कर दिया और उसके बदले में सूली पर चढ़ाए जाने के लिए जीसस दे दिया।"

जीसस जैसे एक सज्जन, संतनुमा व्यक्ति के बदले में एक लुटेरे, ठग को छुड़ाने का भीड़ का स्पष्ट, प्रत्यक्ष आग्रह सबसे बड़ी विसंगति कही जा सकती है। हमारा विश्वास है कि बाइबल या यहूदी इतिहास का कोई भी विद्वान् अभी तक इस गुत्थी का कोई सम्यक्, संतोषजनक समाधान प्रस्तुत नहीं कर पाया है।

हमारा समाधान-उपाय इस प्रश्न को निश्चित रूप से पूरी तरह हल कर देता है। अन्तिम बात यह है कि जीसस नाम का कोई व्यक्ति था ही नहीं। जीसस के स्थान पर तथाकथित कृस्ती-राजविद्रोह के विरोधी यहूदी और यूनानी नेतागण थे। उनको फाँसी, सूली दी गई थी।

अध्याय ६

बाइबल में असंगतियाँ

बाइबल की विवेचनापूर्ण जाँच-पड़ताल स्पष्ट दर्शा देती है कि यह कई पृथक् विषम तत्त्वों का संकलन है। इसका एक बहुत बड़ा भाग प्राचीन-विधान (ओल्ड टेस्टामेंट) है जो उपयुक्त, समीचीन, रूप में मात्र उन्हीं लोगों से सम्बन्धित है जो यहूदी ही बने रहे और जिन्होंने बपतिस्मी कृस्ती (ईसाई) होने से इन्कार कर दिया। किन्तु जैसे-जैसे चूँकि नए बपतिस्मी परिवर्तित लोग अधिकांशतः यहूदियों में से ही थे, इसलिए उन्होंने अपने प्राचीन मूल ग्रंथ का पीछा छोड़ देने और इसका परित्याग कर देने की बजाय इसको ही अपने नए पंथ में भी जोड़ दिया।

अन्य है 'अपोक्रिफा'। ऑक्सफर्ड शब्दकोश ने 'अपोक्रिफा' की परिभाषा यूँ की है: 'सप्तुआजिन्ट और वल्गेट (प्राचीन लाटीनी बाइबल) में सम्मिलित प्राचीन विधान की पुस्तकें किन्तु जो मूल रूप में हिब्रू भाषा में नहीं लिखी गईं, न ही जिन्हें यहूदियों ने वास्तविक, असली, मूल ग्रन्थ माना और धर्म-सुधार (रिफार्मेशन) के अवसर पर धर्मग्रन्थ संग्रह से जिसे बाहर कर दिया गया।' यह अप्रामाणिक ग्रन्थ, प्रक्षिप्त भाग माना जाता है।

इसके बाद आता है **नव-विधान** नया पाठ (न्यू टेस्टामेंट)। इसे विशुद्ध कृस्ती धर्मग्रन्थ ही माना जाना चाहिए। यह भी, किन्तु मात्र एक संकलन, ग्रन्थ नहीं है। यह चार पृथक्-पृथक् व्यक्तियों द्वारा, पृथक्-पृथक् समय पर स्वतन्त्र रूप से लिखे गए वृत्तान्तों का संकलन है। अतः उनमें लम्बाई, अन्तर्वस्तु तथा स्वर-शैली में अन्तर है। ये व्यक्ति हैं—मैथ्यू, मार्क, लूके और जॉन।

इसके बाद संलग्न है वे दस्तावेज जिन्हें **'धर्म-शिष्यों के चरित'** (एक्टस

ऑफ दि अपोस्सल्स) कहते हैं।

फिर, पत्र आते हैं। कई पत्र पॉल द्वारा कोरिन्थवासियों, गैलेशियनों, एफेसिनियनों, फिलिपोनियनों, कोलोसियनों और थेस्सेलोनियनों में व उसके सम्पर्क-सूत्रों, टिमोथी, टाइटस और फिलेमन जैसे व्यक्तियों तथा हिब्रुओं को सम्बोधित हैं।

इनके पश्चात् वे पत्र हैं जो जेम्स, पीटर, जॉन और जूडे ने अपने सम्पर्क-सूत्रों, व्यक्तियों को लिखे हैं।

इसके पश्चात् आता है वह जिसे सेंट जॉन, दिव्यपुरुष का **दिव्य-दर्शन** कहते हैं।

ये सभी तत्त्व मिलकर भी एक मिश्रित चित्र की सृष्टि नहीं करते यद्यपि एक अस्तित्वहीन कृस्त (क्राइस्ट) के बारे में ये छोटे-छोटे अंश भी ७,७५,००० शब्दों की भारी, विशाल संख्या प्रस्तुत करते हैं।

ये पत्र प्रदर्शित करते हैं कि अपने साथियों से अलग होकर पॉल किस प्रकार जीसस क्राइस्ट (ईशस कृस्त) के नाम में एक नए पंथ का संगठन कर रहा था जिसमें वह एक प्रतीक रूप जीसस की कठिनाइयों, संघर्ष और निराशाओं के माध्यम से अपनी ही घटनाओं को प्रस्तुत कर रहा था।

ये पत्र **लिखित पत्राचार** के रूप में हैं जो तत्कालीन प्रचलित धार्मिक अनुशासन से पृथक् होते जा रहे लोगों और एक नई व्यवस्था का निर्माण करना चाहनेवालों के मध्य हुआ। इन पत्रों में, इसीलिए, मुख्य रूप से विरोध, प्रतिरोध, निराशाओं, शिकायतों, मिथ्यावाद— निन्दा, निजी समर्थन हेतु अनुरोध तथा कई बार, जैसा सहज-स्वाभाविक था, कुछ प्रेम-प्रसंगों का भी उल्लेख है।

इस प्रकार, टिमोथी को लिखे दूसरे पत्र में पॉल लिखता है: "मैं जिस लबादा (आवरण) को ट्रोस में कारपस के पास छोड़ आया था, तुम जब आओगे, तब उसे और पुस्तकों को, लेकिन चर्मपत्रों को तो खासतौर से लेते ही आना। ताम्रकार-ठठेरे अलैक्जेन्डर ने बहुत बुरा किया" जिसके बारे में तुम्हें भी पता था, क्योंकि वह हमारे शब्दों का बहुत अधिक विरोध करता था।"[1]

१. 'दि होली बाइबल', किंग जेम्स वर्शन, पृष्ठ ८६४।

वरिष्ठ जोहन द्वारा मनोनीत महिला और उसके बच्चों को लिखे द्वितीय पत्र में 'जिनको मैं सच्चा ही प्यार करता हूँ' जोहन ने जोड़ा है 'हे नारी ! अब मैं तुम्हारी अनुनय विनय करता हूँ कि हम एक-दूसरे से प्रेम करते हैं और यह प्रेम ही है कि हम उसके धर्मादेश के बाद चल रहे हैं···यद्यपि मुझे तुमको बहुत सारी बातें लिखनी हैं किन्तु मैं कागद-मसि में वे नहीं लिखूंगा किन्तु मैं विश्वास करता हूँ कि तुम्हारे पास आऊँगा और आमने-सामने बातें करूँगा जिससे हमारी इच्छाएँ, खुशी पूरी हो सकें।"

कुछ लोग आग्रह कर सकते हैं कि ऊपर उद्धृत भाषा एक आध्यात्मिक सम्बन्ध की द्योतक है। यद्यपि सम्भावना की दृष्टि से उससे इन्कार नहीं किया जा सकता तथापि प्राथमिकता है कि एक सामान्य आध्यात्मिक, असन्तुष्ट दृष्टिकोण आसानी से शारीरिक सदेह, शृंगारिक प्रेम की ओर मुड़ सकता या जा सकता है। यह विशेषरूपेण तब दृष्टव्य, सम्भाव्य है जब क्लिमेन्ट लिखता है कि 'अन्य अधिकांश पट्ट-शिष्यों की ही भाँति पीटर भी अपनी एक 'बहन' को धर्म-प्रचार-कार्य के लिए उसकी अपनी पत्नी और सहायिका के रूप में कार्य करने के लिए ले गया था।'[1]

यीशु के जीवन में काल्पनिक रूप से निर्मित कथा ही जीसस की सम्पूर्ण जीवन-गाथा के साथ-साथ आधुनिक पीढ़ियों तक चले आए धर्मग्रन्थ भी इतने अधिक घटिया रहे, नकली अनुवादों, सुविधाजनक जालसाजियों, मनचाहे विकल्पों, जान-बूझकर किये गए संशोधनों और काल्पनिक परिवर्तनों से गुजर चुके हैं कि ईसाई-पंथ की परिभाषा एक ऐसी आस्था, विश्वास के रूप में की जा सकती है जो कहीं से भी प्रारम्भ न होकर भी कहीं भी किसी प्रकार पहुँच गया है।

डॉ० वेकोस, एक वस्तु-वैज्ञानिक स्पष्टीकरण देते हुए उद्धृत[2] किए जाते हैं 'यह विचित्र समय काल की त्रुटि गलती है···जो विद्वानों को बाइबल के नये अनुवाद प्रस्तुत करने के लिए प्रस्तुत करती (रहती) है।···'पिम' शब्द तो यह बाइबल अर्थात् बुक ऑफ सैमुअल (सैमुअल रचित ग्रन्थ) में

---

१ सभ्यता की कहानी, खण्ड ३, पृष्ठ ५७७।

२ इरविंग वालेस रचित 'दि वर्ड', पृष्ठ १२७।

केवल एक बार आया है। अनुवादकों ने सदैव सोचा था कि 'पिम' का अर्थ एक औजार···बढ़ई की रेती जैसा उपकरण था। अभी हाल ही में, अनुवादकों को ज्ञात हुआ है कि 'पिम' का वास्तविक अर्थ भार का एक माप था।···एक अन्य उदाहरण, प्राचीनतर अंग्रेजी बाइबल में एक पंक्ति सदैव होती थी···ईसैआह ७ : १४···लिखा होता था : "अवलोकन करो! एक कुँवारि गर्भधारण करेगी।" वर्षों तक इसको क्राइस्ट (कृस्त) के जन्म की भविष्यवाणी माना गया था। फिर संशोधित, परिमार्जित मानक रूपान्तर के अनुवादक आए और उन्होंने पंक्ति को इस प्रकार परिवर्तित कर दिया : "अवलोकन करो, एक युवा महिला गर्भधारण करेगी।" वे मूल हिब्रू भाषा से अनुवाद कर रहे थे जहाँ 'ऐमाह' का अर्थ 'युवा महिला' होता है। पूर्ववर्ती बाइबलें अ-यथार्थ यूनानी पाठों के रूपान्तर थे जिन्होंने 'कुँवारि (कुमारी)' के अर्थ-द्योतक शब्द 'पार्थिनोस' (अनिषेक) का अनुवाद कर दिया था।

पहली शताब्दी में मक्की के भुट्टों (इअर्स ऑफ़ कार्न) को (हैड्स ऑफ़ कार्न) मक्की के शीर्ष कहते थे। बाइबली अनुवादों में 'दानों की बालियाँ' (इअर्स ऑफ़ ग्रेन) प्रयुक्त अभिव्यक्ति भी अशुद्ध गलत है। बाइबली युग में ढोर, मवेशी (कैटल) का अर्थ केवल गोजातीय पशु न होकर सम्पूर्ण पशु-जगत् था।

विभिन्न आवश्यकताओं और अभिप्रेरणाओंवाले विभिन्न व्यक्तियों द्वारा विभिन्न काल-खण्डों में किए गए ये सभी अनुवाद उन पूर्वकालिक यूनानी और हिब्रू (यहूदी) रचनाओं में किये गए थे जो अलग-अलग क्षमताओं, निष्ठा, विश्वसनीयता और प्रेरणा-उद्देश्यवाले व्यक्तियों द्वारा तैयार कर दी गई थीं।

अनुवादों के गलत हो जाने और मूल से बिल्कुल ही भिन्न हो जाने का मुख्य कारण यह है कि हर व्यक्ति एक झूठी, काल्पनिक कथा का निर्माण करने, उसमें कुछ जोड़ने या पैबन्द लगाने का यत्न कर रहा था। अतः प्रत्येक लेखक अपने सामने उस समय उपस्थित स्थिति का सामना करने के लिए जैसा भी आवश्यक समझता था, वैसे ही अपनी लेखनी चला देने या कल्पना की उड़ान के लिए स्वयं को पूर्णतः स्वतन्त्र समझता या पाता था।

हिब्रू शब्द 'अल' का अनुवाद 'पर' हुआ करता था। अतः अनूदित

देना। [illegible] एक नकारात्मक सावधानी के रूप में उठाया गया
पादरी-वर्ग द्वारा [illegible] विचारों की विभिन्न शाखाओं के मध्य धर्म-
[illegible] होता है कि रूढ़िवादी [illegible] मतभेद उत्पन्न न हो। उनका हित परस्पर
विज्ञान-सम्बन्धी कोई मनमुटाव मतभेद उत्पन्न न हो। अतः आत्म-संरक्षण का स्वभाव
साथ-साथ, मिल-जुलकर चलने में ही है। अतः [illegible] एकता के निमित्त परस्पर विभेद-
इनको विवश करता है कि वे सैद्धान्तिक एकता के निमित्त परस्पर विभेद-
कारी धार्मिक विश्वासों में भी समझौता बनाए रखें।

[illegible] के कुंवारेपन के समान ही जीसस को सूली-दण्ड दिया जाना भी
गरमागरम विवाद का विषय है। सूली-दण्ड के विषय में आस्कर वाइल्ड ने
एक स्मरणीय टिप्पणी की है : "चूंकि किसी उद्देश्य के निमित्त कोई व्यक्ति
अपने प्राण त्याग देता है, इसलिए वह उद्देश्य आवश्यकीय रूप से सच्चा,
सही हो कोई जरूरी नहीं है।" हम प्रायः ऐसे लोगों के बारे में सुनते हैं जो
अपने [illegible] कारणों, उद्देश्यों के लिए आग लगाकर अपने प्राण त्याग देते
हैं किन्तु शेष विश्व उन कारणों, उद्देश्यों को बेकार, रद्दी, निकम्मे उद्देश्य
समझता है। किन्तु यह बात तो उन लोगों से सम्बन्धित है जो किसी-न-
किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए सचमुच मरते हैं। कृस्ती-पंथ में तो यह
बिल्कुल अलग बात है। जीसस का तो जन्म ही नहीं हुआ, इसलिए वह मर
भी कैसे सकता था?

सारे विश्व के कृस्ती लोग भोले-भाले, निर्दोष रूप में मानते हैं कि
बाइबल उन लोगों के लिए ही जीसस द्वारा लिखकर छोड़ दिया गया धर्म-
ग्रन्थ है। किन्तु चूंकि कोई जीसस कभी पैदा हुआ ही नहीं था, इसलिए
वह कोई बाइबल छोड़कर जा ही नहीं सकता था।

'ईरेनिअस (ईसा-पश्चात् सन् १९०) से पूर्व धर्म-पुस्तकों (बाइबलों)
के हमारे उद्धरण अंश-अंश में और अ-यथार्थ हैं—वे स्वयंसिद्ध, प्रमाणित
[illegible] साक्ष्य नहीं हैं कि कोई भी धर्म-पुस्तक (बाइबल) आज वाले रूप-
आकार में विद्यमान थी।'[1] अर्थात् कृस्त के कल्पित जन्म के लगभग २००
वर्षों के बाद तक बाइबल ने कोई रूप-आकार धारण ही नहीं किया था।

१. अलबर्ट जे० एडमंड्स कृत 'बुद्धिस्ट एण्ड क्रिश्चियन गोस्पल्स', पृष्ठ ३।

इसे कौन-सी दैवी पवित्रता प्रदान की जा सकती है जब विभिन्न कालखण्डों
में, विभिन्न स्थानों पर रहनेवाले कई व्यक्तियों ने अपनी मनमौजी तरंगों
में इसका संकलन कर दिया प्रतीत होता है।

संयोगवश, कुरान का मूलोद्‌गम लगभग इसी प्रकार का है। "कुरान
के प्रकटन, रहस्योद्‌घाटन भी संक्षिप्त थोड़े-थोड़े समय बाद होते गए और
सबसे पहले इनको व्यावसायिक रूप से याद रखनेवालों द्वारा याद रखा
गया, कंठस्थ कर लिया गया। मुहम्मद के जीवनकाल में पदों को ताड़-
खजूर के पत्तों पर, पत्थरों पर तथा आसानी से मिल गई किसी भी सामग्री
पर लिख लिया गया था। उनका संग्रह दूसरे खलीफ़ा, खलीफ़ा उमर के
काल में संकलित किया गया था और एक आधिकारिक रूपान्तर उसके
परवर्ती ओथमन (उस्मान ?) खलीफ़ा के समय (६४४-६५८) में स्थापित
किया गया था।"[1]

चूंकि मुहम्मद पहाड़ों की गुफाओं में अकेला जा बैठता था और वह
लिखना जानता नहीं था, इसलिए उसे सिर्फ एक ही रास्ता खुला था कि वह
अल्लाह द्वारा उसे प्रकाश ज्ञान-स्वरूप दर्शाए गए लम्बे-लम्बे अवतरणों
को जैसा कहा जाता है, याद रखे जब तक कि उसे कोई ऐसा इच्छुक व
योग्य व्यक्ति न मिल जाए जो उससे श्रुति-लेख, इमला लेकर ईंट, पत्थर
या दीवार के टुकड़े पर लिख ले, अंकित कर ले। यदि इसी बीच अल्लाह ने
मुहम्मद के मन, मस्तिष्क में ज्ञान-प्रकाश स्वरूप दूसरा लम्बा अवतरण भी
दे दिया तो पहले अवतरण का क्या हुआ, हम नहीं जानते। प्रश्न तो यह
भी खड़ा होता है कि ऐसी विभिन्न सामग्री सब मिलाकर एक ही स्थान पर
कैसे एकत्र हो सकती थी या की जा सकती थी? फिर, वे शब्द भी वर्षा
और धूप-छाँव में वर्षों और दशकों तक कैसे सुरक्षित, स्पष्ट, सुपाठ्य बने,
बचे रहे? अन्य लोगों के प्रक्षिप्तांशों से कैसे इन्कार किया जा सकता था?
और चूंकि कुरान का संकलन और मानकीकरण मुहम्मद की मृत्यु के काफी
सालों बाद किया गया था, इसलिए स्पष्ट, प्रत्यक्ष है कि ईंट-पत्थरों के

१ 'दि कुरान'—अनुवाद एन० जे० दाऊद, चतुर्थ संस्करण, १९७४,
पृष्ठ १०।

अव्यवस्थित ढेरों से कुरान के संकलनकर्ताओं ने स्व-विवेकानुसार उन अंशों को चुन लिया जो उनको अपनी आवश्यकतानुसार ठीक जँचे या जो उन्होंने सोचा कि इस्लाम के अनुयायियों के लिए वांछनीय, आवश्यक होने चाहिए। ये ऐसे प्रश्न हैं जिनका विद्वानों को विभिन्न धर्मों, पंथों के दावों का परीक्षण करते समय उत्तर समाधान अवश्य प्रस्तुत करना चाहिए।

बाइबल के संकलन में भी हम देख चुके हैं कि इसमें वह शामिल नहीं है जो जीसस ने कहा, बल्कि वह सभी कुछ संकलित है जो पट्ट-शिष्यों, चमचों श्रद्धालुओं ने जीसस के मुख से कहलवाना चाहा है।

जीसस को सूली पर दंडित किए जाने का पूरा प्रश्न इतना झमेले का बना दिया गया है कि किसी को पता ही नहीं चलता कि "जीसस पर आरोप किस बात का था और उस पर मुकदमा किस प्रकार चलाया गया था।" आधुनिक बाइबल के विद्वानों ने दीर्घकाल से ही सन्देह किया था कि अनिच्छुक पीलट को यहूदी अधिकारियों द्वारा जीसस को मृत्युदण्ड दिए जाने के लिए बाध्य करने का पूर्ण विचार ही राजनीतिक कारणों से क्रूस्ती धर्म-पुस्तक (बाइबल) लेखकों द्वारा सत्य को नष्ट करने का प्रयास ही रहा था। फ्रांसीसी विद्वान् मौरिस गोगुअल ने पर्यवेक्षण किया है कि क्रिश्चियनों ने जिस व्यक्ति को संसार में ईश्वर का दूत और विश्व का संरक्षक कहकर प्रस्तुत किया उसे एक रोमन न्यायाधिकरण द्वारा मृत्युदण्ड दे दिया गया था, इस तथ्य ने रोमन-संसार में बाइबल (धर्मग्रन्थ) के प्रचार में कठिनाइयाँ उत्पन्न कर दी थीं क्योंकि इससे ऐसी भी धारणा बन सकती थी कि क्रूस्ती-आस्था में परिवर्तित होने के लिए एक विद्रोही का पक्ष लेना जरूरी था और इसका शाही अधिकारियों के विरुद्ध होना था। इसलिए क्रूस्ती लोग यह प्रमाणित सिद्ध करने के लिए आतुर थे कि जिस राज्यपाल ने जीसस को फाँसी लगाने की सजा घोषित की थी वह उसकी निर्दोषता स्वीकार्य कर चुका था और उसने सार्वजनिक रूप में घोषणा कर दी थी कि इसे तो अनचाहे [illegible] और यहूदी अधिकारियों के अदमनीय दबाव के कारण झुकने के लिए मजबूर होना पड़ा था।"[1]

1. इर्विंग वालेस रचित 'दि वर्ड', पृष्ठ १८९।

यह भी विश्वास किया जाता है कि रोम में अपनी धर्म-पुस्तिका लिखनेवाले मार्क ने यह भाव उजागर नहीं करना चाहा कि रोमन साम्राज्य के विरुद्ध राजद्रोह करने के लिए जीसस पर मुकदमा चलाया गया था। इसलिए मार्क ने ऐसा प्रतीत होने दिया है कि जीसस को न तो रोमन सैनिकों ने बंदी बनाया था, न ही किन्हीं राजनीतिक कारणों से किसी रोमन दंडाधिकारी ने उसे सजा दी थी, बल्कि जीसस को दोषी सिद्ध करना और उसे फाँसी देना तो यहूदी कानून के किसी गुप्त अस्पष्ट प्रावधान के अन्तर्गत किया गया था।"[1]

काफी लम्बे समय से, क्रूस्ती विद्वान् जीसस क्राइस्ट (कृष्ण) के अस्तित्व को उच्च स्वर में प्रमाणित करने के लिए ('स्रोत, मूल' शब्दार्थ-द्योतक जर्मन शब्द 'क्यूल्ले' से) 'क्यू' दस्तावेज की खोज में रहे हैं। किन्तु वे तो मृग-मरीचिका का पीछा ही करते रहे हैं। जब कोई जीसस ही नहीं था, तो उसका 'क्यू' दस्तावेज कैसे हो सकता था?

किन्तु यदि इस तथ्य, बात को असंदिग्ध रूप से, स्पष्ट तौर पर स्वीकार कर लिया जाए तो पोप व उसके समस्त धार्मिक उत्तराधिकारी तथा विश्व-भर के विश्वविद्यालयों और पुस्तकालयों के व गिरजाघर-संस्थापनाओं के सारे तथाकथित बाइबल-विशेषज्ञ अपने पदों से हाथ धो बैठेंगे। अतः 'क्यू' अभिलेख की खोज, तलाश उसी प्रकार अनन्त रूप में चली जा रही है जिस प्रकार काली कोठरी में काजल खोजना या अँधेरे, काले कमरे में काली बिल्ली को खोजने का असफल प्रयत्न करना प्रसिद्ध कहावत है।

सम्राट् (किंग) जेम्स (की) बाइबल के सम्बन्ध में, कहा जाता है कि सन् १६०१ में इंग्लैंड में धार्मिक असहमति, मतभेद काफी था और चर्च (गिरजाघर) के संघर्षशील तत्त्वों को एक मान्य, सामान्य उद्देश्य और परि-योजना प्रदान करने के उद्देश्य से सम्राट् जेम्स ने ऑक्सफोर्ड स्थित एक महाविद्यालय के अध्यक्ष डॉक्टर रैनोल्ड्स, विशुद्धिवादी का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और शुरू में ५४ गिरजाघर-परिचरों को आदेश दिया

1. इर्विंग वालेस रचित 'दि वर्ड', पृष्ठ १८९-१९०।

कि बाइबल का नया अनुवाद कर दें। सम्राट् जेम्स ने ४७ अनुवादकों का एक नाटकीय रूपी और कौतूहल उत्पन्न करने वाला समूह इस कार्य हेतु चयन कर दिया।' वे लोग धर्म-प्रचारक, आचार्य, भाषा-शास्त्री, विद्वान् थे। एक पन्द्रह भाषाएँ जानता था। एक अन्य ने यूनानी भाषा का ज्ञान महारानी एलिज़ाबेथ को दिया था उसे पढ़ाया था। एक अन्य व्यक्ति ६ वर्ष की आयु में ही बाइबल को हिब्रू भाषा में पढ़ सकने योग्य हो चुका था। एक ... ने शरणार्थी होकर आ गया था। एक अन्य शराबी, पियक्कड़ था। एक अन्य क्षयरोग से जीर्ण-शीर्ण, नित-प्रति घुलता हुआ भी अनुवाद का लेखन-कार्य कर रहा था। एक अन्य विधुर व्यक्ति, जो परियोजना की अवधि के बीच ही मर गया, अपने पीछे ग्यारह अनाथ, असहाय बच्चे छोड़ गया था।'' इनको छः समितियों में बाँट दिया गया था; दो समितियाँ ऑक्सफोर्ड में अनुवाद कर रही थीं, दो कैम्ब्रिज में और दो वैस्टमिन्स्टर में। ऑक्सफोर्ड स्थित ८ सदस्यीय समिति ने आधे नव-विधान (न्यू टेस्टामैंट) का कार्य किया और वैस्टमिन्स्टर स्थित सात सदस्यीय समिति ने दूसरे आधे भाग का काम किया।'''चूँकि हर समिति को हिब्रू और यूनानी भाषाओं से अंग्रेजी में बाइबल का अनुवाद करने के लिए उसका एक-एक भाग सौंपा हुआ था और समिति का हर सदस्य उक्त भाग के एक या अधिक अध्यायों के लिए उत्तरदायी था, इसलिए एक समिति के सदस्य अपना-अपना मसौदा अन्य सदस्यों को पढ़कर सुनाते थे, उनके सुझाव लेते थे, सुधार करते थे और जब उनका पूरा भाग (इस प्रकार) देख लिया जाता था, तब इसके पुनर्लेखन के लिए इसे एक भिन्न समिति के पास भेज दिया जाता था। दो वर्ष और नौ महीनों में इनका काम हो गया। फिर, १२ ... की एक नामिका (पैनल) ने प्रथम प्रारूप का पुनर्संशोधन और इसका संयोजन किया। अन्त में, एक व्यक्ति डॉक्टर माइल्स स्मिथ ने, जो एक कसाई का पुत्र था और जिसने उन्नीस वर्ष की आयु में ऑक्स-फोर्ड से स्नातक-उपाधि प्राप्त कर ली थी, अन्तिम पुनर्लेखन किया, जिसके ऊपर एक बिशप-धर्माध्यक्ष बिलसन, देखभाल कर रहा था। परिणाम ?

१ इर्विंग वालेस रचित 'दि वर्ड', पृष्ठ २३५।

सम्राट् जेम्स आधिकारिक संस्करण सन् १६११ में, शेक्सपियर की मृत्यु से पाँच वर्ष पूर्व प्रकाशित हुआ।''[1]

सिंहावलोकन करने पर यह विचित्र दिखता है कि बाइबल विषयक कार्य विभिन्न स्थानों पर अलग-अलग करते हुए भी इतने सारे विद्वान् यह नहीं जान पाए कि यह सब काल्पनिक, मनगढ़न्त किस्सा था। सम्भवतः वे इस निष्कर्ष पर पहुँचने से दूर रहे क्योंकि वे किसी निष्कर्ष पर पहुँचना नहीं चाहते थे। उनके प्रबल स्वार्थ अर्थात् उनकी आय, उनकी प्रसिद्धि, प्रतिष्ठा और पद—सभी फँसे थे।

जीसस को आमतौर पर जोसेफ का पुत्र कहा जाता है और फिर भी मैथ्यूज़ के सुसमाचार (बाइबल) में ये शब्द सर्वप्रथम मिलते हैं : ''डेविड के पुत्र, अब्राहम के पुत्र जीसस क्राइस्ट की पीढ़ी की पुस्तक।'' किन्तु लगभग ४० पंक्तियों के बाद (इसी पुस्तक में) कहा गया है कि अब्राहम और जीसस क्राइस्ट के बीच बयालीस (४२) पीढ़ियाँ गुजर चुकी थीं।

मैथ्यूज़ के अनुसार, बपतिस्मी जोहन समकालीन एक सन्त पुरुष था जिसने अत्यन्त अनिच्छा से जीसस का बपतिस्मा किया था क्योंकि वह जीसस को दोनों में से (अर्थात् अपने से) बड़ा समझता था। क्यों ? कोई नहीं जानता।

बाद में, ''जीसस ने सुना था कि जोहन को जेल में डाल दिया था।'' और फिर भी जीसस ने कुछ नहीं किया बल्कि गलीली चला गया। जोहन के बन्दी बनाए जाने का कारण और जीसस की अन्यमनस्कता का कोई भी कारण कहीं उल्लेख नहीं किया जाता। बाइबल में जैसी आपाधापी है, उसमें ऐसी अव्यवस्थित वृत्ति स्पष्ट है। न तो इसमें कोई संगत, तारतम्य-वाली कथा है और न ही कोई अकाट्य, स-निश्चय धर्मशास्त्र।

यह अवतरण ''तुम इस धरती का नमक हो ''किन्तु बाहर बिखेर दिए जाने और आदमियों के पैरों तले रौंदे जाने के लिए हो'' (५ : १३) हमको आज के साम्यवादी शब्दवादी जाल के समान भली प्रकार ज्ञात है जिसे वे धनिकों के विरुद्ध धनहीनों, गरीबों को भड़काने के अवसर पर बुनते हैं।

१ इर्विंग वालेस रचित 'दि वर्ड', पृष्ठ २७७-२७८।

यह वही भाषा है जिसे पॉल ने जीसस के नाम में प्रयोग में लिया था। अतः
हुआ यह है कि पॉल को ही पत्थरों से मार-मारकर हत्या की गई थी।
उसने कदाचित् सूली-दण्ड की पूर्व कल्पना कर ली थी क्योंकि जीसस को
ऐसे प्रस्तुत किया जाता है मानो वह सूली (क्रॉस) पर मृत्यु को प्राप्त हुआ
था।

यह सुझाव (कि) "अपने विरोधियों से जल्दी सहमत हो जाओ…
ऐसा न हो कि विरोधी तुमको न्यायाधीश को सौंप दें और न्यायाधीश
तुम्हें अधिकारी को दे दे और फिर तुम कारागार में डाल दिए जाओ"
(५ : २५) यद्यपि प्रकट रूप से जीसस द्वारा कहा गया है तथापि वास्तव
में यह पॉल का अपने अनुयायियों को बन्दी बनने से बचने का परामर्श
है।

पॉल का यह परामर्श कि 'तुम्हारे दाएँ गाल पर चाँटा मारनेवाले का
प्रतिरोध करने की बजाय उसके सामने बायाँ गाल कर दो।" विद्रोह के लिए
तैयार अपने अनुयायियों को पॉल का सावधानी-संकेत उसी प्रकार समझना
चाहिए जैसे महात्मा गांधी ने बीसवीं शताब्दी में किया था।

मैथ्यू ६ : १ "ध्यान रखो कि तुम किसी के भी सामने अपने (दान)
'आम्स' नहीं दोगे, वे बिल्कुल भी दिखने नहीं चाहिए।" और बाद में
"तुम्हारे बाएँ हाथ को भी मालूम नहीं पड़ना चाहिए कि तुम्हारा दायाँ
हाथ क्या करता है।" एक सांकेतिक संदेश है जिसमें 'आम्स' (दान-सूचक
शब्द) का 'आर्म्स' (हथियार शस्त्रास्त्रसूचक शब्द) पढ़ा जाना चाहिए।

गुप्त प्रार्थना की सावधानी (६ : ६) भी वह है जिसे स्थापित
प्राधिकरण के विरोध में प्रत्येक विरोधी, विद्रोही बरतता है।

"दो स्वामियों की सेवा आज्ञापालन कोई भी व्यक्ति नहीं कर
सकता।" (मैथ्यू ६ : २४) शब्दों का अर्थ उन लोगों के लिए है जो अपनी
निष्ठाओं में स्थिर नहीं थे और पॉल को सकोच में, अनिश्चित तथा सशर्त
समर्थन ही दे रहे थे। वह उनसे आशा करता था कि वे नौकरशाही
(अधिकारी-तन्त्र) का खुलकर उल्लंघन, विरोध करें और पॉल को अपना
एकमेव नेता स्वीकार, शिरोधार्य कर लें।

यही कारण है कि इसमें अगले वाक्य में ही उनको कहा जाता है:

"अपनी जीविका का कोई विचार न करो; कि तुम क्या खाओगे और क्या
पिओगे! चिड़ियों का शिकार देखो।…मैदान में कुमुदिनियों का विचार
करो। उनको भी जीवन प्राप्त होता है।" इसके द्वारा पॉल चाहते हैं
कि उनके अनुयायी लोग अपने भावी जीवन-योजना की परवाह किए
बिना ही और ईश्वर में यह विश्वास रखते हुए कि वह जिस-तिस
प्रकार उनकी देखभाल करेगा ही, सर्वसामान्य विद्रोह में सम्मिलित हो
जाएँ।

"तुम अपने भाई की आँख की कणिका क्यों देखते हो और अपनी आँख
में विद्यमान चमक, मुस्कराहट पर विचार नहीं करते।"—यह स्पष्टतः
पॉल द्वारा अपने अनुयायी को झिड़कना ही है जो दूसरे साथी की शिकायत
कर रहा था।

"तू ढोंगी, पाखण्डी, दम्भी! पहले अपनी मुस्कराहट दूर कर दे…जो
कुत्तों के लिए पवित्र है वह न दे और न ही अपने मोती शूकर के सामने
फेंक।" —यह रोष, क्रोध की भाषा है जो पॉल ने अपने अनुयायियों से
धर्मोपदेश के समय कही होगी, चाहे यह जीसस के मुख से कहलायी गई है
क्योंकि पॉल में ही जीसस का व्यक्तित्व प्रतिफलित हुआ है।

इस प्रकार सम्पूर्ण बाइबल, इसकी असंबद्ध खण्ड-खण्ड स्थिति की
जरूरत के अनुसार इसकी कोमल और कठोर भाषा का प्रयोग, प्रतिरोध या
समर्पण के लिए इसका औचित्य-प्रदर्शन और जीसस (अर्थात् पॉल) के
भाग्य के साथ ही अपने को सयोग्य कर लेने के लिए सभी अधिकारियों
और गैर-सरकारी व्यक्तियों से इसका अनुरोध केवल तभी बोधगम्य हो पाते
हैं जब बाइबल को पॉल द्वारा राजद्रोह का वर्णन माना जाए, जो पहले तो
जरूसलम और कोरिन्थ में कृष्ण मन्दिर-प्रबन्ध-व्यवस्था के विरुद्ध किया
गया और फिर दुबारा समकालीन यहूदी समाज के खिलाफ तथा बाद में
स्थानीय रोमन-प्रशासन के विरोध में किया गया था। जीसस के पात्र की
सृष्टि मात्र पॉल के व्यक्तित्व को प्रस्तुत करने के लिए की गई थी। बाइबल
की सही व्याख्या की दीर्घकाल से विलुप्त कुंजी, समाधान प्रस्तुत करने में
उपर्युक्त उदाहरण (प्रचुर मात्रा में) पर्याप्त होने चाहिए।

बाइबल में कोई आध्यात्मिक संदेश या धर्म-ज्ञान खोजने का प्रयास

करता अनावश्यक, व्यर्थ है। इसके आध्यात्मिक प्रच्छन्न भाव और धार्मिक भावनाएँ संयोगवश ही सामने आ जाते हैं क्योंकि पॉल अपने समय की धार्मिक संस्थापना के विरुद्ध और रोमन प्रान्तीय प्रशासन के विरुद्ध भी बगावती मुद्रा में था और उनको तो पॉल द्वारा नेतृत्व प्रदान किए गए राज्यविद्रोह के खिलाफ कठोर कार्रवाई करनी ही थी।

अध्याय ६

कृस्ती कामचलाऊ प्रबन्ध

जीसस के बारे में सभी कुछ अनिश्चित, अस्पष्ट, संदिग्ध है। उसकी जन्म की तारीख, जो २५ दिसम्बर घोषित की गई है, विश्व-भर के कृस्तियों द्वारा स्वयं ही स्वीकार की जाती है कि यह एक सुविधानुसार सोची-विचारी, मनगढ़न्त, कल्पित तारीख है।

इसी प्रकार यह धारणा भी, कि जीसस का जन्म ईसवी सन् के पहले दिन (जो २५ दिसम्बर होना चाहिए था) हुआ था, गलत है क्योंकि कृस्ती-शास्त्र के विद्वान् भी कहते हैं कि हो सकता है जीसस का जन्म इससे चार वर्ष पूर्व अर्थात् ईसा-पूर्व ४ में हुआ हो। किन्तु इस तारीख के बारे में भी वे पक्के, निश्चित नहीं हैं। इस प्रकार, न जीसस के जन्म-दिन का ही पता है और न ही उसके जन्म-वर्ष का। यदि जीसस जननायक होता, यहूदियों का सम्राट् और बहुसंख्यक अनुयायियोंवाला कोई चमत्कारी पुरुष रहा होता तथा वह व्यक्ति होता जिसके लिए पूर्व के ज्ञानियों ने जन्म लेने की पूर्व घोषणा पहले ही कर दी थी, तब उसके जन्म के बारे में इतनी अस्पष्टता, इतनी अनिश्चितता क्यों होती यदि वह कोई कल्पित व्यक्ति न था?

चूंकि जीसस कोई ऐतिहासिक व्यक्ति न था, इसलिए उसके जन्म की तारीख गढ़नी ही पड़ी, उसकी कल्पना करनी ही थी।

उन दिनों में, शनि ग्रह द्वारा शासित मकर राशि में जब सूर्य प्रवेश करता है तब शीत-सङ्क्रान्ति से मुक्ति, राहत की स्मृति में मनाया जानेवाला हिन्दू आनन्दोत्सव समारोह यूरोप में महान् प्रसन्नता, खुशियों का अवसर प्रदान करता था क्योंकि इससे बहुत अधिक ठंड से एक मांगलिक, हितकर परिवर्तन का श्रीगणेश होता था। भारतीय शब्दावली—बोलचाल में

२५ दिसम्बर को अभी भी 'बड़ा दिन' कहते हैं जो प्रथम लम्बे दिन का द्योतक है, यह भी इस तथ्य का संकेतक है कि २५ दिसम्बर जीसस का जन्मदिन नहीं है।

जीसस के जन्मदिन को उक्त समारोह, आनन्दोत्सव की पहचान प्रदान करने के लिए प्रारम्भिक कृस्ती नेताओं ने अपने झूठे, कल्पित नायक (जीसस) के जन्मदिन को एक महान् जनप्रिय समारोह, उत्सव के रूप में प्रच्छन्न रूप दे दिया। शुरू-शुरू के अवसरों पर वे विश्व के अन्य लोगों के साथ मौज-मस्ती तो करते रहे किन्तु मन में यह गुप्त संकोच भी संजोए रहे कि वे तो अपने विशेष प्रयोजन से ही इसको मना रहे थे। अगला पग, कदम २५ दिसम्बर के गैर-यहूदी, कृस्ती-पूर्व महत्त्व को समाप्त कर देना था ताकि इन समारोहों को मात्र कृस्ती-कर्म ही घोषित किया जा सके। किसी गैर-ईसाई उत्सव की मूल श्वास को चुराकर एक गैर-विद्यमान जीसस को प्राण प्रदान करने की यह अद्वितीय पूर्व-प्रक्रिया धार्मिक धाँसापट्टी का एक विरला, अति दुर्लभ अंग, उदाहरण ही था। उन लोगों ने इस उद्देश्य की प्राप्ति भी कर ली—सर्वप्रथम रोमन सम्राट् को कृस्त-पंथी बनाया और फिर गैर-ईसाईवाद को रोमन सैनिकों के पैरों तले रौंद डाला।

स्वयं क्रिसमस (क्राइस्ट मास) नाम भी संस्कृत, हिन्दू शब्द है। कुछ भी हो, यह किसी भी प्रकार २५ दिसम्बर का अभिव्यंजक नहीं है। न ही 'क्रिसमस' शब्द किसी प्रकार जीसस के जन्मदिन का द्योतन करता है। यूरोपीय भाषाओं के शब्दकोश व्युत्पत्ति-शास्त्र की दृष्टि से बिल्कुल गलत हैं जब वे क्रिसमस का विवरण स्पष्टीकरण क्राइस्ट के जन्म के उत्सव में देते हैं। वास्तव में तो यह बिल्कुल उलटा ही है। यह तो जीसस का जन्मदिन ही था जिसे छल-कपट करके शीत-प्रकोप से मुक्ति के समारोह, आनन्दोत्सव में जबर्दस्ती ठूँस दिया गया था। जब क्राइस्ट (क्रिस्त) कृष्ण का व्युत्पत्त्यात्मक विकल्प माना जाता है, तब कृष्ण मास शब्द को संस्कृत-यौगिक शब्द समझा जाना चाहिए जो अन्धतम (अँधेरे, कृष्ण) मास का द्योतक है क्योंकि 'कृष्ण' शब्द का अर्थ देव, भगवान् के साथ-साथ काला रंग भी है।

तथ्य रूप में तो जीसस और क्राइस्ट दो भिन्न-भिन्न, असंबद्ध शब्द हैं। यदि उसका नाम जीसस था, तो उसके जन्म का दिन जीसस के जन्मदिन

के रूप में ज्ञात, प्रसिद्ध होना चाहिए था। अन्य शब्द 'मास' का अर्थ जन्मदिन किस प्रकार ध्वनित होता है? एक अन्य प्रासंगिक प्रश्न यह है कि यदि उसका नाम जीसस था, तो कैसे, कब और क्योंकर क्राइस्ट (कृस्त) उपाधि, नाम को उसके साथ जोड़ दिया गया? इन सब बातों को शंकाओं को कभी किसी ने उठाया ही नहीं। हर बात को सहज स्वीकार कर लिया गया है और उसे नित्य की भाँति सही मानकर उसका अनुसरण किया गया है।

अब हम चूँकि इन प्रश्नों को लगभग पहली ही बार उठा रहे हैं इसलिए लोग इस प्रकार की जाँच-पड़ताल की उपयुक्तता को समझ रहे हैं।

जीसस नाम भी एक मौलिक शब्द नहीं है। जीसस 'ईशस' शब्द का अपभ्रंश रूप है जो प्राचीन युग में यूनानियों में एक अत्यन्त लोकप्रिय, सर्वसाधारण नाम रहा है। उक्त 'ईशस' नाम एक संस्कृत नाम है जिसका अर्थ 'ईश्वर' या 'देवता भगवान्' है। यही कारण है हिन्दुओं में 'रमेश' और 'उमेश' जैसे नाम होते हैं जिनमें 'एश' अन्त्य (प्रत्यय) ईशस (ईश) शब्द ही है। इसका अन्य संस्कृत समानक 'ईश्वर' शब्द है। प्राचीन यूनान में ईशस एक प्रसिद्ध न्यायविद् था जो एथेन्स में ईसा-पूर्व ३८७ सन् में रहा था।[1]

इसी प्रकार क्राइस्ट (कृस्त) शब्द भी, जैसा पहले स्पष्टीकरण किया जा चुका है, हिन्दू अवतार कृष्ण का अपभ्रंश रूप ही है। इसलिए संयुक्त शब्द ईशस क्राइस्ट अर्थात् जीसस क्राइस्ट का अर्थ ईशस (ईश, ईश्वर) कृष्ण ही है।

इसी तथ्य की पुष्टि जन्म के समय से भी होती है। जीसस का जन्म आजकल गिरजाघरों में रात्रि के ठीक १२ बजे घंटियों की झंकार के बीच मनाया जाता है। कृस्ती-गाथा में कहीं भी अर्धरात्रि की घड़ी को क्राइस्ट के जन्म के समय में अंकित नहीं किया गया है। उक्त समय तो वह निश्चित घड़ी है जिस क्षण कृस्ती-पूर्व युगों से, हजारों वर्षों से, विश्व-भर के हिन्दू लोग अपने घरों और मन्दिरों में घंटे-घड़ियाल (शंख-मजीरे) बजाकर

---

१ 'दि स्पीचेस ऑफ़ ईशस इन काज़ेस कनसर्निंग दि लॉ ऑफ़ सक्सेशन टु प्रापर्टी एंड एथेन्स, विद कमेन्टरी बाई विलियम जोन्स'।

भगवान् कृष्ण का जन्मोत्सव मनाते चले आ रहे हैं।

चूँकि कृस्ती-पन्थ के प्रारम्भिक नेता लोग अपने 'सिद्धान्तों' (?) का आधार कल्पित नायक की झूठी खूँटी पर आश्रित किए हुए थे, इसलिए उन लोगों को उस नायक के जन्म का दिन व समय भी 'कामचलाऊ प्रबन्ध' की दृष्टि से खोजने निकालने पड़ गए। यह कार्य उन लोगों ने एक काल्पनिक जीसस के जन्मदिन को अपने ही युग के एक अत्यन्त लोकप्रिय समारोह (अर्थात् [illegible]) के साथ जोड़कर अत्यन्त प्रवीणतापूर्वक कर दिया जिससे उस कार्य को एक विश्वव्यापी समारोह का आयोजन तैयार ही मिल गया।

अगला प्रश्न था वह घड़ी, समय सुनिश्चित करना जब जीसस जन्मा था। इस शुभअवसर के लिए आवश्यकता थी एक शुभ, पवित्र, मांगलिक दिव्य-परम्परा की। चूँकि भगवान् कृष्ण का जन्मोत्सव सम्पूर्ण प्राचीन यूरोप में रात्रि १२ बजे घंटियों की झंकार के मध्य मनाया जाता था, इसलिए प्रारम्भिक कृस्ती-नेता तुरन्त उक्त समय के लिए झपट पड़े। इस प्रकार जीसस के जन्म की तारीख व जन्म का समय 'कामचलाऊ प्रबन्ध' के रूप में नियत कर दिए गए। तथापि यह स्मरण रखना चाहिए कि 'जीसस क्राइस्ट (कृस्त)' शब्द 'ईशस कृष्ण' का लोकप्रिय अपभ्रंश उच्चारण है। जब इन सभी विवरणों को एकत्र कर दिया जाए तब यह अनुभूति हो जाएगी कि तथाकथित 'क्रिस-मस' समारोह कोई कृस्ती-समारोह न होकर एक हिन्दू कृष्ण-समारोह ही है।

इस प्रकार जीसस के जन्म का दिन, समय और वर्ष भी, सभी झूठे, काल्पनिक हैं। यह तो होना ही था। जब किसी अस्तित्वहीन व्यक्ति की कल्पना की जाए और उसे एक महामानव या पृथ्वी पर एक खुदा, वास्तविक भगवान के रूप में इतिहास पर थोपने का काम किया जाए, तो उसके जीवन और चरित्र के विवरण समकालीन घटनाओं से तो असंगत, अटपटे होंगे ही। और इसीलिए जीसस के जन्म और मृत्यु के दिनों, समय व वर्ष और स्थान तथा उसके तथाकथित जीवन के अन्य प्रसंगों में भी यही हुआ है।

चूँकि विश्व के कार्यकलापों में पश्चिम के प्रभुत्व के कारण आज

अधिकांश देशों में कृस्ती-संवत् (सन्) प्रचलित है, इसलिए सभी तारीखों का उल्लेख जीसस क्राइस्ट के संदर्भ में ही किया जाता है यथा—ईसा-पूर्व या ईसा-पश्चात् इतने वर्ष। इससे आम लोग सहज ही विश्वास करते हैं कि वर्तमान कृस्ती-पंचांग ने कृस्ती-युग की गणना उसी दिन और समय से ना प्रारम्भ की होगी जब क्राइस्ट का जन्म हुआ था (?)।

किन्तु चूँकि कोई क्राइस्ट था ही नहीं, इसलिए वह किसी दिन जन्मा पैदा हुआ हो ही नहीं सकता था। इस समस्या की खोजबीन पहले जिन विद्वानों ने की है, उनके प्रयत्नों से यही स्थिति सम्मुख उपस्थित हुई है।

इस प्रश्न पर विचार-विमर्श करते हुए विल डूरण्ट ने कहा है कि मैथ्यू और लूके, दोनों ही "जीसस का जन्म तब हुआ मानते हैं जब हेरोद जूडिया का सम्राट् था'''परिणामतः ईसा-पूर्व ३ में।"

किन्तु ईसा-पूर्व ३ में भी किस नियत समय/दिन जीसस का जन्म हुआ था, यह फिर भी अन-कहा, न-बताया रह गया है। यदि जीसस ऐसा दिव्य-शिशु रहा होता जिसका जन्म पहले ही बता दिया गया था और जिसको मिलने के लिए ज्योतिषी विशेष रूप से बेथलेहम गाँव गए थे, तो जीसस के जन्म की तारीख और समय/घड़ी के बारे में यह अनिश्चितता नहीं होनी चाहिए थी।

तथापि लूके जीसस को उस समय लगभग ३० वर्ष की उम्र का वर्णन करता है जब टाइबेरियस के पन्द्रहवें वर्ष में अर्थात् ईसा-पश्चात् २८-२९ सन् में जोह्न ने उसका बपतिस्मा किया था।

इस कथन के अनुसार तो जीसस ईसा-पूर्व सन् २ व १ के मध्य जन्म लेने चाहिए थे, ऐसा विल डूरण्ट का कहना है।[1] इसका मतलब यह कहने के बराबर है कि क्राइस्ट का जन्म कृस्ती-युग प्रारम्भ होने से पहले ही हो गया था, जो एक बेहूदगी, अटपटी बात है।

इस प्रश्न पर आगे विचार करते हुए विल डूरण्ट ने कहा है 'हमें उसके जन्मदिन की तारीख की—विशिष्ट तिथि की कोई जानकारी नहीं

---

१. 'सभ्यता की कहानी', खण्ड ३, पृष्ठ ५५७।

२. वही, पृष्ठ ५५८।

है। सिकन्दरिया के क्लीमेंट (लगभग २०० ईसवी सन्) ने इस दिन के बारे में भिन्न-भिन्न मत अंकित किए हैं—कुछ तिथि-क्रम लेखकों ने जन्म १९ अप्रैल को, कुछ ने २० मई को बताया है। उसने स्वयं ईसा-पूर्व ३ सन् में १७ नवम्बर का दिन लिखा है।"[1]

यही कारण है कि क्रुस्ती-पंथ के प्रारम्भिक दिनों में क्राइस्ट का जन्म-दिन आयोजित करने के बारे में एकरूपता नहीं थी। ईसा-पश्चात् दूसरी शताब्दी तक पूर्वी क्रुस्त-पंथी क्राइस्ट का जन्मदिन ६ जनवरी को ही मनाते रहे। ईसवी सन् ३५१ में ही रोम के गिरजाघरों सहित कुछ पश्चिमी चर्चों ने २५ दिसम्बर को जन्मदिन मनाना शुरू कर दिया जिसका आकलन शास्त्रों में ... मकर संक्रांति के रूप में कर लिया गया था और इसलिए, जैसा आधुनिक विद्वानों ने प्रचलित रूप में समझा है, सूर्य-पूजा-पद्धति के एक महत्त्वपूर्ण उत्सव के रूप में माना जाता था। उन्होंने उक्त पद्धति का नाम मित्र-धर्म (मित्र-पूजा) घोषित किया है। इस दीर्घकालीन धारणा में कुछ सुधार, संशोधन जरूरी है। मित्र (मिथ्र भी उच्चारण करते हैं) संस्कृत में सूर्य के अनेक नामों में से एक है। सूर्य की नित्य वंदना, उपासना करने-वाले हिन्दू क्रमशः १२ नाम मंत्रों का उच्चारण करते हैं जिनमें से पहला नाम मित्र (मित्र) ही है। इसलिए मित्र-धर्म, मित्रोपासना कोई अलग पंथ, पूजा-पद्धति न होकर सूर्य-पूजा की हिन्दू-परम्परा ही है।

हिन्दू व्यक्ति ठीक ही देव को भिन्न-भिन्न रूपों में देखता है। जिस प्रकार एक पुरुष अपनी पत्नी का पति होता है, अपने बच्चों का पिता होता है, अपने अधीनस्थों का अधिकारी और अपने अधिकारियों का अधीनस्थ होता है, उसी प्रकार एक हिन्दू भी देवता के दर्शन उसके सृजनात्मक, पालक और विध्वंसक/विनाशक रूपों में करता है। अतः चाहे वह सूर्य-पूजा, सूर्योपासना हो या ब्रह्मा, कृष्ण, हनुमान, विष्णु, गणेश, दुर्गा, शिव या अन्य किसी की भी पूजा-आराधना, ये भिन्न पंथ न होकर सब हिन्दू-धर्म, हिन्दू-उपासना-पद्धति ही है जो प्रत्येक व्यक्ति को पूर्ण स्वतन्त्रता देती है कि वह किसी भी समय किसी भी आकार, रूप में

१. 'सभ्यता की कहानी', खण्ड ३, पृष्ठ ५५८।

देवाराधन कर सकता है। यही हिन्दू-पूजा-पद्धति थी जो प्राचीन विश्व में सर्वत्र प्रचलित थी। अतः हमें जब कभी प्राचीन विश्व में ऐसे देवताओं की पूजा-पद्धतियों का ज्ञान हो, तब उन्हें पृथक् पंथ या पूजा-पद्धति न मानकर हिन्दू-धर्म के व्यापक प्रचार-प्रसार व प्रचलन का प्रमाण ही स्वीकार करना चाहिए।

२५ दिसम्बर का मकर संक्रांति का दक्षिण अयनान्त समारोह लैटिन भाषा में 'नटालिस इनविक्टी सेलिस' अर्थात् अपराजेय सूर्य का जन्मदिन है। इसे दक्षता, निपुणता, चतुराई से (ईश के) पुत्र के जन्मदिन में बदल दिया गया था। यह तो केवल छल-कपट, धोखेबाजी थी। मतभेद बने रहे, चलते रहे। पूर्वी चर्च कुछ समय तक ६ जनवरी की तारीख ही जन्मदिन के रूप में मनाते रहे और अपने पश्चिमी गिरजाघरों पर यह दोषारोपण करते रहे कि वे मूर्तिपूजा की अपनी सूर्योपासना-परम्परा जारी रखे हुए थे। इस संकेत और पारस्परिक खींचातानी से ही यह स्पष्ट होता है कि २५ दिसम्बर वास्तव में दक्षिण अयनान्त समारोह, आनन्दोत्सव है, न कि जीसस का जन्मदिन (और उसका उत्सव)।

जब एक ही (कल्पित) घटना अर्थात् क्राइस्ट के जन्म के दो भिन्न-भिन्न समारोह—१२ दिनों के अन्तर से—एक आलोचक और शंकालु विश्व की नजरों में हास्यास्पद दिखाई देने शुरू हो गए, तब एकता द्वारा अपना अस्तित्व बनाए रखने की सहज, प्राकृतिक इच्छाशक्ति ने प्रारम्भिक क्रुस्ती नेताओं को किसी भी मूल्य पर समझौता कर लेने और आचरण, व्यवहार की एकता प्राप्त कर लेने के लिए बाध्य कर दिया। तदनुसार पूर्वी गिरजाघरों ने समर्पण कर दिया, घुटने टेक दिए और जिस २५ दिसम्बर को मूर्तिपूजक परम्परा, पद्धति का जारी रखना मानकर उसका पूरी तरह विरोध करते रहे थे, उसी को उन्होंने (अजन्मे) क्राइस्ट का जन्मदिन स्वीकार कर लिया।

स्वयं ६ जनवरी की तारीख का भी हिन्दू-महत्त्व है। रूढ़िवादी, पुरातनपंथी हिन्दू-परम्परा, पद्धति के अनुसार नए जन्मे शिशु—जातक—का नामकरण जन्म के १२वें दिन होता है। १२वें दिन नामकरण-समारोह एक सुपरिष्कृत कर्मकांड और विशाल समारोह होता है। अतः २५ दिसम्बर

और ६ जनवरी—दोनों ही प्राचीन हिन्दू-समारोह हैं जिन्हें यूरोप और अन्य कृस्ती क्षेत्रों में कृस्ती रूप आवरण दे दिया गया है।

इसी प्रकार जीसस के जन्म-स्थान के बारे में भी मनगढ़न्त, काल्पनिक व्यवस्था की हुई है। यह तो सहज, स्वाभाविक ही था क्योंकि (जब) जीसस कोई ऐतिहासिक व्यक्ति है ही नहीं और इसलिए वह कभी पैदा हुआ ही नहीं था। किन्तु कृस्ती-पंथ नामक एक संगठन का एक बार रूप स्थापित हो जाने पर इसके नेताओं को एक कल्पित जीसस के चरित में रिक्त स्थानों को तो भरना ही था। ऐसी ही एक आवश्यकता उसके जन्म-स्थान (?) को पहचानने, बताने की थी।

इसके लिए भी वही सुपरिचित विधि, प्रणाली अपनाई गई थी, उसी का अनुसरण किया गया था—अर्थात् हिन्दू लोग जहाँ एक कृष्ण-मन्दिर में कृष्ण का जन्म-समारोह मनाते थे उसी स्थान को कृष्ण अर्थात् क्राइस्ट (कृस्त) का जन्मस्थान मान लिया, पहचान लिया और घोषित कर दिया गया था।

इस सम्बन्ध में विल ड्यूरण्ट का कहना है कि "मैथ्यू और लूक, दोनों सुसमाचार लेखकों ने क्राइस्ट के जन्म का स्थान जेरुसलम के दक्षिण में पाँच मील दूर स्थित बेथलेहम में बताया है। वे हमको बताते हैं कि यहाँ से परिवार गलिली में नैज़रथ नामक स्थान पर चला गया। (किन्तु अन्य सुसमाचार मार्क बेथलेहम का कोई उल्लेख नहीं करता और क्राइस्ट का उल्लेख 'नैज़रथ का जीसस' मात्र के रूप में ही कर देता है।" कृष्ण अर्थात् क्राइस्ट (कृस्त) का जन्मस्थान बेथलेहम या नज़रथ होने के बारे में विभ्रम इस तथ्य के कारण उत्पन्न होता है कि उक्त दोनों ही स्थानों पर कृष्ण मन्दिर थे। जहाँ कहीं हिन्दू पद्धति के अनुसार कृष्ण की पूजा होती है, वहाँ उन सभी घरों और मन्दिरों में कृष्ण का जन्म अर्ध-रात्रि को ही घंटे-घड़ियालों की झंकार में समारोहपूर्वक मनाया जाता है। इसीलिए, बेथलेहम और नज़रथ दोनों ही स्थानों पर कृष्ण के जन्म-समारोह आयोजित होते थे।

जीसस के माता-पिता ने उसे अत्यन्त लोकप्रिय नाम दिया 'येशवा' जो हमारा 'जोशुआ' है जिसका अर्थ है 'याहवेह की मदद'। यूनानियों ने इसे 'ईसस' और रोमनों ने 'जीसस' बना दिया।"[1]

आधुनिक युग में ईसाई-धर्म (कृस्ती-पंथ) को जिस प्रकार समझा जाता है उस कृस्ती-धर्म से उनके धर्मशास्त्र 'प्राचीन विधान' (ओल्ड टेस्टामेंट) का, तथ्यतः, कोई भी लेना-देना, सम्बन्ध नहीं है। और फिर भी, 'प्राचीन विधान' को बाइबल का एक अनिवार्यरूपेण आवश्यक भाग, हिस्सा समझा जाता है। प्रत्यक्ष कारण यह है कि कृस्ती-पंथ (क्रिश्चियनिटी) केवल कृष्ण-नीति ही है। चूँकि 'जुदाइज़्म' अर्थात् 'यदुइज़्म' और 'क्रिश्चियनिटी' अर्थात् 'कृष्ण-नीति' दोनों ही कृष्ण भगवान् के चारों ओर केन्द्रित थे, इसलिए तथाकथित कृस्तपंथियों को अपने धर्मग्रन्थ के रूप में 'प्राचीन विधान' को स्वीकार करने में कोई भी संकोच, हिचकिचाहट लेशमात्र भी न हुई।

स्वयं 'प्राचीन विधान' भी भगवान् कृष्ण के विश्वविख्यात प्रवचन, हिन्दुओं द्वारा 'भगवद्गीता' के रूप में संरक्षित अद्भुत धर्मग्रन्थ का ही एक परवर्ती दूरस्थ रूपान्तर है—यह तथ्य दोनों में एकसमान 'भविष्य-वाणी' से स्पष्ट, प्रत्यक्ष हो जाता है।

यह सर्वविदित है कि 'प्राचीन विधान' में वचन दिया गया है कि एक संरक्षक, पालनकर्ता अर्थात् सभी के रक्षक के रूप में एक दिव्य अवतार होगा। उसी भविष्यवाणी को संकेत मानकर तथाकथित कृस्तियों ने कहा था कि जीसस सभी के संरक्षक, पालनकर्ता के रूप में प्रकट, आविर्भूत हुआ था।

'प्राचीन विधान' की उक्त भविष्यवाणी भगवान् कृष्ण की सुप्रसिद्ध 'भगवद्गीता' के निम्नलिखित आश्वासन, वचन का हिब्रू भावान्तरित वाक्यांश होने के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है: "जब-जब पृथ्वी पर अव्यवस्था, कु-शासन और अत्याचार होते हैं, मैं सज्जनों की रक्षा-निमित्त और विधि व व्यवस्था की स्थापना हेतु पुनः अवतरित होता हूँ।"[2]

संरक्षक, पालनकर्ता का समानार्थक अंग्रेजी शब्द 'सेवियर' भी संस्कृत

---

१. 'सभ्यता की कहानी', खण्ड ३, पृष्ठ ५५८।

२. श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय ४, श्लोक ७-८।

शब्द 'ईश्वर' अर्थात् 'प्रभु ईश्वर' है।

यह इतिहास की विचित्र विडम्बना है कि यद्यपि कभी कोई जीसस जन्मा ही नहीं था तथापि एक कृष्ण-पंथ अर्थात् जुडाइज्म (यदुवाद) भविष्यवाणी की चर्चा करते हुए एक अन्य दूसरे, कृष्ण-पंथ अर्थात् क्रिश्चियनिटी को जन्म दे बैठा और दोनों ने ही, पृथक्-पृथक् तथा संयुक्त रूप से भी आधुनिक युग में अपने-आपको उस हिन्दू कृष्ण-उपासना से बिल्कुल भिन्न समझ लिया है जो आज भी भारत में प्रचलित है, आज भी आचरण अभ्यास में आती है।

तथाकथित यहूदी और ईसाई लोग भारत में प्रचलित कृष्ण-पूजा से संकेत मार्गदर्शन ग्रहण कर अपनी प्राचीन कृष्ण-परम्परा पुनः प्रारम्भ कर सकते हैं। मुस्लिम लोग भी यह मनोभाव धारण कर ठीक ही करेंगे कि 'इस्लाम' शब्द (ईश + आलयम्) भी एक कृष्ण मन्दिर का द्योतक ही है।

स्वर्गीय भक्ति-वेदान्त प्रभुपाद द्वारा संस्थापित 'कृष्ण-चैतन्य की अन्तर्राष्ट्रीय संस्था (इसकोन) ने गैर-हिन्दू विश्व में कृष्ण-पूजा, आराधना पुनः प्रारम्भ करने की दिशा में ईश्वरीय वचन पूर्ण करने के लिए उसी की प्रेरणा पर प्रथम पग उठाया है।

कृष्ण-चैतन्य आन्दोलन 'इसकोन' इतिहास पुनः दोहराने का एक विशिष्ट उदाहरण है यद्यपि सर्वसाधारण व्यक्ति से लेकर विद्वानों सहित सामान्य समाज ही अत्यन्त आनन्दमय रूप से इस तथ्य से अनभिज्ञ है कि जुडाइज्म (यहूदी-धर्म), इस्लाम और क्रिश्चियनिटी अभी भी अपने अन्दर अपनी प्राचीन कृष्ण-उपासना के बीज सँजोए हुए हैं।

अध्याय ७

संस्कृत शब्दावली

क्राइस्ट (कृस्त)-कथा से सम्बन्धित सभी नाम हिन्दू, संस्कृत नाम हैं जो भगवान् कृष्ण से सम्बन्धित, जुड़े हुए हैं।

'बेथलेहम' का नाम परखें। यह 'वत्सलधाम' है। संस्कृत में 'वत्सल' 'प्रिय' (शिशु) का द्योतक शब्द है। दूसरे अक्षर 'धाम' का अर्थ है 'घर'। अतः स्पष्ट है कि वत्सलधाम उपनाम बेथलेहम एक नगरी थी जो बाल भगवान् कृष्ण के मन्दिर के चारों ओर बसी हुई थी। संस्कृत का 'व' अन्य भाषाओं में बहुधा 'ब' में बदल जाता है। इसलिए 'वत्सलधाम' का उच्चारण 'बत्सलधाम' होने लगा जो बाद में 'बेथलेहम' के रूप में उच्चरित हो बदल गया।

बेथलेहम एक कृष्ण मन्दिर और नगरी का नाम होने के कारण वहाँ पर हिन्दू-पंचांग के अनुसार अगस्त में मध्यरात्रि के समय ही कृष्ण-जन्म समारोहपूर्वक आयोजित किया जाता था।

जरुस्लम भी एक संस्कृत शब्द है। इसका मूल नाम 'यदुस्लयम' है। 'जुडेका ज्ञानकोश' का कहना है कि "जरुस्लम सम्भवतः 'रुशलीमम' था। १४वीं शताब्दी ईसा-पूर्व युग के तेल-एल-अमरना पत्रों में यह 'उरुसली' लिखा है और असीरियन (जैसे सेन्नाखरीब शिलालेख) में उरसलीम्मू। बाइबल में इसकी वर्तनी प्रायः यरूशलम और कई बार यरुश्लिम होती है, जो उच्चारण में यरूशलयिम है। सलेम नगर स्पष्टतः जरुस्लम है। यूनानी हीरोसोलिमा 'पवित्रता' प्रतिबिम्बित करता है (हीरोस का अर्थ पवित्र, शुभ, सत् है)। ऐसा प्रतीत होता है कि मूल नाम इरुसलम था और इसमें प्रयुक्त दोनों शब्दों का मिलाकर अर्थ है 'स्थापना करना' ('यगाह'), और पश्चिमी शामी भगवान् का नाम शुलमन्न या शल्नीम।

भगवान को ही नगर का [illegible] मान लिया गया होगा जिसकी प्रतिष्ठा में एक यज्ञ [illegible], सर्व-[illegible] था। काव्यात्मक शब्द मिद्राशिक—जरुस्लम नाम का 'शान्ति की स्थापना' के रूप में स्पष्टीकरण नगर के काव्यात्मक [illegible] से जुड़ा हुआ है।"[1]

हीरोसोलिमा संस्कृत-यौगिक शब्द है हरि-ईश-आलयम् अर्थात् भगवान् हरि अर्थात् कृष्ण का देवालय। यह प्रदर्शित करता है कि महान् [illegible]-समीक्षक भी कितनी भारी बड़ी गलती पर हैं।

नगरों के नामों में 'अम्' अन्त्य अक्षर भी हिन्दू, संस्कृत शैली ही है। संस्कृत भाषा में नगर नपुंसक लिंग होने के कारण हिन्दू शहरों को नगरम्, [illegible] रायवरम् आदि पुकारते थे। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि जरुस्लम अर्थात् यरुस्लयम् संस्कृत में अन्त्य शब्द ही है।

[illegible] यह धारणा बनाने में तो सही है कि नगर में नगर-[illegible] (देव ईश्वर) का एक गर्भ-मन्दिर था। किन्तु हम आग्रहपूर्वक यह [illegible] कि [illegible] शब्द का अर्थ 'शान्ति' लगाने में यहूदी और यूनानी विद्वान् पूरी तरह गलती पर हैं। इसी प्रकार मुस्लिम विद्वान् भी 'इसलाम' शब्द का अर्थ 'शान्ति' या 'समर्पण' करने में पूरी तरह गलती पर हैं। यहाँ, हिन्दू-[illegible] संस्कृत-परम्परा अद्वितीय कुंजी प्रस्तुत करती है।

नगर का मूल संस्कृत नाम है यदु-ईश-आलयम्। यदु भगवान् कृष्ण के वंश का नाम है। [illegible] संस्कृत के 'ड'/'द' अक्षर की वर्तनी पश्चिम देशों में [illegible] है। (उदाहरण के लिए, महिलाओं द्वारा पहनावा—वस्त्र का हिन्दू शब्द साड़ी पश्चिम में 'सारी' लिखा जाता है) 'यदु' शब्द 'यरु' बन गया। ईश का अर्थ ईश्वर या भगवान् है जैसा पहले ही स्पष्टीकरण दिया जा चुका है। इस संस्कृत-शब्द ईलम की वर्तनी भी यूनानी विद्वानों ने इसी प्रकार [illegible] कर दी है। अन्त्य-अक्षर 'आलयम्'/'अलयम्' का अर्थ ऐसे [illegible] या निवासस्थान (घर) होता है, यथा— देव-आलयम् (अर्थात् ईश्वर का निवासस्थान) और ग्रन्थ-आलयम् (पुस्तकों का घर)। [illegible] शब्द हिमालयम् (हिम-स्थल) भी इसी संस्कृत-सूत्र का शब्द ही है।

१. 'एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका', खंड ६, १३८६।

अतः यरुस्लयम (या यरुस्लम) शब्द यदु-वंश, कुल के स्वामी, प्रभु, भगवान् कृष्ण का आवास-स्थान है।

चूँकि बेथलेहम और जरुस्लम कृष्ण मन्दिर के चारों ओर ही स्थापित हुए, बसे थे और शलोम व इस्लाम यरुस्लम शब्द के ही विकृत, खण्डित रूप हैं इसलिए स्पष्ट/प्रत्यक्ष है कि आज अपने-आपको यहूदी, मुस्लिम और ईसाई कहने/कहलवानेवाले सभी लोग भी भगवान् कृष्ण की आराधना, पूजा-अर्चना करनेवालों के वंशज उन्हीं की सन्तानें हैं।

हजारों वर्ष पहले यहूदी लोग बाँसुरी बजाते, बछड़े पर झुके हुए चरती हुई गौओं की देखभाल करनेवाले के रूप में वृक्ष के नीचे खड़े हुए भगवान् कृष्ण की पूजा-आराधना करते थे। यहूदी लोग उसी के साथ-साथ (अपनी श्रद्धानुसार) हिन्दू-परम्परा के अनुसार अन्य देवताओं की पूजा भी करते थे। किन्तु रेगिस्तानों में भटकते हुए हजारों वर्षों के अपने श्रमसाध्य कठिन दिनों की अवधि में विभिन्न देवगणों की पूजा-पद्धति, नित्याभ्यास न उन लोगों को शनैः-शनैः विभिन्न पंथों टुकड़ों में विभाजित करना बाँटना शुरू कर दिया। उनके नेताओं को आभास हो गया कि ऐसे संकेतों से वे असंगठित हो जाएँगे तथा उन पर उनके शत्रुओं के आक्रमण आसानी से हो सकेंगे। अतः आपात्-पग के उपाय-स्वरूप यहूदी नेताओं ने अपने सारे समाज को प्रत्येक मूर्ति का परित्याग कर देने के लिए बाध्य कर दिया। परिणामस्वरूप यहूदी-इतिहास के लेखकों को जो कुछ स्मरण रह सका और उन्होंने अंकित किया वह यह है कि जरुस्लम के मन्दिर में निश्चित रूप से ही एक स्वर्णिम-वत्स की प्रतिमा, मूर्ति प्रतिष्ठित थी। उसके पास ही कौन-सी देव-प्रतिमा खड़ी थी, उनको स्मरण नहीं प्रतीत होता है। किन्तु अभी तक जिन साक्ष्यों की चर्चा की गई है उनके अनुसार यह लगभग निश्चित, पक्का ही है कि वह देवमूर्ति भगवान् कृष्ण की ही थी। वह वत्स, बछड़ा, स्वर्ण का था क्योंकि भगवान् कृष्ण से सम्बन्धित प्रत्येक वस्तु, हिन्दू-परम्परा में स्वर्ण की ही होती है। भगवान् कृष्ण की राजधानी द्वारका भी स्वर्णिम नगरी ही थी। भगवान् कृष्ण स्वयं स्वर्ण-मुकुट और अन्य कई आभूषण शरीरांगों पर धारण करते थे।

नन्द नामक पशुपालक द्वारा पाल-पोसकर बड़े किए जाने के कारण

[illegible] की गौओं की देखभाल किया करते थे। अतः बालक कृष्ण अपने सरलता से गौओं को चराते, उनकी देखभाल करते ही सदैव दिखाया जाता है। गाय के लिए संस्कृत शब्द है 'गौ' और गाय-फार्म या पशु, ढोर-[illegible] को संस्कृत में 'गावानम' कहते हैं। गलीली (गालिली) शब्द संस्कृत के गावानम शब्द का अपभ्रंश रूप ही है।

इसी प्रकार, बना हुआ नजरथ शब्द भी संस्कृत का नन्दरथ शब्द है। संस्कृत का द अक्षर बहुधा अन्य भाषाओं में 'ज' में बदल जाता है। उदाहरण के लिए संस्कृत का 'ध्यान बुद्ध-धर्म' को चीनी लोग 'झ्यान बुद्ध-धर्म' और जापानी लोग 'झेन बुद्ध-धर्म' उच्चारित करते थे। अतः नजरथ शब्द नन्दरथ है जिसका शाब्दिक अर्थ 'नन्द का रथ' है। अतः प्रत्यक्षतः नजरथ वह स्थान है जहाँ नन्द के रथ खड़े किए जाते, मरम्मत किए जाते और निर्माण किए जाते थे। इस प्रकार जरुस्लम के चारों ओर के स्थान कृष्ण [illegible] में जुड़ गए क्योंकि जरुस्लम स्वयं ही कृष्णोपासना का एक प्रमुख केन्द्र था।

'जूडिया' और 'जूडाइज़्म' शब्द क्रमशः यदुआ और यदुइज्म व्युत्पन्न हैं। संस्कृत भाषा का 'य' अन्य भाषाओं में 'ज' में परिवर्तित हो जाता है जैसे यदुनाथ को जदूनाथ और यशवन्त को जसवन्त लिखते हैं—उनकी ऐसी [illegible] है। यदुआ और यदुइज्म क्रमशः यदु लोगों का क्षेत्र और उनका (यादवों का) कुल, धर्म सुचारित करते हैं।

जिआनिज्म भी यहूदी-संस्कृति के लिए एक अन्य नाम है चाहे आज इसे एक अत्यन्त सीमित रूप में मात्र एक खास पंथ के लिए प्रयोग में लिया जा रहा है। [illegible] स्वीकार करता है कि 'जिओन' शब्द का अर्थ ज्ञात नहीं है।[1]

[illegible] और यहूदियों का तथा इनकी संस्कृति के विद्वानों को निरुत्तर [illegible] किया गया कि उन्होंने कभी संस्कृत भाषा में पैठ करने का विचार ही नहीं किया। इस विषय के लिए यह घोषणा करना चाहते हैं कि, "संस्कृत भाषा और हिन्दू-धर्म हिन्दु-वाद के पास अन्य सभी तालों को समझने के लिए

1. [illegible] जुडेका', खण्ड ८, पृष्ठ १३७१।

कुंजियाँ हैं। संस्कृत और हिन्दू-परम्पराओं की उपेक्षा, अवहेलना करनेवाले दिग्भ्रमित हो चक्कर में फँस जाते हैं, अपने प्रश्नों का समाधानकारक उत्तर, स्पष्टीकरण प्राप्त करने में समय व्यर्थ गँवा देते हैं और कोई ऊलजलूल, बेतुका, असम्बद्ध, असन्तोषकारी स्पष्टीकरण का सुझाव प्रस्तुत करते हुए अपनी कोशिशें समाप्त कर देते हैं।

यही स्थिति 'जिओन' शब्द के साथ भी हुई है। संस्कृत का 'द' अन्य भाषाओं में 'ज' में बदल जाने के पूर्व प्रतिपादित नियम को लागू करने पर अत्यन्त सहज रूप में ही यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रचलित 'जिओन' शब्द संस्कृत का 'देवन' है। अतः देव-वाद अर्थात् 'जिओनिज्म' देव-धर्म या ईश्वर में विश्वास अर्थात् ईश्वर का पथ है।

जरुस्लम की दक्षिण प्राचीर में जिओन शिखर (माउंट जिओन) पर 'जिओन द्वार' (देवन द्वार) में मेहराब (तोरण) के ऊपर एक प्रस्तर कमल-चक्र बना हुआ है।

इसी प्रकार ऊफ़ा द्वार शिलालेख में इसके ऊपर तीन पत्थरों के कमल-चक्र हैं। कमल एक सुविख्यात शुभ, पवित्र, मांगलिक हिन्दू चिह्न, लक्षण है। हिन्दू लोग व्यक्ति के हाथों, पैरों, आँखों और मुखाकृति को प्रतिष्ठा, सम्मान के रूप में 'कमल' शब्द से सम्बोधित करते हैं (जैसे—कर-कमल, चरण-कमल, कमल-नयन, मुख-कमल आदि)। सभी हिन्दू देवगण कमल पर ही आसीन हैं। हिन्दू योग-साधना में योगी लोग भी कमल (पद्म) पर विराजमान, उसी आसन में बैठे होते हैं। अतः जरुस्लम के द्वारों पर कमल-चिह्न घोषणा करते हैं कि यह एक हिन्दू नगर था। ऐसे ही प्रस्तर कमल-चिह्न आज भी भारत में हिन्दुओं के लगभग सभी दुर्गों, किलों व मन्दिरों के तोरणयुक्त प्रवेश द्वारों पर अंकित, निर्मित देखे जा सकते हैं।

जुडेका विश्व ज्ञानकोश घोषित करता है कि, "पैगम्बरों और बाद में हिब्रू-कवियों ने प्रशंसा और श्रद्धा के अनेक नाम जरुस्लम को प्रदान किए हैं, यथा—'नगर', 'ईश्वर की नगरी', 'पावन नगरी', 'न्याय-नगर', 'स्वामी-निष्ठ, भक्त नगर', 'शान्ति नगर', 'सुन्दर नगर' आदि। जरुस्लम के साथ भगवान् कृष्ण के साहचर्य के कारण ही ये सभी नाम उद्भूत हैं। इसे 'ईश्वर-नगरी' और 'पावन नगरी' की ख्याति प्राप्त थी क्योंकि इसकी स्थापना

भगवान् कृष्ण के नाम पर की गई थी। इसका नाम 'न्याय नगर' होने का कारण यह था कि भगवान् सब लोगों को स्मरण दिलाते ही रहे थे कि उनको पुरस्कार या दण्ड, सुख या दुःख उनके अपने कर्मों के अनुसार ही प्राप्त होंगे। जरुसलम एक 'शान्ति नगर' के रूप में ज्ञात इस कारण था कि प्रसिद्ध ही है कि भगवान् कृष्ण ने 'महाभारत-युद्ध' रोकने/टालने के लिए और कौरव-पाण्डव भाइयों को शान्तिपूर्वक जीवन व्यतीत करने के लिए अपने पूरे-पूरे प्रयास किए थे।

जरुसलम की स्थापना अति विशाल विश्वविख्यात कृष्ण-देवालय के चारों ओर करने का एक अति युक्तियुक्त कारण और भी है। हिन्दू धर्म-शास्त्रों ग्रन्थों के अध्ययनकर्ताओं को भलीभाँति ज्ञात ही है कि भगवान् कृष्ण के प्रमुख शत्रुगण बाणासुर, बकासुर, नरकासुर आदि जैसे असुर ही थे। इतिहास के छात्र यह भी जानते हैं कि फिलस्तीन के निकटवर्ती क्षेत्र असीरिया का नाम असुरों से ही व्युत्पन्न है, उन्हीं के कारण पड़ा है। उस क्षेत्र के सम्राटों के नामों में 'असुर' शब्द भी प्रायः सम्मिलित ही होता था जैसे असुर बेनीपाल। उस समय जब असुर लोग विश्व के लिए आतंक बन गए थे तब असुरों के अत्याचारों से शान्तिप्रिय मानवता को मुक्त कराने के लिए हिन्दुओं के भगवान् विष्णु को अनेक बार अवतार लेना पड़ा था। असुरों के ऊपर भगवान् विष्णु की महान् और बारम्बार होनेवाली जीतों को ध्यान में रखते हुए वहाँ के निवासियों ने असुरों के भय, आतंक से छुटकारा पाने पर आनन्ददायक मुक्ति रूप में भगवान् कृष्ण का एक विशाल मन्दिर निर्माणोत्सव समारोहपूर्वक मनाया और भगवान् कृष्ण के प्रति अपनी प्रशंसा, प्रगाढ़ श्रद्धा व कृतज्ञता के रूप में इस देवालय के चारों ओर एक नगर की प्रतिष्ठा भी कर दी। वह नगर है जरुसलम। इसके आसपास के भौगोलिक क्षेत्रों के नाम, यथा—गैलिली, नज़रथ और बेथलहम आदि सभी कृष्ण-कथा से ही व्युत्पन्न हैं।

यहूदी, ईसाई और मुस्लिम लोग जिन्हें इस खोज को स्वीकार करना असुविधाजनक लगे कि उनके पूर्वज भगवान कृष्ण की पूजा करनेवाले थे, अपने-आपको इस तथ्य से भी दिग्भ्रमित कर सकते हैं कि हमने केवल भाषाशास्त्रीय साक्ष्य ही प्रस्तुत किए हैं। हम ऐसे लोगों को सर्वप्रथम यही

बता देना चाहते हैं कि इतना विपुल भाषाशास्त्रीय साक्ष्य अत्यन्त महत्त्व वाला है क्योंकि अन्य साक्ष्य जब अत्यन्त सुगमता से नष्ट किया जा सकता है, तब भाषा जो लाखों-लाखों लोगों द्वारा हर रोज बोली जाती है और प्रेमपूर्वक व सहज स्वाभाविक तौर पर एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को सौंप दी जाती है, ऐतिहासिक शोध का एक अत्यधिक महत्त्वपूर्ण उपकरण है जो पुरातत्त्वीय अवशेषों से भी अधिक बहुमूल्य और विश्वसनीय है। यह बता देने के बाद हम यह संकेत जरूर देना चाहते हैं कि हम कमल-चिह्नों के रूप में पुरातत्त्वीय साक्ष्य भी प्रस्तुत कर चुके हैं। हम भगवान् कृष्ण द्वारा असुरों के विरुद्ध लड़े गए अपूर्व पश्चात्ताप के युद्धों, संघर्षों के बारे में ऐतिहासिक साक्ष्य भी सामने ला चुके हैं।

यहूदी लोग अपने-आपको भगवान् के चुने हुए लाड़ले व्यक्ति कहते हैं। इसका कारण यह है कि वे भगवान् कृष्ण के यदु-वंश से सम्बन्ध रखते हैं जो यदु-ईश अर्थात् यादवों के शिरोमणि, प्रभु, स्वामी कहलाते हैं।

डिविनिटी : ईसाई देव-विद्या में सर्वोच्च ज्ञान प्राप्त व्यक्ति को 'डॉक्टर ऑफ़ डिविनिटी' की उपाधि से सम्मानित, प्रतिष्ठित किया जाता है। यहाँ 'डिविनिटी' संस्कृत का यौगिक शब्द 'देव-नीति' है—अर्थात् देव (ईश्वर) के जीवन की पद्धति। हिन्दू, संस्कृत भाषा-शैली में 'ईश्वर' के लिए शब्द है 'देव' जबकि (तथा) ईश्वर की जीवन-शैली 'देव-नीति' कहलाती है। 'डॉक्टर ऑफ़ डिविनिटी' में 'डिविनिटी' शब्द इसी बात का द्योतन करता है।

कृष्ण, ईश्वर के रूप में, संस्कृत भाषा में 'कृष्ण-देव' शब्द द्वारा प्रतिरूपित होते हैं। क्राइस्ट (कृस्त) कृष्ण का अपभ्रंश रूप होने का यह एक अन्य प्रमाण है। यही कारण है कि वह और उनके बारे में ज्ञान को 'डिविनिटी' (देव-नीति) कहा जाता है।

ईस्टर : जीसस के पुनर्जीवित होने के उपलक्ष में कल्पित यह एक झूठी मान्यता, कथा है। ईस्टर 'ओस्तारा' नामक एक हिन्दू देवी का आधुनिक परिवर्तित रूप ही है। मार्च में हिन्दू नववर्ष के पूर्ण चन्द्र दिवस (पूर्णिमा) के बाद आनेवाले प्रथम रविवार को उक्त देवी का यह उत्सव समारोहपूर्वक मनाया जाता था। हिन्दू पद्धति के अनुसार उक्त देवी के

सम्मुख साकाश 'भोग' के रूप में प्रस्तुत किया जाता था जिसे वे 'ग्रहण' करती थी और अपना आशीर्वाद, कृपा प्रदान कर देती थीं—फिर वही भोग देवी के 'प्रसाद' स्वरूप मित्रों व सम्बन्धियों में वितरित कर दिया जाता था। यही वह प्रथा है जो ईस्टर के अवसर पर चित्रित, रंग-बिरंगे अण्डों के वितरण के रूप में अभी भी चली आ रही है।

ऑक्सफोर्ड शब्दकोश में ईस्टर का स्पष्टीकरण इस प्रकार अंकित है: "यह क्राइस्ट के पुनर्जीवित हो जाने पर मनाया जानेवाला उत्सव है—पास्का (पास ओवर) के सदृश और २१ मार्च या उसके बाद पहली पूर्णिमा (पूर्ण चन्द्र-दर्शन) के बाद पहले रविवार को आयोजित किया जाता है।"

सूर्य और चन्द्र तथा २१ मार्च व रविवार के साथ इस प्रकार जुड़े रहना और बोलचाल की पद्धति पर ईस्टर नाम इस बात के अन्य संकेतक हैं कि क्रिश्चियन-पंथ ने किस प्रकार सभी प्राचीन हिन्दू त्योहारों को ग्रहण किया है और उन पर क्रिश्चियन लबादा उढ़ा दिया है।

चूँकि जीसस पैदा हुआ ही नहीं था, इसलिए उसे सूली पर नहीं चढ़ाया जा सकता था और चूँकि वह सूली पर चढ़ाया ही नहीं गया था, इसलिए उसके पुनरुज्जीवित हो जाने का प्रश्न ही नहीं उठ सकता था। इसलिए इस विषय में सारी गम्यागम्य बहस अनुचित, अ-प्रासंगिक है कि क्या जीसस क्रूस पर ही मरा था या उसे गलती से मृत समझकर छोड़ दिया गया था और बाद में उसे उसके मित्रों ने जीवित कर लिया था? तथ्यतः तो ऑक्सफोर्ड शब्दकोश स्वयं भी स्वीकार कर रहा है कि ईस्टर का सम्बन्ध क्रिस्तो-पूर्व यहूदी उत्सव से है—यह उसी के सदृश है। इसी पुस्तक में अन्यत्र स्पष्ट किया ही गया है कि यहूदियों का स्वयं का सम्बन्ध भी भगवान् कृष्ण के वंश, कुल से है। इसलिए उनका अपना पास्का (पास ओवर) उत्सव भी एक हिन्दू उत्सव, त्योहार ही है।

अध्याय ८

जीसस का जन्म और जीवनचरित

जीसस के परिवार की पृष्ठभूमि पर विचार करते हुए श्री विल ड्यूरण्ट ने कहा है कि जीसस के भाई जेम्स, जोसेफ, साइमन और जुदास थे। उसकी कई बहनें भी थीं।

एक कुमारी, अविवाहिता मेरी से जीसस का जन्म बड़े-बड़े अनुमानों, विविध कल्पनाओं और अनेक प्रकार की चर्चाओं का विषय रहा है।

विल ड्यूरण्ट ने "मेरी और एक रोमन सैनिक के बारे में सेलसस और अन्य लोगों द्वारा बाद में प्रचलित कथाओं को बेढंगी, भद्दी, मनगढ़न्त"[1] कह-कर नकार दिया है।

पॉल और जोहन ने अक्षत-जन्म का उल्लेख नहीं किया है। मैथ्यू और लूके, जिन्होंने इसका उल्लेख किया है, "परस्पर विरोधी वंशक्रम द्वारा जोसेफ के माध्यम से जीसस का सम्बन्ध डेविड से लगा पाया है, स्पष्टतः अक्षत योनि-जन्म में विश्वास डेविड-वंशावली में विश्वास के बाद पैदा हुआ।"

सुसमाचार लेखक-गण जीसस के शिशुकाल के बारे में बहुत ही कम कहते हैं। जीसस जब आठ दिन का था, तभी यहूदी-परम्परा के अनुसार उसका परिशुद्धिकरण कर दिया गया था। उसके पिता जोसेफ के बारे में कहा जाता है कि वह एक बढ़ई रहा था।

चूँकि क्रिस्ती-पूर्व दिनों में यूरोपीय लोग हिन्दू थे, इसलिए ज्योतिष का लोगों के मानस पर बहुत प्रभाव था। किसी मागी द्वारा एक मुक्तिदाता, उद्धारक के जन्म लेने की पूर्व-घोषणा के तीन महत्त्व हिन्दू-दृष्टि से लक्षित

१. 'सभ्यता की कहानी', खण्ड ३, पृष्ठ ५५१।

है। मागी शब्द संस्कृत शब्द 'महा मागी' है जिसका अर्थ महान् यज्ञकर्ता, याजक है। अग्निपूजा के रूप में यज्ञ करना प्राचीन विश्व के सभी भागों में हिन्दू कर्मकाण्ड का एक भाग था। इसलिए, यज्ञों के समय पुरोहितों को 'महा-मागी' अर्थात् 'महान् याजक' कहा, पुकारा जाता था। संस्कृत भाषा में 'महा' का अर्थ महान्, बड़ा और 'यागी' अर्थात् यज्ञकर्ता, याजक, कर्मकाण्ड करनेवाला होता है।

मागी नाम पुरोहित होने के कारण ज्योतिष-विद्या में भी निपुण, दक्ष होते थे। वे कर्मकाण्डों के लिए शुभ दिन बताते थे, जन्म-कुण्डलियाँ बनाते थे और भविष्यफल बताते थे।

किसी मागी द्वारा जीसस के जन्म की पूर्व-घोषणा कर देने की कथा परवर्तीकाल कृस्ती नेताओं द्वारा भगवान् कृष्ण के जन्म के बारे में कृस्ती-पूर्व समाज में उस समय प्रचलित हिन्दुओं की कथा पर ही निर्मित कर ली गई है। हिन्दू-धर्मग्रंथों में राजा कंस के विहित संहारक के रूप में भगवान् कृष्ण के जन्म की भविष्यवाणी आकाश से एक ध्वनि के रूप में पहले ही कर दी गई थी। उसी कथा का जीसस की कहानी में दुबारा अनुलिपिकरण हो जाना एक बार फिर यही सिद्ध करता है कि जीसस के जन्म की कहानी एक मिथक-गाथा है और यह भी स्पष्ट कर देता है कि कृस्ती-पूर्व युगों में प्राचीन विश्व में हिन्दू-धर्म ही प्रचलित धर्म था।

प्रोफेसर पायोजी निश्चितता के रूप में दावा करते हैं कि जीसस ईसा-पूर्व ४ सन् में पैदा हुआ था क्योंकि मैथ्यू की कथा है कि मागी ने हीरोड से जीसस के बारे में पूछा था जो ईसा-पूर्व ४ सन् में मर गया था।[1] किन्तु प्रश्न फिर भी शेष रहता है कि क्राइस्ट से कितने वर्ष पूर्व? साथ ही यह प्रश्न भी है कि यदि ईसा-पूर्व (सन्) क्राइस्ट के जन्म से पूर्व की कालावधि का द्योतक है, इसलिए यह कैसे सम्भव है कि क्राइस्ट से पूर्व चार वर्षों में पहले ही क्राइस्ट का जन्म हो जाए?

जीसस के समकालीनों में जिन लोगों को अक्षत योनि-जन्म होना स्वीकारने

१. प्रोफेसर ई. एम. पायागुची 'दि स्टार्स एण्ड दि विज़र्ड्स', पृष्ठ १७ (लंदन १९७३)।

में कठिनाई होती है, किन्तु जो फिर भी जीसस को एक ऐतिहासिक व्यक्ति होने का विश्वास करते हैं, वे कहते हैं कि ईसाई, कृस्ती-धर्मग्रन्थों में कुमारी के बच्चा पैदा होने का कभी कोई दावा नहीं किया गया है। वे मानते हैं कि जीसस का जन्म तो सामान्य मानव के जन्म-सदृश ही था और 'पवित्र आत्मा', 'पुण्यात्मा' ने तो उसके माता-पिता को सद्भाव का आशीर्वाद ही दिया था।

धर्ममण्डली समर्थकों का उपर्युक्त निष्कर्ष (मैथ्यू १ : १८) बाइबल में दिए गए अवतरण को दृष्टि में रखते हुए अयुक्तियुक्त, असंगत, अस्वीकार्य है जिसमें कहा गया है : "जब उस (जीसस) की माँ मेरी की सगाई जोसेफ से हो चुकी थी, उनके साथ-साथ आने से पहले ही, वह 'पवित्र आत्मा' के शिशु के साथ ही पाई गई थी। जोसेफ अपनी पत्नी को ले गया और तब तक उसको न जान पाया जब तक कि उसके एक पुत्र पैदा नहीं हो गया (१ : २४-५)"...और मेरी ने देवदूत से कहा : "यह कैसे हो सकेगा क्योंकि मेरा तो कोई पति नहीं है?" और देवदूत ने उसको समझा दिया "तुम्हारे ऊपर 'पुण्यात्मा' का वास (आशीर्वाद) रहेगा।' (लूके १ : ३४-५)

यह स्वीकारते हुए कि मैथ्यू ने स्पष्ट उल्लेख किया है कि जोसफ जीसस का पिता नहीं था और उसने जीसस का जन्म हो जाने के बाद में पूर्व मेरी से कोई, किसी भी प्रकार का रति-कर्म सम्भोग नहीं किया था, प्रोफेसर रॉबिन्सन ने यह भी कहा है कि "फिर भी मेरी और किसी अज्ञात पुरुष के मध्य सम्भोग से, जिसे जोसेफ ने बाद में क्षमा कर दिया (माफ कर) भुला दिया था, इन्कार नहीं किया जा सकता।"[1]

प्रोफेसर वैल्स के अनुसार (केवल मैथ्यू और लूके में दिए गए) जीसस के जन्म और उसके शैशव के वर्णन जीसस के लोकचरित के मार्क के लिखित तथ्यों की पुष्टि करने के लिए भूमिका/प्राक्कथन के रूप में लिखे जाने स्पष्ट हैं क्योंकि मैथ्यू जीसस के शैशवकाल और उसके बपतिस्मा के मध्य जीवन-काल का कोई वर्णन नहीं कर सकता और लूके उक्त अभाव की पूर्ति करने के लिए मात्र एक ही घटना (मन्दिर में १२ वर्षीय जीसस की कहानी) ही

१. 'दि ह्यूमन फ़ेस ऑफ़ गॉड', पृष्ठ ८०, लंदन, १९७३।

[illegible] विधर्मियों से अति शीघ्रतापूर्वक निपटने के लिए जानना है। विधर्मियों [illegible] ऐसे [illegible] की अत्यन्त आवश्यकता होती थी। एक पूर्ण वयस्क के रूप में उसके बपतिस्मा किए जाने से पूर्व के जीसस के जीवन के बारे में मार्क की चुप्पी ने उनमें से कई लोगों को यह कल्पना करने का अवसर जरूर प्रदान कर दिया कि वह स्वर्ग से सीधा मानव-रूप में अवतरित हो गया था किन्तु उसने सामान्य मानव-शरीर धारण नहीं किया था। जन्म के दोनों वर्णन-व्याख्यानों का भी जीसस को ईश्वर के पुत्र के रूप में प्रदर्शित करने का बिल्कुल भिन्न उद्देश्य था और यही कारण है कि उन्होंने जीसस को बिना माता-पिता के ही प्रदर्शित किया है (जबकि) उसकी मानव-माता का निरूपण मात्र इस प्रयोजन से किया गया है कि मान लिया जाए कि उस जीसस के एक साधारण मानव-शरीर भी था।

जोहन एक [illegible] व्यक्ति प्रतीत होता है। जीसस के जीवनचरित का विश्वसनीय बनाने के लिए उस (जीसस को) जिस-तिस प्रकार जोहन से जोड़ दिया गया है। जोहन द्वारा जीसस का तथाकथित बपतिस्मा सुसमाचार लेखकों द्वारा प्रयुक्त अनेक उन प्रकारों में से एक है जिनसे वे [illegible] का जीसस के बारे में घोषित करना चाहते थे कि जीसस की पैगम्बरी भूमिका को देखकर उसे मसीहा अभिषिक्त करनेवाला व्यक्ति जोहन जीसस से पूर्व काल का व्यक्ति था। प्रसंगवश कह दिया जाए तो, यह मसीहा शब्द [illegible] महान् ईश्वर' होना है।

अपना [illegible] पथ बना लिया जाए जिसमें वे स्वयं ही नेता बन जाएँ और स्वयं ही निर्णायक पत्र भी हों—ऐसी ही आतुरता में इन सुसमाचार लेखकों ने एक अस्तित्वहीन जीसस को मुक्तिदाता के रूप में प्रस्तुत कर दिया। [illegible] करने के लिए उनको एक कहानी भी गढ़नी पड़ी। यह कार्य उन्होंने एक कुमारी द्वारा जन्म देने के पक्ष और सूली पर निन्दित मृत्यु के प्रसंग जोड़कर पूरा कर दिया। ये दोनों कल्पित घटनाएँ भी ऐतिहासिक जाँच-परख करने पर निराधार कल्पनाओं, शून्य में लुप्त हो जाती हैं। किन्तु इन दोनों के बीच भी जोहन द्वारा जीसस का बपतिस्मा किए जाने के [illegible] जीसस के जीवनचरित का कोई भी विवरण वहाँ उपलब्ध नहीं है। [illegible] बाइबल पढ़ ले, फिर भी उसे कोई ऐसा स्वीकार्य

कारण नहीं दिखता कि जीसस को सूली-दण्ड दिया जाना चाहिए। यह प्रदर्शित करने के लिए एक भी ऐसा विवरण नहीं है जो सिद्ध करे कि जीसस उस समय की स्थापित सत्ता के विरुद्ध किसी प्रकार की बगावत संगठित कर रहा था। उसकी कल्पित देव-शिक्षा में भी कोई क्रान्तिकारी तत्त्व नहीं थे जिसके कारण किसी का रोष न्यायोचित ठहराया जा सके। जीसस को इतना दुर्बल, निरीह, निरभिमानी और विनम्र प्रदर्शित, निरूपित किया गया है कि उसको सूली-दण्ड द्वारा क्रूरतापूर्वक मारना तो दूर, कोई व्यक्ति उसको किसी भी प्रकार हानि पहुँचाने की भी नहीं सोच सकता था।

क्राइस्ट के बारे में सोचा, माना जाता है कि उसने अपनी भयावह मृत्यु के समय, कातर वाणी में, असह्य पीड़ा भोगते हुए उच्च स्वर से विनती की थी : "हे प्रभु, क्या तुमने मुझे क्षमा कर दिया है?" अन्तिम वाक्य उसकी मसीही भूमिका को रद्द, निरस्त कर देता है। क्योंकि यदि वह जानता था कि मानवता की मुक्ति के लिए उसे अपनी भूमिका की अन्तिम कटु, शोक-दायी भूमिका निभानी पड़ेगी तब वह अन्तिम, संकटकालीन निर्णायक घड़ी में यह कौतूहल क्यों प्रकट करे कि भगवान् ने उसे क्षमा कर दिया था या नहीं?

इसी प्रकार उस विश्वास-अभिव्यक्ति में भी अनेक अविश्वसनीय तोड़-मोड़ हैं कि सूली पर दण्डित होकर जो अपना रक्त जीसस ने (अपनी अनिच्छावश ही) बहाया वह विचित्र जादू और तर्क द्वारा दिवंगत काल में मृत्यु को प्राप्त हुए कोटि-कोटि मानवों और विश्व के अन्त तक भविष्य में भी उसके पश्चात् मरने वाले करोड़ों मनुष्यों के प्रायश्चित्त के लिए पर्याप्त होगा यदि वे सभी लोग जीसस को अपना नेता, नायक स्वीकार कर लें।

उस 'व्यापक विश्वास' की चर्चा करते हुए कि 'धर्मग्रन्थ में दिए गए जीसस के धर्मोपदेशों और चरित्र को आविष्कृत नहीं किया जा सकता था", प्रोफेसर वेल्स का पर्यवेक्षण है कि "तथ्य रूप में धर्मोपदेशों (शिक्षाओं) को आविष्कृत, ईजाद करने की आवश्यकता ही नहीं थी क्योंकि यह व्यापक रूप से माना, स्वीकारा जाता है कि ये शिक्षाएँ पूरी तरह अ-मौलिक हैं। जहाँ तक उसके चरित्र का सम्बन्ध है, यह तो हिंसा, असहिष्णुता, दया, घमण्ड, धैर्य का मिश्रण है···तथ्य रूप में तो यह सम्बन्धों के अनुसार बदलता

...उतनी ही ईजाद कल्पना की जरूरत थी जितनी जाता है। इसके लिए भी उतनी ही ईजाद कल्पना की जरूरत थी जितनी (काल्पनिक पुस्तक) 'अरेबियन नाइट्स' के लेखकों को इसकी आवश्यकता रही होगी।"

ईसापूर्व काल से हिन्दू और बौद्ध (धर्म) शिक्षाएँ विश्व-भर के विभिन्न पंथों मत-मतान्तरों में इतनी पुरानी जड़ें जमा चुकी थीं, यथा — गूढ़ ज्ञानवादियों, उदासीनों, श्रमणों, स्मार्तों, तत्त्वदर्शियों, शैवों, सूर्योपासकों, फरीसियों—यहूदियों, गैर-यहूदियों, गैर-ईसाइयों, माँ देवी के पूजकों और अज्ञेयवादियों में—कि कोई भी व्यक्ति अल्पावधि में ही कोई नई शिक्षा निरूपित कर सकता था और उस पर अपनी धर्म-ध्वजा फहरा सकता था। यही कार्य सुसमाचार लेखकों ने किया था।

चार धर्मग्रन्थ लेखकों द्वारा रचित विवरणों में से यदि उनको विवरण माना जा सके तो इन ग्रन्थों में थोड़ी-बहुत और अनिश्चित जानकारी, जो भी कुछ मिल सकती है वह यह कि "जीसस का जन्म हीरोड महान् के शासनकाल की समाप्ति के आसपास नजरथ या बेथलेहम में हुआ था। उसने सम्भवतः अपना बाल्यकाल नजरथ के नाम से पुकारे जानेवाले गलीली के एक नगर में बिताया था। उसके बाल्यकाल के बारे में केवल बारह (१२) शब्द कहे गए हैं और इनमें बताया गया है कि वह बड़ा हुआ, आत्मिक रूप से हृष्ट-पुष्ट हो गया, बुद्धिमत्ता से भर गया। १२ वर्ष की आयु के आसपास वह जेरुसलम गया और मन्दिर में भी चिकित्सकों को मिलने चला गया। उसके बाद एक शून्य अभाव है। जीसस के लगभग ३२ वर्ष की उम्र का हो जाने तक अन्य कोई जानकारी नहीं मिलती। फिर हमें ज्ञात होता है कि जॉन नामक बपतिस्मा द्वारा जीसस का बपतिस्मा किया गया था ... और फिर जीसस ध्यान करने के लिए ४० दिन के वास्ते एकान्तवासी हो गया।"[1]

"जिस क्षण आप प्रमाण माँगते हो, जीसस की वास्तविक अनुदिक परिस्थितियाँ व विशद (जीसस) उसके जीवन का पक्का इतिहास चाहते

---

१. 'दिद जीसस एग्जिस्ट ?', पृष्ठ १५१-१५२।
२. इर्विंग वालेस रचित 'दि वर्ड', पृष्ठ १०।

हो, आप तुरन्त कठिनाई में पड़ जाते हो। जीसस के बारे में ज्ञात तथ्यों से तो मुश्किल से एक पृष्ठ से कम ही लिखा जा सकेगा। बहुत सारे विद्वानों का विश्वास है कि तथ्यों से मुश्किल से एक वाक्य ही बन पाएगा। अन्य विद्वानों—रीमारस और बाउर जो जर्मनी के थे और नीदरलैंड के पीयरसन व नाबर का मत था कि जीसस के बारे में किसी तथ्य के लिए तो एक शब्द भी नहीं लिखा जा सकता क्योंकि उनका आग्रहपूर्वक कहना था कि "जीसस तो मिथक, मिथ्या, कल्पनामात्र है—कोई वास्तविकता तनिक भी नहीं। फिर भी, पिछले एक सौ वर्षों में कम-से-कम सत्तर हजार तथाकथित जीवन-चरित जीसस के बारे में लिखे और प्रकाशित किए गए हैं।"[1]

ये सब जीवनियाँ आमतौर पर मैथ्यू, मार्क, लूके और जोह्न द्वारा लिखित काल्पनिक वर्णनों पर ही निर्मित, रचित थीं।

"मृत सागर नामावली के विशेषज्ञ मिल्लर बोरोस ने कहा है कि यदि जीसस बहुत व्यापक अनुयायियोंवाला क्रान्तिकारी रहा था, रोमन सत्ताधिकारियों-सैनिकों से लड़ा था और उसने अपना ही साम्राज्य स्थापित करना चाहा था, तो उसकी क्रान्ति और उसकी विफलता पर प्रकाश डालनेवाले सिक्के और पत्थर के शिलालेख तो निश्चित ही रहे होते।"[2] किन्तु जीसस के बारे में ऐसा कोई भी पुरातत्त्वीय या ऐतिहासिक साक्ष्य नहीं है।

---

१. इर्विंग वालेस रचित 'दि वर्ड', पृष्ठ ८६।
२. वही, पृष्ठ ६३।

अध्याय ६

जीसस की कब्र (?)

'जीसस को कहाँ दफनाया, गाड़ा गया था ?'—यह वह प्रश्न है जिस पर मौखिक रूप से और पुस्तकों व लेखों के माध्यम से प्रायः चर्चा की जाती है। दुर्भाग्यवश, यही प्रश्न आधुनिक शोध की प्रणालियों में विद्यमान एक बड़े दोष का जीता-जागता उदाहरण, दृष्टान्त भी प्रदर्शित करता है। यह तो ऐसा ही है जैसे किसी व्यक्ति से प्रश्न किया जाए, "क्या तुमने शराब पीना बन्द कर दिया है ?" हो सकता है उस व्यक्ति ने कभी शराब को छुआ तक न हो। यदि ऐसा व्यक्ति उत्तर 'हाँ' में दे दे, तो निहित भाव यह माना जाएगा कि अमुक व्यक्ति अपने जीवन में किसी समय शराब का व्यसनी था। यदि वह 'ना' में उत्तर दे दे तो यह प्रथम उत्तर से भी बुरा होगा, क्योंकि इसका निहितार्थ यह होगा कि वह व्यक्ति इतना पियक्कड़ है कि उसे सुधारा ही नहीं जा सकता।

इसलिए ऐसे प्रश्न तार्किक दृष्टि से भ्रामक, दोषपूर्ण हैं। 'जीसस कहाँ दफनाया गया था' प्रश्न भी इसी प्रकार का है क्योंकि हमारी उपलब्धि यह है कि जीसस का जन्म कभी हुआ ही नहीं था। चूँकि वह जन्मा ही नहीं था इसलिए वह जीवनयापन कर ही न पाया। चूँकि वह कभी जीवित था ही नहीं इसलिए वह मरा भी कभी नहीं। और चूँकि वह कभी मरा ही नहीं इसलिए उसे कहीं कब्रों में गाड़ने, दफनाने का प्रश्न ही नहीं उठता। अतः 'जीसस को कहाँ दफनाया गया था' प्रश्न का सही उत्तर यही है कि उसे कहीं भी दफनाया नहीं गया था क्योंकि उसकी कोई आवश्यकता ही नहीं थी क्योंकि जीसस नाम का कोई व्यक्ति था ही नहीं जिसे दफनाने की जरूरत होती।

जीसस के जन्म के बारे में भी, यद्यपि विश्वास किया जाता है कि पूर्व

से आनेवाले बुद्धिमान लोगों को जीसस के जन्मस्थान तक का मार्ग बताने में एक नक्षत्र, तारक ने मार्गदर्शन किया था, तथापि विद्वान् लोग इस बारे में एकमत नहीं हैं कि जीसस का जन्म बेथलेहम में हुआ था या नजरथ में ?

इस समस्या का एक अति सरल, शान्त करनेवाला किन्तु असंदिग्ध हल, समाधान, उत्तर है। यदि व्यक्ति स्मरण रखे कि कृष्ण का उच्चारण 'कृस्न' किया जाता था, तो वह आसानी से समझ सकता है कि कृष्ण का जन्म प्रत्येक मन्दिर और प्रत्येक घर में समारोहपूर्वक मनाया जाता था जब हिन्दू-धर्म का सर्वत्र प्राचीन विश्व पर प्रभुत्व छाया हुआ था। हम पहले ही कह चुके हैं कि स्थानों के नाम जैसे जरुस्लम अर्थात् यदुस्लयम, बेथलेहम अर्थात् वत्सलधाम, नजरथ अर्थात् नन्दरथ, गलिली अर्थात् गावालय और गाल-गोथा आदि स्थल-वाचक नाम हैं जो कृष्ण-कथा से जुड़े हुए हैं। अन्य स्थानों के समान ही वहाँ भी भगवान् कृष्ण का जन्म नियत दिन पर ठीक अर्धरात्रि होते ही घंटियों की मधुर ध्वनियों के मध्य उद्घोषित किया, मनाया जाता था। इसलिए नजरथ और बेथलेहम (तथा अन्य कई स्थान) उस प्रभु के जन्म से सम्बन्धित हो गए।

पूर्व से आनेवाले बुद्धिमान लोग भारत के हिन्दू पुरोहित थे। बेथलेहम या नजरथ के दर्शनार्थी ऐसे व्यक्ति सहज ही कृष्ण-जन्म-समारोहों में उपस्थित, सम्मिलित होना चाहते थे। चूँकि कृष्ण का जन्मदिन कृष्ण-पक्ष (अँधियारे पक्ष) की ८वीं तारीख को पड़ता है, इसलिए रात्रि बारह बजे (अर्ध-रात्रि के समय) तो बाहर घना, घोर अन्धकार होता है। १६०० वर्षों पूर्व दिनों में जब बिजली-व्यवस्था नहीं थी और सँकरी, घुमावदार गलियों-वाले उपनगर प्राचीरों से सुरक्षित रखे जाते थे, तब मकान लगातार, अटूट पंक्तिबद्ध रूप में हुआ करते थे।

ऐसी स्थिति में जब बेथलेहम या नजरथ के निवासियों को छतों पर खड़ा देखकर, भारत से आए 'बुद्धिमानों' द्वारा कृष्ण मन्दिर का मार्ग पूछा जाता था तो वहाँ के वे निवासी, हाथ में दीप या मशालें या प्रकाश-पुंज लेकर उस पुण्य-स्थल तक उन लोगों का मार्गदर्शन करते थे। सहज रूप में ही नीचे चलनेवालों को मकानों के ऊपरवाला प्रकाश एक मार्गदर्शक-दीपक, तारक जैसा लगता था जो वहाँ आकर रुक गया लगता था जहाँ ईशस कृष्ण

(जीसस कृस्त उच्चरित रूप) का जन्मोत्सव मनाया जाना होता था। यदि इस भावना से समझा जाए तो यह बाइबल-उद्धरण काफी काव्यात्मक और फिर भी यथार्थ नहीं मालूम पड़ता है जिसमें कहा गया है कि पूर्व के बुद्धिमान सन्त पुरुषों का मार्गदर्शन एक तारक करता था जो 'जन्म-स्थान पर आकर एकदम से रुक गया प्रतीत होता था।

पूर्व से आए व्यक्तियों को 'बुद्धिमान' अर्थात् ज्ञानी कहा जाता था क्योंकि प्राचीन युग में जब विश्व की प्रशासनिक और शैक्षिक प्रणालियों का नियमन मात्र हिन्दुओं द्वारा ही किया जाता था, तब उनको 'पण्डित' अर्थात् 'बुद्धिमान' या ज्ञानी कहकर सम्बोधित किया जाता था।

बाइबल में और कृस्ती व यहूदी-परम्परा में पूर्व दिशा को सदैव विशेष श्रद्धा से देखा जाता है। उदाहरण के लिए जरुस्लम में मुख्य यहूदी पूजा देवालय पूर्वी पर्वत पर बनाया गया था। पूर्व के लिए ऐसी वरीयता, श्रद्धा का कारण यह था कि प्राचीन विश्व में हिन्दू-धर्म ही सर्वत्र प्रभुत्वधारी था। पूर्व की प्रमुख दिशा से सन्दर्भ भी इस तथ्य का द्योतक है कि भारत इतना प्रभावशाली प्रधान देश था क्योंकि उन प्राचीन युगों में मात्र भारत ही एक विश्व-प्रसिद्ध देश था।

पूर्व से आए कुछ बुद्धिमान लोगों को कृष्ण (अर्थात् कृस्त) के जन्म-स्थान तक पहुँचाने में एक तारक द्वारा मार्गदर्शन किए जाने के महत्त्व को पिछले १६०० वर्षों में भी कोटि-कोटि कृस्ती और उनके विद्वान् तर्कपूर्ण ढंग से स्पष्ट नहीं कर सके। इसी तथ्य से बाइबल और कृस्ती विद्वत्-वर्ग की दुर्बलता पूर्णरूपेण सम्मुख आ जाती है। बाइबल का शिक्षण बाइबल के विद्वानों की दृष्टि को इतिहास के मात्र पाँच हजार वर्षों तक ही सीमित कर देता है क्योंकि वे विश्वास करते हैं कि ईश्वर ने विश्व के प्रथम युगल आदम और हव्वा की रचना ईसा से लगभग ४००० वर्ष पूर्व ही की थी। इसी प्रकार उनको यह विश्वास भी दिला दिया गया है कि लैटिन भाषा यूनानी भाषा से व्युत्पन्न होने के कारण विश्व की सबसे पहली, प्राचीनतम सुसंगत भाषा था। इस प्रकार बाइबल-शिक्षण उनका ऐतिहासिक क्षितिज ६००० वर्षों तक ही सीमित कर देता है और उनकी युक्तियुक्तता, सूझ-बूझ का पैनापन समाप्त कर देता है। काल, समय की असमाप्य धारा में

जहाँ युग, कल्प और महाकल्प एक अनन्त चक्र में चलते हैं, वहाँ पश्चिमी विद्वानों ने मनोवैज्ञानिक रूप से स्वयं को सिकन्दर अथवा जीसस जैसी अत्यन्त लघु खूँटी से यहाँ या वहाँ बाँध लिया है और अनन्त काल की परिधि में से मात्र ६,००० वर्षीय भँवर में इधर-उधर हिचकोले खाते रहते हैं।

चूँकि कृस्त (क्राइस्ट) कभी जन्मा ही नहीं था, इसलिए उसके जन्म-स्थल पर विवाद है। तदनुसार ही, जीसस के दफनाने का स्थान भी विवाद का विषय है। तथ्य रूप में तो यह भी माना जाता है कि वह स्वर्ग में सदेह, सशरीर प्रविष्ट हो गया था और इसीलिए पृथ्वी पर उसकी कोई कब्र हो ही नहीं सकती थी। फिर भी, भोले-भाले प्रवञ्च्य लोग जो विद्वानों के शोध-निष्कर्षों की उपेक्षा करते ही रहते हैं, प्रायः घोषित करते रहते हैं कि उन्हें कभी इस स्थान पर, कभी दूसरे स्थान और कभी तीसरे ही स्थान पर जीसस की असली कब्र मिल गई है। इस प्रकार, इन्हीं विद्वानों में से कुछ लोग वाद-विवाद प्रतियोगिताओं, समाचार-माध्यम, साक्षात्कारों, लेखों और पुस्तकों के माध्यम से जोर-शोर से प्रचार करते रहते हैं कि पश्चिम एशिया में गोलगोथा से लेकर भारत में कश्मीर तक कहीं भी कृस्त (क्राइस्ट) दफन किया हुआ पड़ा है। कोई भी व्यक्ति इस तथ्य को समझने का यत्न ही नहीं करता प्रतीत होता है कि यदि जीसस सचमुच ही कोई विशिष्ट व्यक्ति होता तथा एक वास्तविक ऐतिहासिक यथार्थता होता तो उसका शव-स्थान, लाश दफनाए जाने की जगह, कब्र अज्ञात और अ-चिह्नित न रह पाती। यह तो पीढ़ियों से आनेवाली सन्तानों, पीढ़ियों के लिए तीर्थस्थल बन गया होता।

शोधकर्ताओं के लिए इसमें एक व्यावहारिक पाठ, शिक्षा निहित है। किसी विषय की अन्तर्मध्यस्थ अथवा अन्तिम स्थिति में पहुँचकर अपना श्रम व्यर्थ करने और पश्चात्ताप करने से पूर्व ही विद्वानों को सर्वप्रथम यह सुनिश्चित करना चाहिए कि क्या उनके शोध के विषय की जड़ें इतनी मजबूत हैं कि उनके आधार पर कार्य प्रारम्भ किया जा सके? जब विद्वान् लोग ऐसी सावधानी नहीं बरतते और किसी विषय के अग्रिम, प्रगत अवस्था पर विचार करते हैं, तब वे दुःखी होते हैं और अपना सारा श्रम, प्रयास विफल रहा अनुभव करते हैं जब कोई उनकी सभी धारणाओं, पूर्व-कल्पनाओं

को गलत सिद्ध कर देता है। इनके दृष्टान्त उन दो भयंकर भूलों से प्रस्तुत किए जा सकते हैं जिनमें यह स्पष्ट दर्शाया जा सकता है कि विश्व-भर के विद्वान् छोटे-मोटे विद्यालयी बच्चों से भी ज्यादा धोखा खा जानेवाले—प्रवञ्च—और भ्रमशील अविश्वसनीय सिद्ध हुए हैं। पहला श्रेष्ठ उदाहरण भारत में अतिभव्य, शानदार भवन ताजमहल का है जो आज विश्व-पर्यटन का विशाल महान् आकर्षण है। किंवदन्ती के अनुसार ही इसका निर्माण शाहजहाँ द्वारा कराया जाना सत्य मानकर इतिहास-लेखकों, पुरातत्त्वज्ञों, आचार्यत्व इच्छुक विद्यार्थियों और शिल्प-शास्त्रियों ने समय-समय पर, बारम्बार शाहजहाँ को महान् सौन्दर्य-प्रतिभा के अद्वितीय धनी के रूप में चित्रित किया है। तदनुरूप ही कवियों, रचनाकारों-निबन्ध लेखकों, उपन्यासकारों नाटककारों, प्रचारक व्यक्तियों और लाइसेंसधारी मार्गदर्शकों ने मुमताज के प्रति शाहजहाँ के अत्यन्त सम्मोहन, अगाध प्रेम का हर्षोन्मत्त रूप में वर्णन प्रस्तुत किया है। मेरी इस खोज ने कि ताजमहल तो शाहजहाँ से ५०० वर्ष पूर्व भी विद्यमान था,[1] इतना कड़ा प्रहार किया है कि ताजमहल के सम्बन्ध में अभी तक लिखी गई पुस्तकों को तो कूड़ा-करकट मानकर विश्व-पुस्तकालयों और अकादमियों से बाहर फेंक दिया जाना चाहिए।

दूसरा उदाहरण स्वयं इसी पुस्तक में प्रस्तुत है। इस ग्रन्थ में हमने स्पष्ट किया है कि जीसस तो एक काल्पनिक व्यक्तित्व है जिसकी सृष्टि सन्त उपनाम पाल और उससे सहानुभूति रखनेवालों के पृथक् हुए गुट के संघर्ष के प्रवाह के रूप में की गई है। चूँकि जीसस का अस्तित्व कभी था ही नहीं और वह कभी जन्मा ही नहीं था, इसलिए उसकी कब्र और उसके कफन का ढूँढना निष्प्रयोजन है। किन्तु विश्व की अकादमियों और गिरजाघरों में यह क्रम सदा से निरन्तर चल रहा है। बिना किसी प्रकार की शंका और सोच-विचार कि उसकी शोध-प्रणाली सही या गलत है, एक के बाद एक विद्वान् पुरजोर बहस करता चला आ रहा है जीसस के अन्तिम दिनों के बारे में चाहे जीसस के 'प्रथम दिन' थे ही नहीं। इस प्रसंग से उस

१. पूर्ण विवरण मेरी पुस्तक 'ताजमहल मन्दिर भवन है' में पढ़ें।

पागल साँड की कहानी याद आ जाती है जो किसी लाल चिथड़े को अपना ठीक निशाना मानकर उस पर धावा, प्रहार कर देता है और पराजित हो जाता है।

आन्द्रेअस फेबर कैसर नामक जर्मन लेखक, जिसने अभी कुछ समय पूर्व ही 'जीसस कश्मीर में मरा' शीर्षक पुस्तक प्रकाशित की है, जाल में फँसनेवाला आधुनिकतम व्यक्ति है। अपनी पुस्तक में उसने स्वयं ही आश्चर्य व्यक्त किया है कि जीसस के जन्म के बाद उसकी आयु बारह वर्ष की हो जाने पर ही उसकी जानकारी क्यों होती है। जीसस फिर दुबारा 'ओझल' हो जाता है, लोगों की दृष्टि में आता ही नहीं और उनतीस वर्ष की उम्र होने पर उसका बपतिस्मा हो जाता है। बारह वर्ष की आयु से लेकर उनतीस वर्ष की युवा वय होने तक जीसस क्या करता रहा, किसी भी प्रकार की जानकारी किसी को उपलब्ध नहीं है।

यदि जोह्न ने जीसस का बपतिस्मा किया था और उसको एक भावी मसीहा के रूप में घोषित किया था, तो इसका कारण क्या है कि जोह्न उसके बपतिस्मा कर देने का या एक भावी मसीहा के रूप में उसके बपतिस्मा करनेवाले के रूप में अपने महान् सम्माननीय होने के तथ्य का कोई अभिलेख कहीं भी नहीं छोड़ गया है।

सम्भव है कि इस अभाव/त्रुटि को दृष्टि में रखकर कोई जालसाज पटेरा-अभिलेख कर दे जिसे जोह्न द्वारा रचित घोषित कर दिया जाए—पुराने आकार में ही बनाए—और किसी धर्मतत्त्वज्ञ को उसे किसी स्थान से खोदकर निकालने को दे दिया जाए ताकि इसकी खोज को अति महान् कहकर ढिंढोरा पीटा जा सके।

जीसस के लघु जीवन में मुँह बाए विशाल अभावों को देखकर ज्यादा प्रज्ञावान, समझदार होने के स्थान पर फेबर कैसर ने सहज ही यह मान लिया कि एक अनजानी कब्र, जो कश्मीर में रौजा बल में एक गुप्त तहखाने में है, वह जीसस के दफन किए जाने की कब्र ही है।

निष्कर्ष अत्यन्त बेतुका, अनोखा है। सर्वप्रथम तो यह ज्ञात होना चाहिए कि मेरी शोध के अनुसार भारत में तथा बाहर के कई अन्य देशों में तथाकथित प्रत्येक मकबरा (कब्र) और मस्जिद विजित, हथियाए गए

मन्दिर है। रौज़ा बल कोई अपवाद नहीं है। दूसरी बात यह है कि इसलामी भाषा में भी रौज़ा बल का अर्थ एक बाल (केश) की कब्र होता है जैसे कश्मीर में हज़रत बल नामक एक अन्य स्थान है जहाँ हज़रत मुहम्मद (पैग़म्बर) का बाल सुरक्षित रखा हुआ माना जाता है। यहाँ फिर वही समस्या सम्मुख आ जाती है कि पैग़म्बर मुहम्मद का एक बाल (या [illegible]) भारत कैसे आ पहुँचा? उसको उनको लाया कौन? इस बात का निश्चय कौन (कैसे?) और कैसे किया जाए कि मसखरे, पाखण्डी, धूर्त व्यक्ति ने अपना ही एक बाल सभी मुस्लिमों द्वारा श्रद्धापूर्वक सम्मानित किए जाने के लिए वहाँ न रख दिया हो? किन परिस्थितियों में मुहम्मद के शरीर से उन बालों को तोड़ लिया गया था—मृत्यु से पूर्व या बाद में, और क्या उनको तत्कालीन हज्जाम नाई से दाढ़ी बनवाने के बाद ले लिया गया था? कौन-सा परीक्षण यह सिद्ध करने के लिए किया गया है कि ये बाल १३०० वर्ष पुराने ही हैं और खुद मुहम्मद के शरीर के ही हैं? और यदि रौज़ा बल का मतलब किसी बाल की कब्र ही है, तो क्या यह माना जा सकता है कि मुहम्मद के कल्पित बाल रौज़ा बल में दफनाए, गड़े हुए हैं—और कि हज़रत बल में सम्मान से रखे हैं। या फिर यह स्वीकार कर लिया जाए कि कोई संदेशवाहक पैग़म्बर मुहम्मद के बालों का काफी बड़ा गुच्छा कई स्थानों पर प्रदर्शित, संरक्षित करने के लिए भारत में ले आया था? फिर यह प्रश्न उपस्थित होगा कि क्या इसलामी फौजें या संदेशवाहक मुहम्मद के बालों को उन सभी देशों के हर शहर, नगर, प्रान्त आदि में ले गए जिनको उन्होंने अपने पैरों तले रौंदा था? अथवा क्या यह सोचा जाता है कि भारत और सिर्फ कश्मीर को ही (सम्भवतः इसकी भौगोलिक सुन्दरता और ठंडी शीतल जलवायु के कारण) मुहम्मद के बाल में लाकर रखने के योग्य समझा गया था?

शोधकर्ता अपने मनचाहे निष्कर्ष निकालकर तब तक अनुत्तरदायी नहीं बन सकते जब तक कि वे उपर्युक्त जैसे प्रश्नों के समाधानकारी उत्तर न दे दें।

[illegible] जिसे पश्चिमी [illegible] में 'बाल' भी कहा जाता है, बर्तनी [illegible] के बारे में हम विशेष रूप से स्पष्ट करना है कि बाल-आदित्य

और बाल-कृष्ण हिन्दू देवगण थे जो सम्पूर्ण प्राचीन विश्व में आराध्य, पूजित थे। बाल-आदित्य का अर्थ उदयमान, तेजस्वी, युवा सूर्य है और बाल-कृष्ण है बालक कृष्ण इसलिए विश्व-भर में जहाँ भी कहीं बल (या बाल) नाम से देवालय, उपासनालय पाए जाते हैं वे सभी हिन्दू देवता के द्योतक हैं, न कि किसी व्यक्ति के शरीर के बाल (बालों) के। एक बाल (केश) तो नश्वर वस्तु है। इतना ही नहीं, त्याग दिए गए—त्यक्त बाल तो नफरत की चीज़ बन जाते हैं, न कि श्रद्धा, आराधना के पात्र—इसमें फर्क नहीं पड़ता कि वे किसके हैं।

परिणामत, कश्मीर में हज़रत बाल और रौज़ा बाल जैसे स्थान हिन्दू मन्दिरों के स्थल ही हैं। इस बात की पुष्टि इस तथ्य से भी होती है कि उक्त तथाकथित मकबरे पर पत्थर-फलक में अरबी-अक्षरों में समाधि-लेख में 'बोधिसत्तवा' लिखा हुआ है।

कश्मीरी मुस्लिम लोग इसे हज़रत यूज़ असफ़ का मकबरा कहते रहे हैं—यह व्यक्ति चाहे जो भी रहा हो, किन्तु स्पष्टतः यह एक पाखण्ड, झूठ है क्योंकि किसी मुस्लिम मकबरे में किसी मृत व्यक्ति के पैर मक्का की ओर नहीं किए जाते जैसे कि इस तथाकथित मकबरे में वे स्पष्टतः, प्रत्यक्षरूपेण उस ओर ही हैं। मात्र हिन्दू लोगों में ही यह प्रथा है कि दिव्य चरण-चिह्नों का पूजन, आराधन होता है। इसलाम तो ऐसी मूर्तिपूजा का वर्जन करता है। ऐसे प्रमाणों के होते हुए भी मुस्लिमों और क्रिस्तियों ने सारे विश्व को अपना सुखद क्रीड़ास्थल बना रखा है जहाँ वे सभी हिन्दू स्थानों को मुस्लिम या क्रिस्ती नाम दे सकते हैं।

विचारणीय एक अन्य तत्त्व यह है कि सन्दर्भित कब्र की देखभाल करनेवाला आधुनिक परिवार इसलाम-धर्मी है। यदि यह कब्र क्राइस्ट (क्रिस्त) की रही होती, तो इसकी देखभाल करनेवाले क्रिस्ती ही रहे होते। जीसस की कब्र की देखभाल करनेवाला कहलाने पर भी परिवार का तो मन-बहलाव ही होता है। इस कल्पना से भी उसका तो कोई नुकसान होना नहीं है। वे तो क्रिस्ती और मुस्लिम दोनों धर्मों/पंथों के सीधे-सादे भक्तों से पैसे, धन कमाते हैं। दूसरी मज़े की बात यह है कि वे मुस्लिम लोगों को यह कहकर खुश कर सकते हैं कि यह एक इसलामी कब्र है और

मुस्लिमों को यह बताकर मनचाहा धन ऐंठते हैं कि यह तो जीसस की कब्र ही है। जैसा भारतीय कहावत है देखभाल करनेवाले के बाप का तो कुछ जाता नहीं चाहे इसे मुस्लिम मकबरा, दरगाह, कब्र कहा जाए या फिर जीसस की कब्र।

तथापि, तथ्य यह है कि रोज़ा बल एक पूर्वकालिक हिन्दू मन्दिर है और इसके विद्यमान संरक्षक उस हिन्दू मन्दिर के पुजारी के वंशज हैं जिसको आक्रमण करनेवाली मुस्लिम फौजों ने बलात् धर्म-परिवर्तित कर दिया था—जैसा उन लोगों ने विश्व-भर में सर्वत्र किया।

फेबर कैसर का यह निष्कर्ष कुछ अंश तक मान्य हो सकता है कि ईसा, ईस्सा, यीसा, युस, यूसा, यूसु, युज और युज़ा एक ही नाम के कृस्ती और मुस्लिम अन्य पद हैं किन्तु वह इस ज्ञान से पूर्णतः अनभिज्ञ मालूम पड़ता है कि मूल आधारभूत संस्कृत शब्द ईश उपनाम ईशस ईश्वर, परमेश्वर का द्योतक है।

'राजतरंगिणी' के नाम से संस्कृत भाषा में उपलब्ध कल्हण के सुप्रसिद्ध इतिहास-ग्रन्थ में द्वितीय खण्ड में समधीमति नामक मंत्री के भाग्य का वर्णन है जो ईसा से ६१ वर्ष पूर्व से ईसवी सन् २४ के मध्य हुआ था। उसे राजा की आज्ञा से एक रात्रि को दाँव पर रखने के रूप में सूली-दण्ड दिया गया था। ईशान, जो मृतक मंत्री का गुरु था, अपने भक्त-शिष्य के मृत पिंड का क्रियाकर्म करने के लिए अगले दिन प्रातः इस स्थल पर आ पहुँचा किन्तु शव का काफी भाग जंगली जानवर खा चुके थे।

गुरु उक्त पिंड का दाह-संस्कार करने ही वाला था कि उसने एक चमत्कार देखा। एक शीतल, मंद बयार ने सभी दिशाओं में एक स्वर्गिक सुगंध महक सर्वत्र फैला दी थी। हिन्दू योगिनियों का एक समूह न जाने कहाँ से वहाँ आ उपस्थित हुआ। उन योगिनियों ने उक्त नर-कंकाल को या जो भी कुछ उक्त मृतक पिंड का बचा था, जोड़ दिया—उस समय शिव-मृदंग भी बजता रहा। और शीघ्र ही वह मृत व्यक्ति जी उठा और अपने गुरु के समक्ष नतमस्तक हो खड़ा हो गया। उसे बाद में राजा बना दिया गया था। उस कृतज्ञ शिष्य ने अपने गुरु ईशान की स्मृति में एक देवालय बनवाया। उक्त मन्दिर ही जो उस समय ईशानेश्वर मन्दिर के

नाम से ज्ञात था, निशात बाग के पास आज का ईशाबर देवालय है।

बाद में समधीमति ने हरमुख पर्वत-शृंखलाओं के बीच श्रीनगर से ५८ किलोमीटर उत्तर में भूतेश्वर के नाम से ज्ञात १७ मन्दिरों के संकुल में एक योगी सन्यासी का जीवन व्यतीत करने के लिए अपना राजोचित रहन-सहन त्याग दिया।

श्रीनगर के निकट एक लोकप्रिय सुप्रसिद्ध ५०० फीट ऊँची शंकराचार्य चोटी, पर्वत-शिखर है जो पूर्वकाल में समधीमान पर्वत कहलाता था। मुस्लिम विजेताओं ने, अपने पूर्व-आचरण, अभ्यास के अनुसार ही, इसे इस्लामी मरोड़ देते हुए एक सूक्ष्म ध्वन्यात्मक परिवर्तन कर दिया और सुलेमान-पहाड़ी कहने लगे। कश्मीरी हिन्दू नामों और देवालयों का इस प्रकार इसलामीकरण १४वीं और १५वीं शताब्दी में प्रारम्भ हुआ था।

प्राचीन कश्मीर की यह समधीमान कथा ही है जिसने टामस, मैथ्यू, मार्क, लूके और जोह्न —सभी को पुनर्जीवित होने, राज करने और अन्य —की रचनाओं का कथापटल प्रदान किया है, किन्तु प्राचीन यूरोप में यह कथा बताई-सुनाई जाती थी। एक पूर्वकालिक रूसी लेखक निकोलाई नोटोविच और नये जर्मन लेखक फेबर कैसर उन अनेक लोगों में से हैं जो व्यर्थ ही जीसस की कब्र के बारे में भारी वाद-विवाद या गहन चर्चा में सम्मिलित हो गए हैं। उनके तर्क शून्य, अतीत की कब्र में ही समा जाएँगे क्योंकि उस जीसस की कब्र हो ही कैसे सकती है जो कभी जन्मा ही नहीं था। विभिन्न राष्ट्रीयतावाले लेखकों द्वारा अत्यधिक गम्भीरता से चर्चित 'कब्र' का यह मामला सहज ही गैर-प्रतियोगी और प्रारम्भ से ही अ-प्रतियोगी मानकर रद्द कर दिया जाना चाहिए।

अध्याय १०

जीसस की आकृति कैसी थी ?

जीसस की शक्ल-सूरत कैसी थी ? सचमुच किसी को मालूम नहीं। पूजा-स्थलों (चर्चों, गिरजाघरों) में, कैलेण्डरों पर और चलचित्रों में दिखाई देनेवाले जीसस के विभिन्न (रूपों के) चित्र सभी काल्पनिक हैं।

'पोर्ट्रेट्स ऑफ क्राइस्ट' (ईसा के चित्र) नामक संयुक्त पुस्तिका में हेनरी किर्टलिगार और एलिज़ाबेथ सेमौर साग्रह कहते हैं : 'अब हम इस तथ्य की जानकारी प्राप्त करते हैं कि क्या कोई ऐसी प्रतिकृति या वर्णन है जो स्वयं क्राइस्ट के जीवन से ही उपलब्ध हो और इसीलिए उसे आधिकारिक कहा जा सकता हो तो हमें ज्ञात होता है कि ऐसा कुछ भी उपलब्ध नहीं है तथा यह भी मालूम पड़ जाता है कि उसके सर्वाधिक श्रद्धायुक्त चित्र भी परवर्ती पीढ़ियों द्वारा ही बनाए, प्रस्तुत किए गए थे। अतः क्राइस्ट की मुखाकृति जैसी हम आज जानते हैं, पूर्णरूपेण मानव-कल्पना की उपलब्धि ही है। ईसाई-धर्म सिद्धान्तों अथवा ग्रन्थों में उसकी शारीरिक रूपरेखा, आकृति, बनावट का कोई वर्णन उपलब्ध नहीं है। क्राइस्ट के बाद तीन या चार पीढ़ियाँ बीत जाने से पूर्व तो किसी ने सोचा ही नहीं कि वह कैसा दीखता होगा। उसके बाद लोगों का उस ओर ध्यान गया। सिकन्दर महान् व आदर्श स्वरूप के चित्र, गैर-ईसाई, गैर-यहूदी युगों से सर्वोच्च शक्ति के रूप में पूजित सूर्यदेव के छवि-चित्र आदि के प्रतिदर्शों के अनुरूप ही क्राइस्ट के चित्र प्रारम्भिक रूप में बनाए गए थे।'[1]

उपर्युक्त दोनों लेखकों की साक्षी महत्त्वपूर्ण है। पूरी शोध के पश्चात् ही उन्होंने यह तथ्य स्थापित किया है कि क्राइस्ट का कोई समकालीन चित्र

१ पोर्ट्रेट्स ऑफ क्राइस्ट' किर्टलिगर एण्ड सेमौर, पृष्ठ १ से ३।

उपलब्ध न होने के कारण ही उसके सभी आजकल विद्यमान/प्रचलित चित्र पूरी तरह काल्पनिक ही हैं।

इससे हम उस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जीसस क्राइस्ट कोई ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं है।

कृस्तियों में प्रचलित कहानियों के अनुसार एक प्रसिद्ध भविष्यवाणी के अनुरूप ही जीसस क्राइस्ट का जन्म एक दिव्य शिशु के रूप में हुआ था। इसलिए मागी नाम से विख्यात कुछ प्रबुद्ध, श्रेष्ठ, सन्त जन पूर्व दिशा से बालक का अभिनन्दन करने आए। उसके बाद से क्राइस्ट एक धार्मिक नेता के रूप में बड़ा होता गया जिसके पीछे आजीवन भारी भीड़ चलती रही। यदि यह सब कथा, मान्य धारणा सत्य रही होती तो जीसस के शैशवकाल से ही उसके हजारों वास्तविक सच्चे चित्र उपलब्ध रहे होते।

किन्तु उसके काल्पनिक चित्रों से भी अनेक महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं।

यह ध्यान रखना चाहिए कि सूली पर मृत्युदण्ड पाने से पूर्व जीसस ने जो मुकुट शीश पर धारण किया माना जाता है, वह सिर्फ काँटों का ताज ही था। निर्धनों, दुर्बल और पददलितों के नेता के रूप में उसने कभी स्वर्ण-मुकुट धारण नहीं किया। और फिर भी, जीसस को न केवल सोने का मुकुट पहने हुए चित्र में दिखाया जाता है, बल्कि उसे यहूदी-सम्राट् और राजाधिराज—राजाओं का राजा—भी सम्बोधित किया जाता है।

ये सभी भ्रमपूर्ण प्रतिवाद हैं, विसंगतियाँ हैं। सीधा-सादा, साधारण, सफेद उड़ता हुआ अंगरखा (गाउन) या कुर्ता पहना व्यक्ति कभी भी अनवरत रूप में ताज, मुकुट धारण किए नहीं रह सकता।

वह कभी भी यहूदियों का अथवा अन्य किसी भी समुदाय, समाज का सम्राट् नहीं रहा था। यही कारण है कि उसे कभी भी शस्त्रास्त्र धारण किए नहीं दिखाया गया। एक असली सम्राट् को हमेशा सशस्त्र, हथियार-बन्द रहना होता है क्योंकि वह सेना के सर्वोच्च सेनापति की भूमिका भी निभाता है।

जीसस यहूदियों का सम्राट् होना तो दूर रहा, आधुनिक प्रचलित मान्यताओं के अनुसार तो उसे यहूदियों ने अपने सामान्य साथी के रूप में

भी अस्वीकार कर दिया ठुकरा दिया था।

जीसस ने अपने सम्पूर्ण जीवन में एक बार भी ऐसा उल्लेख नहीं मिलता कि कभी किसी ने उसे ताज 'मुकुट भेंट किया हो या जूलियस सीजर की भाँति उसने कभी उसे अस्वीकार किया हो। यहूदियों में ऐसे कभी उतार-चढ़ाव नहीं हुए कि उन्होंने जीसस को अपना मान्य नेता और सम्राट् घोषित कर दिया हो। अतः जीसस का मात्र चित्र ही काल्पनिक नहीं है, उसका सम्पूर्ण जीवन और व्यक्तित्व भी मनगढ़न्त कथा-मात्र ही है।

विल डूरण्ट ने भी स्वीकार किया है "हमें उसका कोई चित्र प्राप्त नहीं है और न ही सुस्पष्टवादी लेखकों ने उसका कोई विवरण दिया है।"[1]

अपने सिर के चारों ओर एक प्रभा-मण्डल सहित एक दिव्य शिशु के रूप में जीसस का चित्रण भगवान् कृष्ण से उद्भूत है जो एक हिन्दू अवतारी पुरुष थे।

जीसस के शीश पर स्वर्ण-मुकुट भी भगवान् कृष्ण से ही सम्बन्धित है क्योंकि वे द्वारका के सम्राट्, द्वारकाधीश थे।

ये तो भगवान् कृष्ण ही थे, जो दिव्यावतार के रूप में महाराजाधिराज, सम्राटों के भी सम्राट् थे।

क्राइस्ट (कृस्त) सम्बोधन कृष्ण नाम का भ्रष्ट, अशुद्ध-अपभ्रंश उच्चारण है। भारत में भी (उदाहरणार्थ, बंगाल में) 'कृष्ण' नाम के बच्चों को प्रायः कृस्ट (कृस्त—कृस्टो) ही सम्बोधित किया जाता है।

एक भविष्यवाणी (भविष्य-कथन) के अनुसार एक दिव्य बालक के रूप में भगवान् कृष्ण का जन्म हुआ था जिसको ध्यान में रखकर हिन्दू लोग उनको एक प्रभामण्डलयुक्त शिशु के रूप में चित्रित करते हैं।

इस प्रकार, शिशु अवस्था से लेकर वयस्क अवस्था तक अनेक उदाहरणों में जीसस के चित्र भगवान् कृष्ण के विवरणों से ही नकल किए गए हैं।

यद्यपि क्राइस्ट का कोई भी चित्र उपलब्ध नहीं है, फिर भी यह प्रदर्शित सिद्ध किया जा सकता है कि भगवान् कृष्ण के वास्तविक, मूल

---

१. 'सभ्यता की कहानी', खण्ड ३, पृष्ठ ५६०।

चित्र कृस्ती-पूर्व यूरोप में प्रचलित थे और कृस्ती-मत पश्चात् यूरोप में भी कई शताब्दियों तक प्रचलित, विद्यमान थे। ऐसा ही एक चित्र, जो एक पच्चीकारी का भाग है, (एथेन्स से ६० मील दूर) कोरिंथ के संग्रहालय में टँगा हुआ है। हमने इसको इसी ग्रन्थ में अन्यत्र पुनः प्रस्तुत कर दिया है।

यदि कोई व्यक्ति रोम के बाहर एप्पियन-वे (मार्ग) पर सैंट सिबेशियन के अन्तर्भौम समाधि-क्षेत्र (कब्रों के तहखाने) में जाए तो उसे दीवार पर उत्कीर्ण अनेक चित्र मिल जाएँगे जो सम्भवतः दूसरी शताब्दी के हैं। उनमें से दर्शक को प्राचीन उत्कीर्ण रूपरेखांकनों में जीसस एक चरवाहे के रूप में लक्षित मिल जाएगा।[1]

सिबेशियन शिव-स्थान अर्थात् एक हिन्दू शिव मन्दिर को छद्मावरण में हड़प लेने की एक जुगत, युक्ति, विधि है। इसी प्रकार, कृस्ती विच्छिन्न-समूह ने कृष्ण, गोपाल (ग्वाले) के विकल्प के रूप में जीसस को पशु चराने-वाले, चरवाहे के रूप में चित्रित करना शुरू कर दिया।

कृस्ती-मिथक की जड़ें जम जाने के बाद लोगों के लिए यह सहज ही था कि वे जीसस के काल्पनिक चित्र तैयार करते।

इतिहास में विद्यमान या गैर-विद्यमान व्यक्तियों के काल्पनिक चित्र पाना कोई असामान्य बात नहीं है। ऐतिहासिक अर्थशास्त्र के अनुसार माँग आपूर्ति पैदा करती है। मुस्लिम बेगमों के सभी चित्र काल्पनिक हैं क्योंकि वे सदैव पूरी तरह पर्दों-बुर्कों में ढँकी रहती थीं।

जबकि क्राइस्ट (कृस्त) के चित्रों में उसे सामान्यतः अति सुन्दर और हृष्ट-पुष्ट व्यक्ति के रूप में दिखाया जाता है, "ऐसे प्राचीन संकेत हैं कि उसकी अनाकर्षक मुखाकृति थी। अच्छे रूप-रंगवाले लोगों को दण्डित करते समय सिकन्दरिया के दयाशील (क्लीमैंट) ने उन्हें स्मरण दिलाया था कि जीसस का मुख-चौखटा बहुत भद्दा था। क्रेट के एण्ड्रयू ने लिखा था कि जीसस की आँखों के ऊपर की भौंहें ऐसी थीं जो परस्पर मिलती थीं। सिकन्दरिया के साइरिल ने अंकित किया था कि जीसस बहुत भद्दे मुखड़े का व्यक्ति था किन्तु दिव्यता के यश की तुलना में, शारीरिक (मांस आदि)

---

१. इर्विंग वालेस रचित 'दि वर्ड', पृष्ठ २२४।

गुण-अवगुण का कोई महत्त्व नहीं।"[1]

यदि जीसस अपनी शैशवावस्था से ही सूली-दण्डित होने तक कोटि-कोटि जनों द्वारा लक्षित और उसका अनुसरण किया गया विश्व-आकर्षण सचमुच ही रहा होता तो क्या उसके अनुयायी व्यक्तियों के स्मृति-पटल पर उस पूरे से सुन्दर आकृति तक का विविध-रूपी कैसे हो सकता था? यह इस बात का एक अन्य संकेतक है कि जीसस कभी जन्मा ही नहीं था और इसीलिए कोई नहीं जानता कि वह देखने में कैसा था, वह दिखता कैसा था?

१ हबिस थामस रॉबस 'दि वर्ड', पृष्ठ ४६३।

अध्याय ११

सुसमाचार धर्मग्रन्थ

प्राचीन अंग्रेजी भाषा के प्रयोग, व्यवहार में 'गाड-स्पैल' का अर्थ 'अच्छी खबर'—'सुसमाचार' था। आधुनिक अंग्रेजी शब्द 'गास्पैल' यूनानी शब्द 'इवैन्जीलियन', जो मार्क का शुरू, प्रारम्भिक शब्द है, 'सुसमाचार' का अर्थ-द्योतक है जिसका भाव है कि मसीहा—देवदूत अवतरित हो गया था और ईश्वर, प्रभु का साम्राज्य स्थापित होने आ रहा था।

यूनानी शब्द 'इवैन्जीलिस्ट' संस्कृत भाषा के 'दिव्यांजलि' शब्द से व्युत्पन्न है जो 'दिव्य हाथों से' का अर्थ-द्योतक है। 'एन्जेल' और 'एन्जीलिक' जैसे शब्द भी ऐसी ही व्युत्पत्ति, मूल के हैं।

यह सामान्य धारणा निराधार, निर्मूल है कि जीसस के जन्म से पूर्व ही अथवा उसके तुरन्त बाद लिखे गए सुसमाचार धर्मग्रन्थों में यह अंकित होगा ही कि एक मसीहा की भूमिका निभाने के लिए जीसस के भावी आगमन की अग्रिम सूचना दे दी गई थी।

विन हूरष्ट के उल्लेखानुसार : "सुसमाचार (धर्म) ग्रन्थों की विद्यमान प्राचीनतम प्रतियाँ (ईसा-पश्चात्) तीसरी शताब्दी तक की ही हैं। मूल संस्करण स्पष्टतः ईसा-पश्चात् ६० से १२० के मध्य लिखे गए थे और उनकी प्रतिलिपियों में त्रुटियाँ आदि अगली दो शताब्दियों तक चलती रहीं तथा प्रतिलिपियाँ तैयार करनेवालों के पंथ या समयानुसार धर्मशास्त्र या उद्देश्यों के अनुरूप फेर-बदल करने में इतनी अवधि तो निकल ही गई होगी। ईसाई लेखक भी प्राचीन को ही उद्धृत करते हैं और नए विधान का कभी भी उल्लेख नहीं करते। ईसा-पश्चात् १५० सन् से पूर्व का एकमेव ईसाई सन्दर्भ पपीआस में है जो ईसा-पश्चात् १३५ के लगभग एक अपरिचित 'जॉहन ज्येष्ठ' का उल्लेख यह कहते हुए करता है कि मार्क ने ये सुसमाचार

ग्रन्थ संकलित किए थे उन स्मृतियों से जो उसे पीटर ने बताई थीं। पपीआस ने यह भी कहा है कि 'मैथ्यू' ने लोगिया (सूक्ति संग्रह) का लिपि-अन्तरण हिब्रू भाषा में किया था—जो स्पष्टतः क्राइस्ट के कथनों, वचनों का एक प्रारम्भिक अरामाइक संग्रह था। सम्भवतः पॉल के पास ऐसा कोई ग्रन्थ था क्योंकि चाहे वह किसी सुसमाचार ग्रन्थ का उल्लेख नहीं करता, फिर भी समय-समय पर वह जीसस के प्रत्यक्ष शब्दों को ही उद्धृत करता रहता है।"

विल डूरण्ट कहते हैं "समालोचक सामान्यतः सहमत हैं कि मार्क का सुसमाचार-ग्रन्थ सर्वप्रथम है और वे इसकी रचना-तारीख ईसा-पश्चात् ६५ और ७० के बीच ही निर्धारित करते हैं। चूँकि इसमें एक ही बात को कई बार भिन्न-भिन्न रूपों में दोहराया जाता है, इसलिए व्यापक रूप में विश्वास किया जाता है कि यह सूक्ति-संग्रह और अन्य पूर्ववर्ती कथनों पर आधारित है या स्वयं मार्क का ही पुनःरचना संकलन रहा हो। मार्क का सुसमाचार-ग्रन्थ प्रत्यक्षतः उस समय परिचालित किया गया था जब कुछ पट्ट-शिष्य या उनके प्रथम अनुयायी जीवित ही थे। अतः यह असम्भव-सा प्रतीत होता है कि क्राइस्ट (कृस्त) के सम्बन्ध में उनकी याददाश्त और व्याख्या में कोई मुख्य अन्तर, मतभेद था।"[1]

विल डूरण्ट का एक विचारक और लेखक के रूप में दोष यह है कि वह ऐसे अनेक प्रबल साक्ष्यों को प्रस्तुत करता है जो परम्परागत धारणा के विरुद्ध जाते हैं, और फिर भी वह अन्त में अपना मत भी प्राचीन, परम्परागत धारणा के पक्ष में ही दे देता है।

उसने यही कार्य क्राइस्ट (कृस्त) की ऐतिहासिकता और सुसमाचारों (ग्रन्थों) की वैधता के बारे में भी किया है। सम्भवतः ईसाइयत के प्रति उसकी निष्ठा और उसी के साथ उसका साहचर्य इस ईसाइयत को पूर्ण निषेधात्मक रूप में अस्वीकार करने से उसे प्रेरित करता है, रोकता है। इन्हीं और इसनामी लेखकों के साथ समस्या यह है कि अपना आधार-स्थल और अवलम्बन गँवा बैठने की आशंका से ही वे अपने-अपने आस्था-बिन्दुओं

१. 'सभ्यता की कहानी', खण्ड ३, पृष्ठ ५५५।

से सैद्धान्तिक रूप से चिपके रहना चाहते हैं यद्यपि वे उन आस्था-बिन्दुओं को बिल्कुल भी उचित, प्रतिरक्षा-योग्य नहीं पाते।

अतः तब आश्चर्य होता है जब विल डूरण्ट को 'पट्ट-शिष्यों या उनके सर्वप्रथम अनुयायियों' के बारे में कहते हुए पाते हैं। जब स्वयं जीसस का ही कोई अस्तित्व न था, तब उसके पट्ट-शिष्यों का तो प्रश्न ही नहीं उठता, क्योंकि जब कोई राजा ही नहीं है, तब उसका (राज) दरबार कहाँ से आएगा?

सुसमाचार (ग्रन्थों) के बारे में डूरण्ट ने आगे कहा है "रूढ़िवादी प्राचीन परम्परा ने मैथ्यू के सुसमाचार (ग्रन्थ) को प्रथम, सबसे पहले समय का माना है। ईरेनियस ने इसे मूल रूप में हिब्रू अर्थात् अरेमाइक में रचित माना है किन्तु यह हमें मात्र यूनानी में ही प्राप्त हुआ है। चूँकि इस रूप में इसने प्रत्यक्षतः मार्क की नकल ही की है और सम्भवतः सूक्ति-संग्रह की भी, इसलिए समीक्षक इसे स्वयं मार्केदार की अपेक्षा मैथ्यू के किसी अनुयायी, शिष्य का यशस्वी-कार्य मानते हैं अर्थात् ईसा-पश्चात् ८५ से ९० वर्ष बाद का।"

ये सुसमाचार (ग्रंथ) जिन प्रयोजनों से लिखे गए होंगे, उनको बताते हुए विल डूरण्ट ने टिप्पणी की है कि, "यहूदियों को धर्म-परिवर्तित करने के उद्देश्य से मैथ्यू ने अन्य सुसमाचार लेखकों की अपेक्षा अधिक ही जीसस को यश दिए जानेवाले चमत्कारों पर विश्वास किया है, और वह संदेहास्पद रूप से यह सिद्ध करने के लिए उत्सुक है कि पुराने विधान की बहुत सारी भविष्यवाणियाँ क्राइस्ट (कृस्त) में ही पूरी हुई हैं।"[1]

सेंट लूके के सुसमाचार (ग्रंथ) के बारे में विल डूरण्ट ने लिखा है: 'इसे साधारणतः प्रथम शताब्दी के अन्तिम दशक की रचना माना जाता है (और यह) घोषित करता है कि इसकी इच्छा जीसस के पूर्ववर्ती वर्णनों को समन्वित करने और उनका समाधान प्रस्तुत करने की है तथा इसका उद्देश्य यहूदियों को धर्म-परिवर्तित करने का न होकर गैर-ईसाइयों का धर्मान्तरण करना है। बहुत सम्भावना है कि लूके स्वयं गैर-ईसाई था, पॉल का मित्र

१. 'सभ्यता की कहानी', खण्ड ३, पृष्ठ ५५५-५५६।

का और पट्ट शिष्यों के चरितों का लेखक था। मैथ्यू के समान ही उसने बहुत कुछ मार्क से ही लिया है। मार्क के प्राप्त पाठ में ६६१ पद्यों में से ६०० से अधिक मैथ्यू में उद्धृत हैं और लूके (के पाठ) में ३५० हैं जिनमें से अधिकतर शब्दशः ज्यों-के-त्यों हैं। लूके (के पाठ) के बहुत सारे अवतरण, जो मैथ्यू (के पाठ) में उपलब्ध हैं, और वे भी जो मार्क (के पाठ) में नहीं हैं, शब्दशः ज्यों-के-त्यों हैं।

"चौथा सुसमाचार (ग्रंथ)," विल डूरण्ट कहते हैं, "जीसस का आत्म-घोषित होने के विषय में कहता ही नहीं है। दिव्य-प्रतीक या शब्द, विश्व के सृजनहार और मानवता के उद्धारक के रूप में ब्रह्म, देव-विज्ञान की दृष्टि से क्राइस्ट (कृस्त) के प्रस्तुतीकरण का ही यह सुसमाचार (ग्रंथ) है। यह मैथ्यू के विवरणों में सहदर्शी सम्प्रदायों का और क्राइस्ट (कृस्त) के निरूपण का सामान्य रूप में खण्डन करता है। इस ग्रंथ की रचना अर्द्ध-गूढ़ ज्ञानवाद वैशिष्ट्य और अतिमूलक विचारों पर इसका आग्रह अनेक कृस्ती विद्वानों को इस बात पर शंका करने के लिए प्रेरित कर चुका है कि इसका रचनाकार पट्ट-शिष्य जाह्न था।"[1]

विल डूरण्ट की पुस्तक की एक पाद-टीप में कहा गया है कि, "सन् १८९७ और १९०३ में ग्रेनफाल और हट को मिस्र देश के आक्सीथिनकस खण्डहरों में सूक्ति-संग्रह के १२ भाग मिले थे जो सुसमाचार (ग्रंथों) के अवतरणों से थोड़े तौर पर मिलते-जुलते थे। वे पटेरा-पाठ तीसरी शताब्दी से पहले नहीं हैं किन्तु सम्भव है कि ये किन्हीं अति प्राचीन पाण्डुलिपियों की नकलें प्रतिकृतियाँ हों।"

इन तथाकथित सुसमाचार-ग्रंथों के सम्बन्ध में अपने निष्कर्षों का सार प्रस्तुत करते हुए विल डूरण्ट तर्क प्रस्तुत करते हैं: "यह स्पष्ट है कि एक सुसमाचार (ग्रंथ) और दूसरे अन्य सुसमाचार (ग्रंथों) में बहुत सारे विरोध, असंगत मौजूद हैं, इतिहास के अनेक अनिश्चित, अस्पष्ट, द्वि-अर्थक कथन हैं गैर-यहूदी गैर-ईसाई देवताओं के बारे में कही जानेवाली कथाओं जैसी अनेक संदेहास्पद समानताएँ हैं, अनेक प्रसंग हैं जो प्रत्यक्ष रूप में प्राचीन

---

1. 'सभ्यता की कहानी', खण्ड ३, पृष्ठ ५५७।

विधान की भविष्यवाणियों को पूरा करने की दृष्टि से, उद्देश्य से ही घड़े गए हैं, अनेक अवतरण हैं जो सम्भवतः किसी परवर्ती सिद्धान्त या गिरजाघर (चर्च) के कर्मकाण्ड के निमित्त ऐतिहासिक आधार स्थापित करने के उद्देश्यवाले हैं...अनुमानतः सुसमाचार (ग्रंथों) में बताए गए वार्तालाप और भाषण अशिक्षित, अनपढ़ स्मृतियों की कमजोरियों तथा नकल, प्रतिलिपियाँ तैयार करनेवालों की त्रुटियों या पाठ-संशोधन का परिणाम थे।"

इस प्रकार विल डूरण्ट सुसमाचार-ग्रंथों को संदिग्ध, संशयात्मक रचनाएँ मानने में सही, ठीक हैं। सर्वप्रथमतः यदि जीसस के अभ्युदय का भविष्य कथन हो चुका था, जैसा सामान्यतः विश्वास किया जाता है, साग्रह कहा जाता है, तब तो जीसस के जन्म से लेकर उसकी मृत्युपर्यन्त तत्सम्बन्धी एक अनवरत समकालीन लेखा-वर्णन होना चाहिए था। दूसरी बात ऐसा विवरण अन्य विवरणों से पर्याप्त मात्रा, अंश में भिन्नता, मेल खाना चाहिए था। तीसरी बात, उनमें जीसस के जीवन का काफी वर्णन और उसकी शिक्षाएँ अंकित होनी चाहिए थीं जो उनमें नहीं हैं।

आइए, हम कुछ असंगतियों और प्रक्षिप्तांशों का विवेचन करें। जीसस के समय (?) प्रचलित यहूदी-परम्परा के अनुसार, तुम्हारा साम्राज्य आने पर पृथ्वी पर तुम्हारे साथ वैसा ही व्यवहार होगा जैसा स्वर्ग में होता है।" किन्तु जैसी कल्पना है कि जीसस का जन्म हुआ वह जीवित रहा और मृत्यु को भी प्राप्त हो गया किन्तु विश्व ने कोई नेत्रानंदकारी, उल्लेख योग्य परिवर्तन न देखा। इसीलिए जोह्न के सुसमाचार (ग्रंथ) में जीसस से कहलाया गया है : "मेरा साम्राज्य विश्व का साम्राज्य नहीं है।" कई अवसरों पर जीसस के शब्द विशुद्ध और निष्पाप प्रवृत्ति द्वारा प्राप्त आत्मा के साम्राज्य की ओर इंगित करते हैं, यथा—'ईश्वर का साम्राज्य तुम्हारे अन्दर ही है।' यदि यह सत्य है तो व्यक्ति को जीसस के प्रति निष्ठा घोषित करने की क्या आवश्यकता है और एक कृस्ती के रूप में बपतिस्मा कराने की जरूरत क्या और क्यों?

एक भिन्न सन्दर्भ में क्राइस्ट ईश्वर का साम्राज्य एक ऐसे भावी समाज के रूप में वर्णन करता है जहाँ उस (जीसस) के पट्ट शिष्य शासक होंगे और अन्य जिन्होंने जीसस के लिए यातनाएँ भोगी थीं या अपना बलिदान किया

पुरस्कृत किया जाएगा।
या उनको पर्याप्त रूप से पुरस्कृत किया जाएगा, अति शीघ्र ईश्वर का साम्राज्य
मुसमाचार (ग्रंथों) में कुछ स्थानों पर, अति शीघ्र ईश्वर का साम्राज्य
स्थापित हो जाने का वचन, आश्वासन दिया गया है जैसे "मैं अंगूर की
बेल का फल और अधिक तब तक नहीं पियूंगा जब तक कि ईश्वर का
साम्राज्य नहीं हो जाता" जब तक मानव-पुत्र नहीं आ जाता, तुम इस्रायल
नगर नहीं जाओगे।"

कुछ अन्य अवतरणों में ईश्वर के साम्राज्य का अभ्युदय स्थगित कर
दिया जाता है जैसे इसमें : "यहाँ कोई ऐसी अवधि होनी चाहिए जहाँ तब
तक मृत्यु नहीं होनी चाहिए जब तक कि साम्राज्य में मानव-पुत्र का पदार्पण
न हो जाए ' यह पीढ़ी तब तक उद्धार नहीं पा सकती जब तक ऐसी सब
बातें न हो जाएँ।"

अन्य स्थानों पर स्वर्ग का साम्राज्य कुछ ऐसी अनिश्चित रूप में अनु-
पलब्धनीय वस्तु के प्रतीक की भांति प्रस्तुत की जाती है जैसे जीसस अपने
पट्ट-शिष्यों को चेतावनी देते हैं : "उस दिन और घड़ी का किसी मनुष्य को
पता नहीं रहेगा, स्वर्ग में देवदूतों को भी नहीं, ईश्वर के अतिरिक्त उसके
प्रिय पुत्र को भी नहीं।"[1]

इस प्रकार सुसमाचार (ग्रंथ) बदलती हुई आवश्यकताओं और उनके
लेखकों की चित्तवृत्ति के अनुसार बदलते रहते हैं। कृस्ती-पंथ नामक नए
आस्था-बिन्दु (धर्म, पंथ) को प्रारम्भ करने में प्रारम्भिक नेताओं को जिन
परिस्थितियों का सामना करना पड़ा, उनका समाधान करने के लिए एक
काल्पनिक जीसस के द्वारा अपने मतों, तर्कों को कहलवा दिया गया है—
जीसस के शब्दों में अपनी बातें कह दी हैं।

कई बार जीसस से यह भी कहलवाया गया है कि (प्रभु के) साम्राज्य
का अभ्युदय मानव के ईश्वर और न्याय के प्रति अभिमुखी हो जाने की शर्त
पर ही हो सकता।

वर्तमान सुसमाचार-ग्रंथ किसी भी सामाजिक राजनीतिक विचारधारा
के समर्थन में विशदरूपेण व्याख्येय बने हुए हैं। साम्यवादी लोग भी जीसस

---

[1] 'सभ्यता की कहानी', खण्ड ३, पृष्ठ ५५६।

को एक साम्यवादी प्रचारक के रूप में उद्धृत कर सकते हैं जिसके स्वर्ग का
साम्राज्य एक साम्यवादी आदर्श राज्य का प्रतिनिधित्व करता है क्योंकि
जब एक युवा व्यक्ति ने जीसस से यह पूछा कि वह धर्मोपदेशों का पालन
करने के साथ-साथ और (अन्य) कौन-सा कार्य करे तो जीसस ने उसे
परामर्श दिया बताते हैं कि, "अपनी सम्पत्ति बेच दो, अपनी धन-दौलत
गरीबों को दे दो, और मेरा अनुसरण करो।"

इसके विपरीत, ड्यूरण्ट का कहना है : "एक रूढ़िवादी भी नव-विधान
को उद्धृत कर सकता है" "मैथ्यू द्वारा क्राइस्ट एक ऐसा मित्र बना लिया
जाता है जो रोमन-सत्ता का एक अधिकर्ता बना रहा; उसने नागरिक
सरकार की कोई आलोचना नहीं की, उसने राष्ट्रीय एकीकरण के लिए
यहूदी-आन्दोलन में कोई भाग नहीं लिया और समर्पण करनेवाली सज्जनता
का परामर्श दिया जिसमें से किसी भी प्रकार से राजनीतिक क्रांति प्रकट
नहीं हो रही थी। उसने फरीसी, पाखण्डियों को परामर्श दिया कि सीज़र
की सभी वस्तुएँ सीज़र को दे दी जाएँ और ईश्वर की वस्तुएँ ईश्वर को
समर्पित कर दी जाएँ। उसकी, उस मनुष्य की कथा में ब्याज या गुलामी के
खिलाफ कोई शिकायतें नहीं हैं जिसमें वह व्यक्ति प्रवास पर जाने से पूर्व अपने
गुलामों को बुलाता है और अपनी सम्पत्ति उनके हाथों में सौंप जाता है।
वह (जीसस) इन संस्थानों को ज्यों-का-त्यों स्वीकार कर लेता है। क्राइस्ट
प्रत्यक्षतः उस गुलाम को ठीक, सही समझता है जिसने मालिक द्वारा दिए
गए १० मीनास ($ ६००) को धनार्जन हेतु व्यय कर दिया और दस और
कमा लिए थे। वह उस गुलाम की भर्त्सना करता है जो एक मीनास सहित
होने पर भी मालिक की कमाई के खिलाफ उस धन को अनुत्पादक तिजोरी
में सुरक्षित रख देता है। वह मालिक के मुख से कठोर वचन कहलवाता है
कि : "जिसके पास कुछ है, उसे और भी अधिक दिया जाएगा, तथा उससे
जिसके पास कुछ भी नहीं है, वह भी उससे छीन लिया जाएगा जो उसके
पास थोड़ा-सा भी है। एक अन्य दृष्टान्त, नीति-कथा में श्रमिक, कर्मचारी
'उस नियोक्ता पर झुंझला रहे थे' जिसने एक घंटा-भर काम करनेवाले
कर्मचारी को भी उतना ही भुगतान कर दिया था जितना दिन-भर कठोर
श्रम करनेवाले को। क्राइस्ट नियोक्ता से उत्तर दिलवाता है : "क्या ऐसा

अनेक कथन अधिक प्राचीन प्रतीत होते हैं और इसलिए उक्त सुसमाचार-
ग्रंथ को प्रथम शताब्दी के उत्तरकालीन भाग की रचना माना जाता है।
तथापि तीसरी और चौथी शताब्दियों के कृस्ती रूढ़िवादी तत्त्वों द्वारा उक्त
सुसमाचार-ग्रंथ को नवविधान से पूरी तरह बाहर रखा गया था। टामस के
सुसमाचार-ग्रंथ में जीसस की मृत्यु या उसके पुनर्जीवित होने की कोई चर्चा,
कोई संकेत नहीं है, उल्लेख नहीं है। यह जीसस के कथनों का यूँ ही, निरु-
द्देश्य बेतरतीब संकलन है। किन्तु इसमें संगृहीत लगभग ११४ कहावतों,
नीति-कथाओं और अन्य कथनों में से आधे लूके, मैथ्यू और मार्क के
सुसमाचार-ग्रंथों में सम्मिलित किए गए हैं। किन्तु इन सभी का श्रेय जीसस
को दिया गया है क्योंकि वे तो पॉल और प्रारम्भिक कृस्ती नेताओं द्वारा
उस समय कहे गए थे जब वे अपना पृथक्तावादी समूह संगठित कर रहे
थे। यह संक्षिप्त विवरण हमारी इस खोज को पुष्ट करता है कि जीसस की
कथा तथ्य रूप में, पॉल की कथा ही है। अतः बाइबल का नायक जीसस
न होकर पॉल ही होना चाहिए।

टामस, मैथ्यू, मार्क, लूके और जोह्न के पाँच सुसमाचार ग्रंथों के साथ-
साथ पीटर द्वारा रचित एक अन्य सुसमाचार-ग्रंथ भी है। "यह मिस्र देश में
फ्रांसीसी पुरातत्त्वविदों द्वारा सन् १८८६ में नील (नदी) के ऊपरी भाग में
अखमीम उपनगर के निकट एक प्राचीन कब्र में पाया गया था। पीटर का
यह सुसमाचार-ग्रंथ चर्मपत्र की एक प्राचीन पाण्डुलिपि है जो ईसा-पश्चात्
१३० के आसपास लिखी गई थी। यह धर्म-विधानी सुसमाचार-ग्रंथों से २१
बातों में भिन्न है। यह ग्रंथ कहता है कि हीरोड—यहूदी नहीं, पीलेट नहीं
बल्कि हीरोड ही जीसस को फाँसी देने के लिए जिम्मेवार था। इसमें यह
भी कहा गया है कि जीसस पर अधिकार किए हुए १०० सैनिकों का कप्तान
(केन्द्र) पेट्रोनियस नामवाला था⋯न केवल यह सत्य, वास्तविकता है,
बल्कि जस्टिन मार्टियर, जो ईसा-बाद १३० में कृस्ती धर्मान्तरित हो गया
था हमें बताता है कि उन दिनों में जब इसे पढ़ा जा रहा था, तब पीटर-
सुसमाचार-ग्रंथ अन्य के चारों सुसमाचार-ग्रंथों से अधिक सम्मानित,
आदरित, प्रशंसित था। तथापि, जब चौथी शताब्दी में नव-विधान का
संकलन किया गया, तब पीटर-सुसमाचार-ग्रंथ को स्वीकार, सम्मिलित

नहीं किया गया, इसे अलग—दूर कर दिया गया, प्रक्षिप्त अंश कहकर
अवनत, निन्दित किया गया—अर्थात् इसे अ-प्रामाणिक, अमान्यकृत करार
दिया गया।"[1]

यह तथ्य हमारी इस खोज, मान्यता को पूरी तरह पुष्ट करता है कि
नव-विधान तथा वास्तविक रूप में सम्पूर्ण बाइबल ही कहीं की ईंट, कहीं
का रोड़ा का मनचाहा पिटारा, संकलन है जो नई-नई स्थापित धार्मिक
तंत्र, प्रणाली के तत्कालीन सत्ताधारियों की पसंदगी पर निर्भर करता था।

पिछली कुछ शताब्दियों में नव-विधान के विद्वानों और धर्मशास्त्रियों
ने जीसस के काल्पनिक जीवन की रूपरेखा में रिक्त स्थानों को प्रथम
शताब्दी में जीवन पर दृष्टिपात करके और उसको सैद्धान्तिक रूप प्रदान
करके भरने का अति कठोर श्रम किया है।

---

१. 'सभ्यता की कहानी', पृष्ठ ५५७।

अध्याय १२

बाइबल—बड़ा भारी व्यापार

बाइबल का प्रकाशन करना और उसकी बिक्री करना तथा इसको पढ़ना व प्रचारित करना सदियों से अरबों-खरबों डॉलरवाला एक व्यापार बन गया है जिसका लाभ मुद्रकों, प्रकाशकों, विज्ञापनदाताओं, प्रचार-माध्यम व्यक्तियों, पुस्तक-विक्रेताओं, कागज-व्यापारियों, सम्पर्क व्यक्तियों, पुस्तकों की सजावट करनेवालों जिल्दसाजों, वाई एम सी ए, ईसाई मिशनों, निपिकों, पादरियों-पुरोहितों, धर्मशास्त्रियों, धर्म-प्रचारकों, गुप्तचरों, शिल्पशास्त्रियों, इतिहास लेखकों, उद्योगपतियों, गुप्त मंत्रालयों, राजनीतिज्ञों तथा व्यावहारिक रूप से उस हर एक व्यक्ति को हुआ है जो कृस्ती-विश्व में या कृस्ती-प्रधान संगठनों में कुछ भी—महत्त्वपूर्ण है।

इसका विरोध करने का या इसके ऐतिहासिक आधार का अभाव होने का भण्डाफोड़ करने का दुस्साहस करनेवाला हर व्यक्ति न केवल निन्दित, बहिष्कृत किया जाता है अपितु उसे नगण्य, निरर्थक बना दिया जाता है और उसका जीवनयापन का साधन भी छीन लिया जाता है तथा कानून के अधीन उसे कारावास भी भेज देने का उपाय कर लिया जाता है। इर्विंग वालेस द्वारा रचित 'दि वर्ड' शीर्षक उपन्यास का सारांश यही है।

उक्त उपन्यास में डॉक्टर स्टार्नहिल को, जो अमरीकी बाइबल सोसायटी के प्रतिनिधि हैं, यह कहते हुए उद्धृत किया गया है : "संयुक्त राज्य में व्यावहारिक रूप में हर एक चर्च (गिरजाघर) हमारे कार्य का समर्थन करता है और हमारे आय-व्ययक (बजट) में अपना योगदान करता है। हमारा मुख्य व्यवसाय बाइबलों का वितरण करना है। हर वर्ष हम सदस्य-गिरजाघरों को धर्मग्रन्थों की प्रतियों की आपूर्ति करते हैं, जो बिना टिप्पणियों या बिना समीक्षाओं के ही छापी जाती हैं। हम बाइबल या उसके सारांशों को विश्व की विभिन्न बारह सौ भाषाओं में छापते हैं। अभी हाल ही में एक ही वर्ष में यूनाइटेड बाइबल सोसायटी के साथ मिलकर हमने सारे विश्व में एक ही साल में १५,०० ००,००० (पन्द्रह करोड़) प्रतियाँ (इन धर्मग्रन्थों की) बाँटी थीं।"[1]

संयुक्त राज्य में प्रोटेस्टैण्ट पूर्वी आर्थोडोक्स, कैथोलिकस व तमाम गिरजाघर आयोगों के लिए 'राष्ट्रीय गिरजाघर परिषद्' सरकारी अभिकरण है। अमरीका में कोई भी नया बाइबल संस्करण बिना इसकी सहायता सफल नहीं हो सकता।

बाइबल प्रकाशकों और उनके बिक्री संगठनों द्वारा प्राप्त किए जाने-वाले अति प्रचुर लाभों के अतिरिक्त सभी कृस्ती-देश कृस्ती धार्मिक संगठनों को जीवन्त, स्पन्दनशील और सुख-सम्पन्न बनाए रखने के लिए विशाल धन-भण्डार प्रदान करते हैं ताकि उन संगठनों के माध्यम से कृस्ती जासूस, कृस्ती पादरियों-पुरोहितों के वेश में सम्पूर्ण विश्व में घुसपैठ कर सकें।

'टाइम्स ऑफ़ इण्डिया' के १३ दिसम्बर, १९७५ के अंक में वाशिंगटन से भेजी गई एक प्रकाशित रिपोर्ट में कहा गया था : "सिनेटर मार्क हैटफ़ील्ड द्वारा कल जारी किए गए समाचार के अनुसार फोर्ड प्रशासन की योजना है कि समुद्र-पार के देशों में जानकारियाँ प्राप्त करने हेतु केन्द्रीय गुप्तचर एजेन्सी (सी० आई० ए०) के कार्यों में सहायता हेतु पादरियों का उपयोग जारी रखा जाए।

"श्री हैटफ़ील्ड ने कहा कि वे आगे कार्रवाई पर रोक लगाने के लिए सोमवार को कानूनी कार्रवाई करेंगे। 'जब हम विदेशों में या अपने ही देश में धार्मिक क्षेत्र में काम करनेवाले धर्म-प्रचारकों को राजनीतिक और गुप्तचरी के कार्यों में लगाने हेतु सी० आई० ए० या अन्य सरकारी अभिकरण के उपयोग की अनुमति देते हैं,' श्री हैटफ़ील्ड ने वक्तव्य में कहा, 'तब हम गिरजाघर का उद्देश्य रोक देते हैं और संयुक्त राज्य की विदेश नीति तथा विश्वसनीयता पर कलंक, प्रश्नचिह्न लगा देते हैं।'

"श्री हैटफ़ील्ड ने अगस्त मास में सी० आई० ए० के निदेशक विलियम

---

१ इर्विंग वालेस रचित 'दी वर्ड', पृष्ठ ८२-८३।

कोलबी को और सितम्बर में राष्ट्रपति फोर्ड को इन गतिविधियों को रोक देने के लिए पत्र लिखे थे।

"श्री कोलबी ने उत्तर दिया कि विदेशी और स्थानीय दोनों ही प्रकार के पादरी पुरोहित एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं और सी० आई० ए० के माध्यम से संयुक्त राज्य के लिए सहायक सिद्ध हो सकते हैं तथा ऐसा करने से उनकी निष्ठा व उनके धर्मोद्देश्य पर भी कोई आँच नहीं आएगी।" उन्होंने कहा, "एक निरकुंश प्रतिबन्ध तो गलती होगी और अभिकरण के लिए बाधक होगा जिससे उसकी प्रभावकारिता उस हद तक घट जाएगी जो परिस्थितियों की वास्तविकताओं के अनुसार उचित नहीं होगी।"

[illegible] स्वतन्त्रता सेनानी समिति, बम्बई के सचिव श्री मुसोलिनी [illegible] पत्रिका के मार्च १९७८ के अंक में लिखा था कि, "[illegible] राष्ट्रीय संस्थाओं के अस्थिर करने की गतिविधियों व सी० आई० ए० के साथ दुरभि-सन्धि करना, उनके षड्यन्त्र में शामिल हो जाना राष्ट्रीय गौरव का अपमान और स्वतन्त्रता-सेनानियों के [illegible] बलिदानों को पैरों तले कुचल देना है। सरकार को विदेशी धर्म-प्रचारकों और उनके साथ सम्बन्धित स्थानीय पादरियों की इन कार्रवाइयों पर रोक लगानी चाहिए।"

बम्बई की साप्ताहिक पत्रिका 'ब्लिट्ज़' ने अपने ११ सितम्बर, १९७६ के अंक में कलकत्ते की खबर देते हुए लिखा था कि, 'तराई के हिमालयी पहाड़ी क्षेत्र में नक्सलबाड़ी के चारों ओर जहाँ माओ-उग्रवाद ने नौ वर्ष पहले जन्म लिया था खतरनाक परिणामों सहित विदेशी ईसाई धर्म-प्रचारकों की गतिविधियों में अचानक बढ़ावा आ गया है। कूटनीतिक माध्यमों से भेजे हुए धन, रुपया-पैसा अन्धाधुन्ध पानी की तरह बहाया जा रहा है। दिखावटी प्रत्यक्ष राहत-कार्य और गरीबों व जरूरतमंदों की सहायता के हेतु [illegible] दावतें आयोजित की जाती हैं जहाँ आमोद-प्रमोद के लिए सेना के अधिकारियों को आमन्त्रित किया जाता है।"

जब संयुक्त राज्य अमरीका भी जो तुलनात्मक रूप से एक नया राष्ट्र रहा है, अन्तर्राष्ट्रीय जासूसी-गुप्तचरी के लिए कृस्ती-गिरजाघर (चर्च) का भरपूर उपयोग कर रहा है तो यह प्रत्यक्षतः स्पष्ट, स्वयंसिद्ध है कि इसने

किसी/किन्हीं पुराने बुजुर्ग कृस्ती राष्ट्रों से ही संकेत/मनोभाव ग्रहण किया है।

अमरीकी सी० आई० ए० प्रधान द्वारा राजनीतिक गुप्तचरी के उद्देश्य से कृस्ती गिरजाघर और उसके कर्मचारियों का उनको सौंप गए विदेशों में उपयोग किया जाना पूर्णतः सहज, स्वाभाविक कहा जाना, आश्चर्यचकित करनेवाला नहीं है। श्री कोलबी ऐसा कहते हुए प्रतीत होते हैं कि कृस्ती-गिरजाघरों को अन्य प्रकार की कोई उपयोगी भूमिका निभाने के लिए है ही नहीं। चूँकि कोई जीसस हुआ ही नहीं, इसलिए कोई ऐसा वास्तविक धार्मिक सन्देश है ही नहीं, जिसे विश्व को देना हो या उसका प्रचार करना हो। यदि इसे कोई प्रत्यक्ष या उपयोगी कार्य ब्रह्म-विज्ञानी, धार्मिक और आध्यात्मिक क्षेत्र में करना ही नहीं है, तो किस बात की नुक्ताचीनी करना यदि अपने भयंकर, भयोत्पादक ताने-बानेवाला, चुपचाप और निष्ठापूर्वक कार्य करने के लिए प्रशिक्षित विपुल जन-शक्तिवाला और अपने विशालकाय वित्तीय स्रोतों-साधनोंवाला यह महाकाय गिरजाघर (चर्च)-सम्स्थापना देशभक्तिपूर्ण गुप्तचरी में, विशेष रूप से गैर-कृस्ती देशों में काम में लाई जा रही है?

श्री कोलबी द्वारा बलपूर्वक अभिव्यक्त विचार की प्रत्यक्षतः पुष्टि पश्चिमी विश्व के कृस्तियों की विशाल बहुसंख्या करती है। यह इस तथ्य से साफ है कि वे सरकारी गुप्तचरी हेतु चर्च-संस्थापना के उपयोग को न केवल अपनी मौन स्वीकृति ही देते हैं बल्कि बहुत बड़ी धनराशि जमा करते रहते हैं जिससे अन्य अनेक कृस्ती संगठनों को चलाए रखा जाए, उन्हें जन्म देते रखा जाए व पुष्ट, समृद्ध करते रहा जाए।

कृस्ती जनता द्वारा इस प्रकार की पुष्टि, समर्थन से दो उद्देश्यों की पूर्ति होती है—अर्थात् धर्म-परिवर्तन व गुप्तचरी। कृस्ती देशों की जनता व वहाँ के प्रशासक इससे अधिक और क्या चाह सकते थे?

तथापि किन्हीं विरले अवसरों पर इन ईसाई-धर्म-प्रचारकों को मुँह की भी खानी पड़ी थी और उनका पासा पूरी तरह पलट गया था। १९वीं शताब्दी के प्रारम्भ में बपतिस्मी धर्म-प्रचारकों के एक समूह ने कलकत्ते में धर्म-परिवर्तनकारी अपनी गतिविधियाँ प्रारम्भ कीं। उन्होंने एक अति सनातन संस्कृत विद्वान् राजा राममोहन राय को प्रलोभित करने का प्रयत्न

किया। विलियम येट्स इस कार्य के प्रमुख थे। दो धर्म-प्रचारकों —रेवरेंड विलियम ऐडम और येट्स को काम सौंपा गया कि वे राजा राममोहन राय को घेरने-घारने का प्रयास करें और उसको कृस्त-पंथ अंगीकार कर लेने पर [illegible] कर दें। वे दोनों ही राजा राममोहन राय को सताना और इस बात पर विवश करना जारी रखे रहे कि वे उनसे कृस्त देव-विज्ञान सम्बन्धी चर्चा विचार-विमर्श प्रकट करें। किन्तु राजा राममोहन राय को प्रलोभित करने के स्थान पर स्वयं ऐडम ही उनकी श्रेष्ठता का कायल हो गया। सन १८२६ में अपने मित्र एन० राइट को लिखे एक पत्र में ऐडम ने अपराध स्वीकृति की थी कि वह स्वयं ही कृस्ती-पंथ और कृस्त (क्राइस्ट) को त्याग चुका था। इसके स्थान पर वह अब वेदान्तवाद के प्रचार में जुट गया था। ऐडम ने लिखा "मैं राजा राममोहन राय को अपने धार्मिक मत, सिद्धान्त के प्रति विश्वास दिलाने के लिए उनके साथ बार-बार चर्चाएँ करता था जिनमें श्री येट्स भी मेरे साथ होते थे। श्री राय द्वारा सुझाए गए जीसस क्राइस्ट के बारे में कुछ सन्देहों को कई मासों से मैं भी अनुभव करने लगा हूँ और श्री येट्स को भी इस विषय में कठिनाइयाँ अनुभव होने लगी हैं। मुझे यह मानने, स्वीकार करने में लेशमात्र भी संकोच नहीं है कि मैं अपने सिद्धान्त, मत के बारे में प्रस्तुत किए गए उन वजनदार एतराजों को दूर करने में असफल रहा हूँ जो इसके पक्ष में दिए गए तर्कों की तुलना में, मुझे [illegible] मालूम पड़ते हैं।"[1]

यद्यपि ऐसे मौके, अवसर विरले ही थे जब कोई प्रभावशाली भारतीय, [illegible] जैसे शाही कृस्ती-मतान्तरण के उन प्रयत्नों को चुनौती दे सका, उन्हें विफल कर सका जिनमें पहले उक्त व्यक्ति को एक कृस्ती के रूप में दीक्षित किया जाए और फिर उसका उपयोग एक अभिकरण, माध्यम के रूप में किया जाए। बहुत ही नगण्य, विरले लोगों में अति सूक्ष्म किन्तु निरन्तर हानिकारक शाही धार्मिक प्रहारों को विफल कर सकने की इच्छा-शक्ति, दृढ़ता और विद्वत्ता होती है।

1 मिस सोफिया कालेट लिखित 'राजा राममोहन राय का जीवन और पत्र' पृष्ठ ६८

जीसस कभी सचमुच हुआ था या नहीं—इस तथ्य से उनकी व्यापारिक बुद्धिवाले व्यक्ति को कोई लेना-देना नहीं। वे बाइबल को चिरस्थायी बिकनेवाली पुस्तक और इसीलिए गारंटीशुदा धनोत्पादक वस्तु समझते हैं। युद्धोपरान्त ध्वस्त जर्मनी के कई व्यापारी-वर्ग बाइबल-मुद्रण और विक्रय द्वारा धनार्जन में लग जाने हेतु सहभागी हो गए। एक जर्मन व्यापारी हेलिंग ने कहा बताते हैं "उत्तरजीविता, जीवित बने रहने की भाषा धन, कठोर (श्रम से अर्जित धन) और बहुत सारा धन है। मैं बाइबल-मुद्रण के कार्य में सिर्फ इसीलिए गया, लगा क्योंकि बाइबलों के लिए बहुत बड़ा बाजार उपलब्ध है। इस क्षेत्र में बहुत धन, बहुत अधिक धन और कीमती/महँगी बाइबलों में बहुत अधिक लाभ थे।"[1]

चूँकि बाइबल मुद्रण और विक्रय एक गारंटीयुक्त धन-अर्जक है जब तक कृस्ती-पंथ चलेगा, इसलिए इस घालमेल में जिसकी भी कुछ सत्ता है, वह नई रुचि उत्पन्न कर बाइबल की बिक्री बढ़ाने के लिए कोई-न-कोई नई खोज कर चुकने की मनगढ़न्त बातों की सृष्टि करते रहते हैं।

ऐसा प्रत्येक संस्करण लाखों/करोड़ों की संख्या में गिरजाघरों, मठ-वासिनियों, मठों, अध्ययन-दलों, समितियों, संघों, संगठनों, निजी घरों, अनाथालयों, सरकारी अभिकरणों और पुस्तकालयों को या उनके माध्यम से बेचा जाता है। उदाहरण के लिए, हालैंड में 'डच रिफोर्म्ड चर्च' नाम से एक ऐसा ही संगठन है। दूसरी ओर, दि रैडिकल रिफोर्म क्रिश्चियन मूवमेंट (आर० आर० सी० एम०) ने अपनी शाखाओं का जाल सारे विश्व में फैला रखा है।

बाइबल प्रकाशन की पृष्ठभूमि में उद्देश्य "घृणित और पापपूर्ण, दोनों ही हैं"। प्रकाशकों का प्रयोजन तो मात्र, शुद्ध लाभार्जन ही है। रूढ़िवादी धर्मशास्त्रियों के लिए प्रयोजन है लाखों/करोड़ों लोगों का ध्यान सामाजिक सुधार से हटाना, उनको सम्मोहित या भयाक्रान्त करके कर्मकांडी रहस्य-वादी स्वप्निल गिरजाघर (चर्च) की पुरानी निराशाजनक स्थिति में वापस

1 मिस सोफिया कालेट लिखित 'राजा राममोहन राय का जीवन और पत्र', पृष्ठ १५५।

पहुँचा देना।"[1]

"डच रिफोर्म्ड चर्च के सदस्य लगभग पचास लाख प्रोटेस्टैण्ट १९४६ वर्चयालों के माध्यम से ग्यारह प्रान्तों में बिखरे हुए हैं। वे धर्मसभा के लिए ५४ प्रतिनिधि चुनते हैं।

जिनेवा स्थित विश्व गिरजाघर परिषद् ९० राष्ट्रों से २३० प्रोटेस्टैण्ट ऑर्थोडोक्स (रूढ़िवादी), एंग्लीकन गिरजाघरों से निर्मित, संगठित है। इन गिरजाघरों के विश्व-भर में ४०,००,००,००० (चालीस करोड़) सदस्य हैं। रोम से बाहर यह विश्व परिषद् ही एकमेव धार्मिक संगठन है जो वेटिकन के समतुल्य कुछ सत्ता और नियन्त्रण रखता है। फिर भी, सन् १९४८ में लन्दन में इसकी स्थापना, रचना होने के बाद से आज तक यह किसी भी प्रकार वेटिकन से नहीं मेल खाती…भिन्न-भिन्न सामाजिक और जातीय पृष्ठभूमियोंवाले, अन्तर-गिरजाघर संवाद चाहनेवाले, कृस्ती-एकता की आकांक्षा रखनेवाले आस्था-विश्वास और सामान्य सामाजिक कार्य के लिए सहमति का यत्न करनेवाले अलग-अलग गिरजाघरों की यह परिषद् एक ढीली-ढाली असंगठित संस्था, संगठन है। इसकी तीसरी धर्म-सभा भारत में हुई थी। इसकी सभाएँ हर पाँचवें या छठे वर्ष होती हैं। इस बीच इसकी नीतियों का अनुपालन एक केन्द्रीय समिति और एक कार्यकारिणी समिति द्वारा किया जाता है। इस संगठन में दो सर्वाधिक सक्रिय पद, स्थान महामंत्री (जनरल सेक्रेटरी) और अध्यक्ष के हैं। महामंत्री पूर्णकालिक, सवेतन पद है जबकि अध्यक्ष अवैतनिक पद है। इस जोड़े में से महामंत्री, जो जिनेवा-स्थित ३०० कर्मचारियों का प्रमुख, शीर्षस्थ है, जो सदस्य-गिरजाघरों के बीच सम्पर्क अधिकारी होता है, जो परिषद् की ओर से बाह्य संसार, विश्व से कुछ कहता, करता है—इसी महामंत्री का प्रभाव अधिक है।"[2]

1. इर्विंग वालेस रचित 'दि वर्ड', पृष्ठ ५००।
2. वही, पृष्ठ २०१-२०२।

अध्याय १३

बाइबल : छवि और प्रोत्साहन

जैसा हमने अभी तक स्पष्ट किया है, चूँकि जीसस-कथा का कोई ऐतिहासिक आधार नहीं है, इसलिए कृस्ती-विश्व ने अपने अनुयायियों की संख्या में कमी के कारण इस मरणासन्न पथ को आवधिक नव-प्रचार द्वारा जीवित, सचेष्ट रखने की जरूरत को समझा, अनुभव किया है। फिर भी एक समय के बाद, ऐसे प्रोत्साहनों-प्रचार-विज्ञापनों के होते हुए भी जन-आस्था कम होने लगती है और एक बार फिर प्रचार-युद्ध की आवश्यकता प्रतीत होती है जो कृस्ती-पथ के प्रचार-प्रसार के लिए अत्यन्त सहायक उपयोगी सिद्ध होती है।

आश्चर्य की बात तो यह है कि इस प्रवीणता, पटुता की कोई कमी नहीं है। आधुनिक विश्व पर प्रभुत्व करनेवाले कृस्ती-प्रशासन समय-समय पर कोई कफन या कब्र या पटेरा या संकेत यहाँ या वहाँ मिल जाने की नई-नई कहानियों को प्रेरित, प्रचारित करने के लिए पर्याप्त धन-स्रोतों की व्यवस्था कर लेते हैं। ऐसा महसूस किया जाता है कि इस प्रकार के प्रचार-कौतुक नए धर्म-परिवर्तितों की आस्था को पुन: प्रतिष्ठित करते हैं और अन्य सहायक नए प्रत्युत्पन्न साक्ष्यों से पुराने अनुयायियों को जीसस की ऐतिहासिकता में विश्वास जमा देने का कार्य करते हैं। यह भी विचार है कि ऐसी प्रचार-प्रतियोगिताएँ गैर-कृस्ती विश्व की उत्सुकता भी जाग्रत् करती हैं और उनके ऊपर कृस्ती-पथ की जीवन-शक्ति, ओजस्विता का प्रभाव डालती हैं।

ऐसा ही एक आधुनिक प्रयास, जो सम्पूर्ण शोर-शराबे, आडम्बर और प्रारम्भ किए जाने के अवसर पर विशाल धनराशि व्यय किए जाने के बाद भी टाँय-टाँय फिस सिद्ध हुआ, इर्विंग वालेस द्वारा लिखित 'दि वर्ड' शीर्षक

उपन्यास का सार-तत्त्व है।

रोबर्ट लेब्टुन नामक एक खास व्यक्ति ने, यह जानते हुए कि जीसस की कथा को लेशमात्र आधिकारिकता भी प्रदान करनेवाला साक्ष्य कृस्ती-पंथ में निहित स्वार्थ रखनेवाले लोगों संगठनों से भारी रकम दिलवा सकता है, ऐसे एक नकली जाली झूठे साक्ष्य को प्रस्तुत करने का निश्चय, निर्णय कर लिया। धन बटोरने के अतिरिक्त लेब्टुन की मंशा धर्म के सभी छल-कपटों का बदला लेना भी था''' एक दयालु संरक्षक, त्राता के बारे में झूठी ... सहित। मैंने अपनी योजना बना ली''' सभी कृस्ती विक्रेताओं के विरुद्ध साघातिक प्रहार'''।[1]

लेब्टुन बताता है : "मेरी जालसाजी में हर धारणा, विचार किसी-न-किसी प्राचीन सूत्र पर आधारित था। ये वही सूत्र हैं जिन्होंने आजकल के ... और नव-विधान के विद्वानों को आकर्षित, प्रलोभित किया है कि वे क्राइस्ट के जीवन-प्रसंगों का पुनर्निर्माण कर सकें, निगमन और तर्क-मीमांसा द्वारा रिक्तियों को भर सकें, काल की पृष्ठभूमि की व्याख्या के माध्यम से और सिद्धान्त निश्चित करके सभी अभावों, शून्यों की पूर्ति कर सकें। आधुनिक बाइबल-विशेषज्ञ जानते हैं कि वर्तमान चार सुसमाचार-ग्रंथ तथ्यात्मक इतिहास नहीं हैं। ये चारों सुसमाचार-ग्रंथ इकट्ठे कर दिए गए मिथक काल्पनिक पात्रगण हैं। किसी गुम हुए सुसमाचार-ग्रंथ की खोज द्वारा ये चारों सुसमाचार-ग्रंथ स्वयं को सत्य सिद्ध हो जाने की अपेक्षा कोई अन्य चाहना करेंगे ही नहीं।"[2]

कई बार वे दो व्यक्ति "जो झूठ, अफवाह का साक्ष्य चाहते थे और जिन्होंने गिरजाघरों की भीतरी सड़ाँध व धर्म के घृणित, स्वार्थपूर्ण पक्ष का पर्दाफाश करने की दिल में कसमें खाई थीं'''पादरियों के अभिकरण, एजेण्ट जिनका ... सत्य को अपने नियंत्रण में लाने के लिए प्रयत्नशील थे व इस सत्य को सदैव के लिए दफना देना चाहते थे जिससे वे अपना मिथक, मिथ्यावाद सदा के लिए जीवित रख सकें।"[3]

---

१. इर्विंग वालेस रचित 'दि वर्ड', पृष्ठ ४५८-४५९।

२. वही, पृष्ठ ४६४।

३. वही, पृष्ठ ८६६।

स्वयं इस बीसवीं शताब्दी में भी, आधुनिक प्रचार-माध्यमों ने भिन्न-भिन्न अवसरों पर, बड़ी धूम-धाम, शोर-शराबे के साथ किसी-न-किसी नई बाइबल-सम्बन्धी उपलब्धि की घोषणा की है। किन्तु सूक्ष्म समीक्षा, जाँच-पड़ताल के बाद हर नई उपलब्धि को रद्द और विस्मृत कर दिया गया क्योंकि यह या तो नकली, अप्रामाणिक सिद्ध हुई अथवा इसने जीसस की ऐतिहासिकता या उसके जीवन से सम्बन्धित किसी घटना, प्रसंग के बारे में कोई पक्का प्रमाण प्रस्तुत नहीं किया।

इर्विंग वालेस का 'दि वर्ड' शीर्षक उपन्यास एक ऐसी ही आधुनिक उपलब्धि के प्रति समर्पित है जिसने विद्वानों, धर्म-पुरोहित-पादरियों और प्रकाशकों में काफी उत्तेजना उत्पन्न कर दी थी। वे इकट्ठे होकर पूर्ण गुप्त रूप से कार्य में जुट गए जिससे वे एक दिन अकस्मात् कृस्ती-विश्व को चकित, भौंचक्का कर दें उस माध्यम से, जिसे वे सोचते थे कि यह जीसस के अपने भाई की लिखित साक्षी थी। उपन्यास का नायक स्टीव रैनडल उक्त परियोजना में एक विज्ञापन, प्रचार विशेषज्ञ के रूप में प्रस्तुत किया गया है। किन्तु धीरे-धीरे वह सन्देह करने लगता है कि जीसस के अपने भाई द्वारा लिखित उक्त तथाकथित सामग्री भी आधुनिक जालसाजी हो सकती है। अन्य लोगों से भिन्न रैनडल, एक झूठी मनगढ़न्त खोज से बहुत धन कमा लेने के प्रलोभन पर नियन्त्रण कर लेता है। वह जालसाज से स्वयं अपराध स्वीकार करा लेने के बाद निश्चय करता है कि इस जालसाजी का भंडाफोड़ कर दिया जाए। किन्तु विद्वानों और पादरियों सहित भारी धन-भंडार उत्पादक-संघ के अन्य सदस्य उक्त नायक को जेल में ठूँस देने के लिए अन्य मार्ग अपनाते हैं, अपनी चालाकी से बाजी जीत जाते हैं और उसे ठग लेते हैं।

उक्त उपन्यास में इस तथाकथित उपलब्धि, खोज का वर्णन निम्न-लिखित शब्दों में किया गया है : "छः वर्ष पूर्व, रोम के विश्वविद्यालय के एक सर्वाधिक सम्मानित पुरातत्त्व-शास्त्री प्रोफेसर आगस्टो मोण्टी प्रथम शताब्दी में प्राचीन रोम के महान् व्यापारिक सागर-बन्दरगाह (समुद्रपत्तन) ओस्तिया के प्राचीन नगर के ध्वंसावशेष-ओस्तिया अटिका के निकट खोद रहे थे'''एक गहरी खुदाई में उनको प्राचीन रोमन विल्ला के ध्वंसावशेष

किन्तु ओसिरिया [illegible] के मामले से विश्व की जनता को इस सम्भावना के प्रति सतर्क जागरूक हो जाना चाहिए कि निहित स्वार्थवाले व्यक्ति 'प्राचीन लिखित वस्तु' की सृष्टि/रचना कर सकते हैं, प्राचीन स्थलों पर उन्हें आरोपित कर सकते हैं, फिर किन्हीं धर्म-ज्ञानियों को इनका भेद स्वयं दे सकते हैं और फिर कुछ-कुछ वर्षों के बाद बड़ी भारी उपलब्धि कर लेने की घोषणा भी कर सकते हैं। इस प्रकार के प्रस्फोटों, धमाकों के दो प्रयोजन हैं—धन कमाना और क्रुस्ती-पंथ को एक सजीव, प्रगतिशील धर्म के रूप में प्रस्तुत करना जिसके चारों ओर एक चमत्कारी प्रभामण्डल है ताकि अधिकाधिक जनता अपना धर्म-परिवर्तन कर ईसाई, क्रुस्ती बन जाए जिससे एक दिन विश्व-भर में क्रुस्ती-पंथ की बाढ़ आ जाए और जैसे इसने शक्तिशाली रोमन साम्राज्य को अपने में समा लिया, उसी प्रकार यह किसी दिन सम्पूर्ण विश्व को लील जाए, अपने में भस्मसात् कर ले। ऐसी सम्भावना से पूरी तरह इन्कार भी नहीं किया जा सकता।

आज हम्मादी खण्डों में ११४ कथन हैं जिनका श्रेय जीसस को दिया जाता है। स्पष्ट है कि ये कथन किसी व्यक्ति द्वारा जीसस के कल्पित काल के बाद शताब्दियों बाद आरोपित कर दिए गए थे।

एक अन्य प्राचीन क्रुस्ती धर्मग्रन्थ 'महान् बाइबल' (ग्रेट बाइबल) संस्करण समझा जाता है जो ईसा-पश्चात् ३५० के आसपास कोडेक्स वेटिकनस के नाम से लिखित व ज्ञात है। यह वेटिकन पुस्तकालय में रखा हुआ है। इसका उद्भव, मूल ज्ञात नहीं है।

एक अन्य महत्त्वपूर्ण प्राचीन बाइबल पाण्डुलिपि वह है जो लन्दन में ब्रिटिश संग्रहालय में है। यह 'कोडेक्स अलैक्जेंड्रियस' के नाम से ज्ञात है। यह यूनानी भाषा में चीमड़ पर पाँचवीं शताब्दी से पूर्व की लिखित है। कान्स्टेंटिनोपल के प्रधिधर्माध्यक्ष ने इसे सम्राट् चार्ल्स I को सन् १६२८ में सौंप दिया था, भेंट कर दिया था।

कोडेक्स शब्द लैटिन भाषा के काडेक्स शब्द से व्युत्पन्न है जो वृक्ष के तने का द्योतक है जिसमें मोम-लगी लेखन-पट्टियाँ प्राचीन समय में बनाई जाती थीं।

क्रुस्ती-पूर्व युग में पटारा या चर्मपत्र के गट्ठर, बंडल लिखने के लिए

काम में लाए जाते थे किन्तु वे पाठक के लिए दुष्कर, असुविधाजनक होते/समझे जाते थे।

अन्य तीन महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों में एक खोज सेंट पीटर की कब्र की है जो वेटिकन के नीचे ३० फीट एक प्राचीन कब्रिस्तान में मिली थी। यद्यपि इसे भी एक महान् खोज के रूप में प्रख्यात किया गया था, फिर भी कोई निश्चित तथ्य नहीं है कि यह वास्तव में सेंट पीटर की कब्र ही है। यह तो किसी की भी कब्र हो सकती है। यदि वहाँ दफनाए गए व्यक्ति का नाम पीटर ही था तो भी पीटर नाम के तो असंख्य व्यक्ति हो सकते थे।

एक अन्य खोज निर्माती ठप्पे की थी जो ईसा-पश्चात् ३७ से पूर्व सम्राट् टाईबेरियस को समर्पित संरचना में प्रयुक्त होता था। उक्त सम्राट् का नाम और उपाधि पोंण्टियस पीलेट थे। यह खोज (?) सन् १९६२ ई० में इज़रायल में हुई थी।

सन् १९६८ में एक और 'महान् खोज' सामने आई। यह जरुसलम में गिवाथा-मिवतार में 'प्राप्त' एक पत्थर की शवपेटिका थी। शवपेटिका के भीतर 'येहोहानन' नामक व्यक्ति, पुरुष का ढाँचा, पंजर था क्योंकि उक्त शवपेटिका पर अरेमाइक भाषा में यही नाम खुदा हुआ था। यह उपलब्धि 'महान्' समझी गई थी क्योंकि (जैसी धारणा थी) यह २००० वर्ष पुराना अस्थि-पंजर एक सूली-दण्डित व्यक्ति का प्रथम साक्ष्य था। सात इंच लम्बी कीलें इस अस्थि-पंजर के प्र-बाहुओं और एड़ियों की हड्डियों के आर-पार गड़ी हुई पाई गई थीं। किन्तु यदि प्रथम शताब्दी में सूली-दण्डित करना और दफनाना प्रचलित था, तो क्या कारण है कि मात्र एक ही ऐसा अस्थि-पंजर अभी तक मिल सका है? क्या ऐसा भी हो सकता है कि राबर्ट लेबटन जैसे किसी व्यक्ति ने नाटकीय ढंग से एक ऐसा अस्थि-पंजर तैयार कर लिया जो सूली-दण्डित व्यक्ति जैसा दिखाई दे, शवपेटिका को किसी पुराने स्थल पर रख दिया और फिर धूर्ततापूर्वक किसी को संकेत कर दिया कि वह वहाँ खुदाई कर ले और यह उपलब्धि, खोज विज्ञापित कर दे।

पश्चिमी विद्वानों द्वारा अजन्मे, जाली आँकड़ों की 'प्राचीन खोजों' या विशद् लेखाओं की ऐसी शैक्षिक जालसाजियों से ग्रन्थों की भारी संख्या तैयार हो सकती है। यह पहले ही दिखाया जा चुका है कि जीसस के बारे

में जो भी लिखा पढ़ाया, प्रचारित और कल्पना किया जा रहा है वह सब बिना ऐतिहासिक आधार ही है। इसी प्रकार, काफी लम्बे समय तक किसी यूरोपीय क्रिस्ती लेखक ने प्रेस्टर जोह्न नामक एक शक्तिशाली यूरोपीय क्रिस्ती सम्राट द्वारा एशिया में एक विशाल साम्राज्य पर शासन करने का मिथ्या प्रचार भी किया हुआ था। कुछ धूर्त व्यक्तियों ने इंग्लैंड में एक बार झूठी कहानी गढ़ ली थी और उसे एक अति प्राचीन समय के एक व्यक्ति के पिल्ट डाउन अस्थि-पंजर के रूप में प्रख्यात कर दिया था। कहा गया कि यह व्यक्ति कभी इंग्लैंड में रहा था।

क्रिस्ती-पंथ या बाइबल को जनप्रिय बनाकर लाभ उठानेवाले व्यक्तियों द्वारा प्रचारित किए जानेवाले अनेक कौतुकों में से एक है कि अमुक-अमुक स्थानों पर जाने से लम्बी बीमारियाँ या शारीरिक विकृतियाँ चमत्कारी ढंग से दूर हो जाती हैं। कुछ लोग लौरडेस में 'अवर लेडी' देवालय गए थे, या सन् १९१७ में पुर्तगाल में 'अवर लेडी ऑफ फातिमा' के दर्शन के समय तीन चरवाह बच्चों ने बादल पर आरूढ़ मातृस्वरूपा कुमारी (मेरी) के दिव्य-दर्शन किए बताते हैं, वह सूर्य से भी अधिक तेजस्वी थी, या फिर फ्रांस में निसिडल्स का उपासनालय, या इटली में ट्यूरिन प्रार्थना-भवन जहाँ तथाकथित 'पवित्र कफन' रखा हुआ है, या मोण्टा सलरे, या सनेटा सेन्कटोरम चैपल जहाँ 'अवर लार्ड' के चित्र के सम्मुख प्रार्थना की जाती है—अनुमान, कल्पना है कि इस चित्र को किन्हीं भी मानव-हाथों ने नहीं बनाया था, और जहाँ कुछ विश्वासी भक्त अपने घुटनों के बल चलकर इसकी २८ सीढ़ियाँ चढ़ते हैं, या बेल्जियम में ब्यूरांग जहाँ पाँच बच्चों ने सन् १९३२ में दिव्य-दर्शन किए थे—माना जाता है, या इंग्लैंड में वालसिंघम ऐसे ही चमत्कारी स्थान कहे जाते हैं।

"एथेन्स के लगभग १५० मील उत्तर में एजीयन समुद्र के सीधे पार, ग्रीस के सुदूर पर्वतशृंखला में अपने ही ढंग से जीवनयापन करनेवाला 'अथॉस' नामक एक तपोमय, मठवासी समुदाय है। यह एक लघु स्वशासी संघ है जिसमें कार्येस स्थित पवित्र धर्मसभा द्वारा शासित २० रूढ़िवादी यूनानी मठ हैं। उक्त धर्मसभा में प्रत्येक मठ का एक-एक प्रतिनिधि होता है। इसकी स्थापना एक हजार साल से पहले हुई थी, सम्भवतः नवीं शताब्दी

में एथेन्सवासी पीटर द्वारा की गई थी और यह एकमात्र क्रिस्ती-केन्द्र था जो इस्लामी या ओटोमन-शासन से बच सका। हमारी शताब्दी बदलते समय 'अथॉस' के पर्वत-शिखरों पर लगभग ८,००० सन्यासी थे। आज लगभग ३,००० हैं—वे प्रार्थना करते हैं, वे ध्यान-समाधि खोजते-लगाते हैं, ईश्वर से तादात्म्य स्थापित करना चाहते हैं। वे दिव्य-दर्शन की अभिलाषा रखते हैं। वास्तव में, दो पंथ/सम्प्रदाय हैं। एक पंथ मठवासी, रूढ़िवादी, मितव्ययी, दृढ़-संयमी, निर्धनता—शुद्धता—आज्ञाकारिता की शपथों के अनुरूप आचरण करनेवाला है। दूसरा पंथ आवर्तन-प्रणालीबद्ध, अधिक लोचपूर्ण, अधिक लोकतान्त्रिक, धन की अनुमति देनेवाला, निजी आधिपत्य, सुख-सुविधाओं को मान्य करनेवाला है। अथॉस प्राचीन पाण्डुलिपियों का विशाल भण्डारगृह है·· उनके पुस्तकालयों में कम-से-कम ५०,००० प्रतियाँ संकलित, संग्रहीत हैं।"[1]

यदि जीसस का वास्तव में कोई अस्तित्व होता, तो अथॉस जैसे प्राचीन केन्द्र में, जहाँ मुस्लिम आक्रमणों का कोई स्पर्श, भय भी नहीं हुआ, एक नहीं बल्कि सैकड़ों दस्तावेज जीसस के हस्तलिखित या उसके परिवार के सदस्यों द्वारा लिखित तो मिल ही जाते। किन्तु अथॉस में ऐसा एक भी अभिलेख/प्रलेख, दस्तावेज नहीं है। तथ्य रूप में तो, यदि ठीक प्रकार से खोज की जाए और पुरातत्त्वीय खुदाइयाँ की जाएँ तो अथॉस में उन युगों के हिन्दू चिह्नों को भारी संख्या में उपलब्ध करा सकने की आशा है जब ग्रीस (यूनान) देश भगवान् कृष्ण, भगवान् शिव, सूर्य और अन्य भारतीय देव-देवियों की पूजा-आराधना करनेवाला हिन्दू देश था।

मठवासी-पंथ को 'मेनोबीटिक' पन्थ कहते हैं। इसी को वर्णनी कोनोबाइट' भी करते हैं। भगवान् कृष्ण का उसके बालसखा, मित्र 'कान्हा या कोना' भी कहते थे। इसलिए 'कोनोबाइट्स' अर्थात् 'कोनोआइट्स' भगवान् कृष्ण के अनुयायी हैं जिनके साथ वे उनके साथ तादात्म्य करना चाहते हैं जैसे अन्य सभी क्रिस्ती-पंथी भी कृष्ण के अनुयायी ही हैं।

"नवीं शताब्दी में, (सन्यासियों द्वारा शुद्धता की शपथ खा लेने के

---

१ इर्विंग वालेस रचित 'दि वर्ड', पृष्ठ ३४९-३५०।

कारण) कामवासना के प्रलोभन को कम करने के निमित्त, अथोस शिखर से महिलाओं को दूर रखा गया है। कीटाणुओं और तितलियों तथा जंगली पक्षियों के अतिरिक्त जिन पर नियन्त्रण नहीं किया जा सकता, हर जीव-जन्तु की मादा—स्त्रीवर्ग का अस्तित्व वहाँ वर्जित है। अथोस शिखर पर मुर्गे हैं किन्तु मुर्गियाँ नहीं, सांड है पर गौएँ नहीं, मेढ़ा है परन्तु भेड़ी/भेड़ें नहीं। कुत्ते और बिलाव हैं किन्तु उनकी मादाएँ नहीं। जनसंख्या पूरी तरह मर्दों/नरों की ही है। यहाँ किसी शिशु ने कभी जन्म नहीं लिया। अथोस शिखर बिना महिलाओं का भूखण्ड है।"[1]

चूँकि बाइबल का आदर्श वाक्य "विवाह करो और संख्या बढ़ाओ" है, इसलिए पशुओं तक पर लागू पुरुष-लिंग-नियमन कृस्ती-पूर्व आचरण है जो अथोस शिखर पर व्यवहार किया जा रहा है। हिन्दू-धर्म में कठोर इन्द्रिय-निग्रह अर्थात् ब्रह्मचर्य एक अति मूल्यवान सिद्धान्त नियम है जो विशेष हिन्दू-पन्थों का आधारभूत सिद्धान्त है।

जलवायु, आध्यात्मिक जीवन, औषधीय सूखी झाड़ियों, जड़ी-बूटियों और पवित्र मूर्तियों के स्पर्श से प्राप्त शक्ति ने (अथोस सम्प्रदाय-स्थापना के प्रमुख) अबाट पट्टापानस को (मानस-व्याधि से मन्त्रणा-पश्चात्) सामर्थ्य प्रदान कर दी है—वहाँ रहनेवाले एक साधु-संन्यासी ने बताया था।[2]

ऊपर उद्धृत अवतरण में औषधीय सूखी जड़ी-बूटियों और पवित्र मूर्तियों का सन्दर्भ अथोस शिखर के मठ के हिन्दूमूलक होने के हमारे विचार का समर्थन करता है क्योंकि हिन्दू ही हैं जो मूर्ति-पूजा करते हैं। उनकी प्राचीन चिकित्सा-प्रणाली—आयुर्वेद भी मुख्य रूप से औषधीय जड़ी-बूटियों पर ही आधारित है।

प्रधान अबाट का नाम और उपाधि भी संस्कृत है। अबोट में से शुरू का 'अ' अक्षर निकाल दो तो पुरोहित का अर्थ-द्योतक 'भोत' शब्द रह जाता है। इसी प्रकार पट्टापानस नाम 'पितृ-पाल' अर्थात् पितृ या ज्येष्ठों का पालक, रक्षक हो सकता है या फिर पत्र-पाल अर्थात् पत्रों, प्रलेखों, पाण्डु-

१. इर्विंग वालेस रचित 'दि वर्ड', पृष्ठ ३५४।
२. वही पृष्ठ ३५५।

लिपियों आदि की देखभाल करनेवाला हो सकता है।

साधु-संन्यासी ने जो अंग-वस्त्र सबसे ऊपर पहन रखा था, उस पर एक खोपड़ी और हड्डियों की जोड़ी आड़ी-टेढ़ी सिली हुई थी। हिन्दुओं में अघोरी साधु लोग भी ऐसा ही चिह्न अंकित किए रहते हैं।

किन्तु जहाँ ऐसे कट्टर धर्म-परिवर्तित हैं जो अपने पूर्ववर्ती धर्म का परित्याग करके कृस्ती बन जाने की घोषणा न्यायोचित ठहराते हैं बिना जाँच-पड़ताल किए कि जीसस का कभी कोई अस्तित्व रहा भी था या नहीं, वहीं (अमरीकी) रेकर इंस्टीच्यूट के अध्यक्ष जिम मेक लोघलिन जैसे इक्के-दुक्के विरोधी, धर्मयोद्धा भी हुए हैं जिन्होंने बुराई, पाखण्ड का भण्डाफोड़ किया है। फ्रांसीसी लेखक एमिल ज़ोला, टामस पेने, हेनरी थोरियो और अभी हाल ही में लिंकन स्टीफेन्स, राल्फ़ नाडेर, और उपटन सिनक्लेयर उन कुछ लोगों में से हैं जिन्होंने ढोंग-ढकोसले और जीवन के सभी क्षेत्रों में धोखा देने के विरुद्ध अभियान छेड़ा है।

रेकर इंस्टीच्यूट ने, उदाहरण के तौर पर, कुछ खास अमरीकी उद्योगों और निगमों के मध्य एक अलिखित षड्यन्त्र का पता लगा लिया है जिसके अनुसार कुछ खोजों और उत्पादों को जनता की आँखों से ओझल, सदा दूर ही रखा जा रहा है। उन्होंने ऐसा साक्ष्य प्रकट कर दिया है कि बड़े व्यापार—तेल उद्योग, आटोमोबाइल उद्योग, वस्त्र उद्योग, इस्पात उद्योग—कुछ नाम काफी हैं—ने रिश्वत दी है, हिंसा भी की है जनता से एक सस्ती गोली छुपाकर जो गेसोलीन का पर्याय, विकल्प बन सकती है, एक टायर रोककर जो कभी खराब न हो, एक कपड़ा ओझल करके जो सारा जीवन उपयोग किया जा सके, एक माचिस जो हमेशा काम में आती रह सकती है..."[1]

इर्विंग वालेस की पुस्तक 'दि वर्ड' उन धोखेबाजों के पाखण्डी आचरण का भण्डाफोड़ करने में वही भूमिका निभाती है, जो चमत्कारों के बारे में अफवाहें प्रचारित करके कृस्ती-पंथ और बाइबल का प्रचार-प्रसार सम्बन्धित करना चाहते हैं। वे 'खोजों' की रचना करते हैं, उनको इच्छित स्थानों पर

१. इर्विंग वालेस रचित 'दि वर्ड', पृष्ठ ४५०।

स्थापित करते हैं और फिर कृस्ती-पंथ की 'शक्ति' से लोगों को प्रभावित करने के लिए उनका प्रचार-प्रसार-विज्ञापन करते हैं और बाइबल की बिक्री से भारी मुनाफा कमाते हैं।

प्रचार, शक्ति-सत्ता, पद, धन, सम्मान, चमक-दमक और जासूसी के प्रति तीव्र आकर्षण ने लोगों को निहित स्वार्थों के उत्पादक-सामर्थ्य संघ में परिवर्तित कर दिया है। ये उत्पादक-संघ समय-समय पर कृस्ती-पंथ का संवर्धन करते रहने की आवश्यकता तीन भिन्न-भिन्न मुख्य कारणों से अनुभव करते हैं। एक कारण है कि कृस्ती-पंथ का कोई ऐतिहासिक आधार नहीं है, उसका अभाव है। कृस्ती-पंथ उस पॉल का मानस-शिशु, उसकी सृष्टि है जो अति उत्तेजनशील, शीघ्र क्रुद्ध हो जानेवाला और महत्त्वाकांक्षी होने के कारण स्वयं के लिए एक पृथक् पहचान, गौरव चाहता था। उसका साथ उसी युग के कुछ क्रुद्ध युवाओं ने दे दिया। वे संगठित हो गए और अ-नियमित रूप में शब्दाडम्बर, प्रलाप करने लग गए। ज्यों-ज्यों यथानुरूप बोलते गए, अन्य युवक लोग भी उनके साथ होते गए। पॉल, स्टीफेन्स व अन्य लोगों का वह अ-संयमित विरोधी-स्वर कृस्ती-पंथ नाम से पुकारा जानेवाला नए धर्म का स्थायी खजाना हो गया। एक समीचीन, संगत, अनवरत धर्म-ज्ञान, सूक्ष्मातिसूक्ष्म अतीन्द्रिय-विद्या और पौराणिकी के अभाव में कृस्ती-पंथ प्रायः निष्प्रभावी और निस्तेज होकर शून्य में लुप्त होने लगता है। इस अस्त होने और हवा से विलुप्त हो जाने से रोकने के लिए इस कृत्रिम रूप में सजीव, स्फूर्तित और पुनः उच्चासन पर प्रतिष्ठित करते रहना पड़ता है तथा यह उद्देश्य नई खोजों की घोषणाएँ करके पूरा किया जाता है। समय-समय पर कृस्ती-पंथ का संवर्धन करने का दूसरा कारण है बाइबल की बिक्री को बढ़ाने के अवसर प्रदान करना जिसके माध्यम से विशाल लाभ अर्जित हो सके। 'नई खोजों' को बढ़ाने, प्रोत्साहित करने का तीसरा मुख्य कारण नया कृस्ती-केन्द्र खोलना या विद्यमान केन्द्रों के प्रभाव-क्षेत्र को अधिक सुदृढ़, सामर्थ्यवान् और व्यापक बनाना है।

कृस्ती-पंथ का संवर्धन करने में कृस्ती-राष्ट्र एक बड़ी भूमिका निभाते हैं जिससे उनकी राजनीतिक तलवार मखमली कृस्ती-धार्मिक म्यान, आवरण में अन्तर्निहित बिना दिखाई दिए ही पड़ी रहे।

चूँकि कैथोलिक राष्ट्र वेटिकन के माध्यम से कार्य-सम्पादन कर सकते थे, इसलिए प्रोटेस्टैण्ट राष्ट्रों ने अपना ही एक समानान्तर परन्तु लगभग उसी अनुपात में शक्ति-सम्पन्न और प्रभावपूर्ण गिरजाघरों की विश्व-परिषद् का एक संगठन निर्माण कर लिया। इन दोनों ने सम्पूर्ण विश्व को आपस में बाँट रखा है और धर्म-परिवर्तन, राजनीतिक दाँव-पेच व जासूसी हेतु एक सुरक्षित, सीधा-सादा, शंकाहीन, गैर-कर्णकटु, अ-कर्कश, रूप-परिवर्तित केन्द्र के रूप में निश्चिन्त हो कार्य करते हैं।

कहीं यह मार्ग अवरुद्ध हो जाए या इसकी गति शिथिल पड़ जाए, इसलिए पश्चिमी कृस्ती (ईसाई) देशों ने अन्तर्राष्ट्रीय जासूसी के लिए अन्य आवरण भी बना रखा है। वे शैक्षिक-शोधों, पुस्तकालय-सेवाओं, विद्वानों का आवागमन, सामुदायिक जीवनयापन, पुरातत्त्वीय खुदाइयों या पर्वतारोहण-रुचियों के रूप में—छद्म-रूप में विद्यमान हैं।

कृस्ती-पंथ का समर्थन या उसका संवर्धन सम्पूर्ण कृस्ती-संसार को अत्यन्त लाभकारी होने के कारण सभी उत्प्रेरित स्वार्थी लोग कुछ सनसनीदार खोज बना लेने में खास ध्यान रखते हैं। कभी तो यह किसी एक स्थान पर कब्र होती है—उनको असंगति की तो लेशमात्र भी परवाह नहीं होती—और कभी अन्य स्थान पर एक कफन या प्राचीन पाण्डुलिपि या पटोरी या एक नया सुसमाचार-ग्रन्थ या एक नया ब्रह्म-विद्या सम्बन्धी सिद्धान्त होता है।

चूँकि पश्चिमी विश्व विश्वप्रचार-माध्यमों का एकाधिकार अपने अधीन किए हुए है और 'नई खोजों' की योजना बनाकर, उनकी सृष्टि और स्थापन करके—बड़ी भारी खोज विरली उपलब्धियों को हस्तगत कर लेने का पाखण्ड करते हुए और फिर उनका प्रचार-प्रसार, विज्ञापन करना अब देव-विद्या का व्यापारिक दैनंदिन कार्य पूरी तरह बन चुका है, अत्युन्नत व्यवसाय है।

किन्तु कृस्ती-पंथ के दुर्भाग्य से हर नया प्रोत्साहन एक निरुत्साह-कर्ता, अवमन्दक निन्दालेख सिद्ध हुआ है। किन्तु एक प्रारम्भिक स्फुरक के कारण ही यह विफल रहा और जल्दी ही भुला दिया गया। यह होना ही था। क्योंकि कृस्ती-पंथ ऐसे कौतुकों से कब तक अपना कृत्रिम 'जीवन' चालू रख

सकता है जबकि इसके शरीर से 'आत्मा' लुप्त हो चुकी है, 'आत्मा' वही है ही नहीं। जिसे यह क्राइस्ट (कृस्त) घोषित, उच्चारित करता है वह हिन्दुओं का 'कृष्ण' है और जिसे यह 'सेवियर' (संरक्षक, त्राता) कहता है वह (प्रभु ईश्वर का अर्थ-द्योतक) हिन्दुओं का ईश्वर है। इसलिए, क्रिश्चियनिटी (कृस्ती-पंथ) का अपना विशिष्ट, भिन्न अस्तित्व है ही कहाँ?

यदि इतिहास अपने को फिर दोहराएगा—जैसा कहा जाता है कि यह दोहराता ही है—तो कृस्ती-पंथ जो कृष्ण-पूजा से पृथक् अस्तित्व बना बैठा, पुनः उसी में समा जाएगा।

अध्याय १४

राजद्रोह का परिणाम

अध्याय ४ में समीक्षा करते हुए हम देख चुके हैं कि पॉल और स्टीफन जैसे अन्य विरोधी महत्त्वाकांक्षी नेताओं के दैनंदिन कार्यकलाप किस प्रकार अशुभ, अनिष्टसूचक और धर्मक्रियों की सीमाओं तक पहुँच गए थे।

उनमें से प्रत्येक में सर्वप्रथम यशस्वी हो जाने, नाम कमा लेने की अतृप्य प्यास ने ईश्वर के नाम में, जिसे वे संरक्षक, त्राता 'सेवियर' कहते थे समकालीन भारी भीड़ों के सम्मुख लम्बे-चौड़े भाषण देने शुरू कर दिए। उस दौड़ में जनोत्तेजक विशिष्टतावश पॉल सभी से आगे चलता प्रतीत हो रहा था। इस कारण पॉल से पिछड़ते सभी प्रतियोगियों ने उसके विरुद्ध एक सामान्य लक्ष्य बना लिया।

पॉल ने लोगों का बपतिस्मा कर उन्हें अपना अनुयायी बनाना शुरू कर दिया। नए धर्मान्तरित लोग अधिकांश रूप में यहूदी थे। उनके धर्मान्तरण ने उनको जुदाइज़्म—यहूदी-धर्म का दुश्मन बना दिया, ठीक उसी प्रकार जैसे भारत में विदेशी आक्रमणकारियों द्वारा इसलाम में धर्म-परिवर्तित लोग हिन्दू-धर्म के कट्टर जानी दुश्मन बन गए।

यहूदी लोग न्याय्य-रूप से ही शंकित थे। उनके लोगों को न केवल समाप्त, निःशेष किया जा रहा था अपितु स्वधर्मत्यागी लोग यहूदी-धर्म के शत्रुओं के प्रबल पूर्वज बनते जा रहे थे। दूरदर्शी होने के कारण यहूदी लोग कृतसंकल्प थे कि इस नए खतरे को शुरू में ही समाप्त कर दिया जाए। उनकी ओर से हठी दुर्दान्त प्रतिरोध और पॉल का अपनी पृथक्तावादी गतिविधियों का दुराग्रह एक विस्फोटक स्थिति को जन्म न दे बैठे।

विद्रोह में सम्मिलित इन व्यक्तियों के विरुद्ध कठोर दण्डात्मक उपाय करने के अतिरिक्त रोमन-प्रशासन के पास कोई विकल्प शेष ही नहीं रहा

था। अनियन्त्रित भीड़ को काबू करने के लिए बेतें लगाना और पत्थर मारना उसके नियन्त्रण—प्रकार, उपाय रहे होंगे। सूली-दंड देना तो विरला कदम ही था। पुराने दफनाने के स्थानों की जाँच-पड़ताल ने तो कभी भी किसी सूली-दंडित मृत-पिंड को सामने नहीं लाया है।

ये राजद्रोही, बगावती लोग एक ओर तो कृष्ण-मन्दिर का नियन्त्रण करनेवाले अनुशासक यहूदियों से भयंकर बदला लेने की शपथें खा रहे थे, वहीं दूसरी ओर सम्पूर्ण रोमन प्रशासन के लिए ये विद्रोही व्यक्ति एक समर्थ, सक्षम चुनौती बन रहे थे। ज्यों-ज्यों दिन, मास और वर्ष बीतते गए, वे इतने ताकतवर दिखाई देने लगे कि पहले तो मन्दिर-व्यवस्था को चुनौती दे सकें और उसे पैरों तले रौंद सकें तथा बाद में उस प्रान्त के रोमन-प्रशासन पर अपना कब्जा कर सकें। अतः यह एक पूरा राजद्रोह ही था। मार्क ने इस शब्द का प्रयोग ठीक ही किया है। आश्चर्य की बात ही है कि अभी तक इसका महत्त्व सभी इतिहास-लेखकों और विद्वानों की दृष्टि से किस प्रकार, किस कारण ओझल, वंचित रह गया।

एक लुटेरे और राजद्रोहियों में से किसी एक को छुड़वाकर बन्धन-मुक्त कराने का अवसर दिए जाने पर भीड़ राजद्रोहियों की अपेक्षा लुटेरे बाराब्बास को छुड़ाने का आग्रह करके ठीक ही कर रही थी। स्पष्टीकरण प्रत्यक्षतः साफ है। एक लुटेरा अपेक्षाकृत रूप से कम जोखिम है सुरक्षा-दृष्टि से। वह एक बार में एक मकान ही तो लूट सकता था। उसमें भी उचित सतर्कता से उसे विफल किया जा सकता था। साथ ही छोड़ दिए जाने के बाद किसी लुटेरे को ठीक से पहचाना भी जा सकता था, और उससे लोग अपनी सुरक्षा स्वयं कर सकते थे। इसके विपरीत, विद्रोही लोग पूरे राज्य-शासन को डराते-धमकाते हैं, उनकी संख्या भी अनिश्चित होती है और उनके सदस्य पहचाने भी नहीं जा सकते।

इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि प्रारम्भिक वर्षों में जब तक कि कृस्ती लोगों ने विजय के माध्यम से सभी विरोधियों को पराजित नहीं कर दिया और सम्मान-अर्जित नहीं कर लिया था, तब तक उन्हें विद्रोहियों के रूप में निन्दित ही किया जाता रहा। प्रायः उनके विरुद्ध शिकायतें की जाती थीं, उन्हें बंदी बना लिया जाता था, मुकदमे चलते थे और फाँसी—सूलीदंड—

दे देते थे। मौत की सजा पाए कैदियों के रूप में उन्हें अपनी क्रॉस (सूली) खुद ही ढोकर ले जानी पड़ती थी और उनको उसी सूली पर अन्त में लटका दिया जाता था। स्थापित व्यवस्था, सत्ता के विरुद्ध यह संघर्ष ही था जो ईशस कृष्ण (उच्चारण में—जीसस क्राइस्ट हो गया) के व्यक्ति रूप में जाना जाने लगा और 'क्रॉस' को उस अपूर्ण पश्चात्ताप के युद्ध के प्रतीक के रूप में ग्रहण कर लिया गया। इस प्रकार, क्रिश्चियनिटी के नाम से ज्ञात धर्म-विज्ञान की पृथक् से कोई आवश्यकता, गुंजाइश ही नहीं है। यह तो मात्र कृष्ण-मन्दिर को हथियाने और उस पर अपना नियन्त्रण करने हेतु संघर्ष-गाथा ही है।

सार्वजनिक शान्ति के लिए खतरा होने के कारण यद्यपि मन्दिर-विवाद के नाम पर ही राजद्रोहियों को पकड़ा, बन्दी बनाया जा रहा था, तथापि वे लोग भी अपना संघर्ष आखिरी कटु परिणाम तक पहुँचा देने के लिए कटि-बद्ध थे। प्रत्यक्ष रूप में उनको भी जन-समर्थन मिल रहा था चाहे औचित्य के कारण हो या फिर किसी भी कारण, किसी अन्य से रुष्ट होने पर भी जनता इन्हीं के साथ हो चली थी। वे प्रत्यक्षतः प्रशासन का हाथ अपने पक्ष में कर देने के लिए उसे विवश कर देने पर तुले हुए थे। रोमन प्रशासन ने स्पष्टतः निजी कृष्ण मन्दिर-विवाद में बीच में पड़ने से संकोच करते हुए आन्दोलनकारियों को बंदी बनाकर कानून और व्यवस्था बनाए रखना ही श्रेयस्कर समझा।

इस पर रुष्ट, कुपित होकर विरोधी मन्दिर-धड़े ने वैसे ही 'कर न दो' आन्दोलन संचालित कर दिया जैसा लगभग १७०० वर्ष बाद अमरीकी बस्तियों ने करना था। आन्दोलन के इस चरण का सूत्र हमें मार्क १२ १४-१७ में प्राप्त होता है जहाँ यह कहा गया है कि फरीसियों और हीरो-डियनों में से कुछ खास लोग जीसस से पूछते हैं 'सीजर को कर देना क्या कानूनी है या नहीं ?''—''क्या हम उनका भुगतान करें या नहीं ?' जीसस उत्तर देता है ''जो चीजें सीजर की हैं, वे उसे दे दो और जो चीजें ईश्वर की हैं, वे ईश्वर को दे दो।'' विरोध प्रदर्शनकारियों द्वारा यह एक जान-बूझकर दिया गया संक्षिप्त, सारगर्भित और रहस्यमय, पेचीदा उत्तर था। ऊपर से, प्रत्यक्षतः, इसका अर्थ था कि सभी देय-कर दे देने चाहिए किन्तु वास्तव

से उनका भाव यह था कि जो प्रेष्य धन उचित न समझा जाए, वह शासक और मन्दिर-व्यवस्था दोनों से ही रोक लिया जाए। इस प्रत्यक्ष अर्थ का आशय यह था कि जब आरोप लगाया जाए तो यह कानूनी सुरक्षा का काम करे।

जीसस पर मुकदमे सम्बन्धी सूक्ते की रचना (२३ : २) में मुख्य पुरोहित-पादरीगण तथा उनके लिपिक 'सीजर को यश-गाथा वर्णन करने से रोकने' का दोष जीसस पर लगाते हैं। यह पूरी तरह सम्भव है। यह दर्शाता है कि विरोधी असन्तुष्ट मन्दिर-श्रद्धालु जनता और मन्दिर-व्यवस्था पर दबाव डाल रहा था कि वे रोमन-प्रशासन को कोई भी कर भुगतान न करें। यह द्वि-अर्थक चरण था। यदि दबाव कम हो जाता और भुगतान रुक जाता तो सिद्ध हो जाता कि मन्दिर-व्यवस्था और जनता असन्तुष्ट धड़े से आदेश ग्रहण करने के लिए तैयार थे। यदि दूसरी ओर, मन्दिर-व्यवस्था कर का भुगतान सरकार को करना जारी रखती तो मन्दिर-व्यवस्था और सरकार, दोनों के विरुद्ध ही बदला लेने की भावना को अधिक प्रबल बनाने के लिए विरोध-प्रदर्शनकारियों के पास यह एक अतिरिक्त शिकायत उपलब्ध हो जाएगी।

इस प्रकार यदि बाइबल को एक धर्मग्रंथ के रूप में न पढ़कर एक कृत्स्न मन्दिर-प्रबन्ध के विवाद के प्रतीकात्मक इतिहास के रूप में इसका अध्ययन किया जाए, तो यह अति ज्ञानवर्धक प्रलेख, दस्तावेज बन जाती है, सिद्ध होती है।

यह दुर्भाग्य, अफसोस की बात है कि लगभग १९०० वर्ष तक पीढ़ियों ने बाइबल को एक पवित्र धार्मिक ग्रंथ समझा है। किन्तु ऐसी भूलें, गलतियाँ असामान्य बात नहीं हैं। क्या मोह-वशीभूत विश्व भोले-भालेपन में यह विश्वास नहीं करता रहा कि आगरा-स्थित ताजमहल संगमरमरी मकबरा है जिसे पाँचवीं पीढ़ी के मुगल सम्राट् शाहजहाँ ने अपनी बीवी मुमताज के नाम पर उसकी स्मृति में बनवाया था? यह मिथ्या भ्रम ३०० वर्षों से अधिक समय तक तब तक कायम रहा जब तक कि हमने अपनी शोध-पुस्तक 'ताजमहल मन्दिर भवन है' के माध्यम से इसका भंडाफोड़ नहीं कर दिया।

प्राचीनकाल यूनान इतिहास लेखकों ने विश्वास किया था कि हरक्युलिस कोई यूनानी बलवान पुरुष था। यह वास्तव में, तथ्यतः भगवान् कृष्ण है। हरक्युलिस शब्द विष्णु कुल के स्वामी अर्थात् कृष्ण के अर्थ-द्योतक संस्कृत शब्द 'हरि-कुल-ईश' का यूनानी अपभ्रंश रूप है।

विलियम टैल को शताब्दियों तक एक वास्तविक अनुपम धनुर्धारी स्वीकार किया गया था। इन्हीं सबके समान ही जीसस का विचार, उसके अस्तित्व की कल्पना भी अब एक झूठी कथा मात्र ही प्रतीत होती है।

टैसीटस से भी प्रत्यक्ष होता है कि जीसस तो मात्र एक काल्पनिक व्यक्तित्व था जिसका नाम कुछ महत्त्वाकांक्षी व्यक्तियों द्वारा निर्देशित आन्दोलन का युद्ध-घोष बन गया था। यह कहता है "क्रिश्चियनों (कृस्त-पंथियों) ने अपना नाम और मूल क्राइस्ट (कृस्त) से ग्रहण किया, जो टाइबेरियस के शासन में राज्यपाल पोण्टियस पोलेट द्वारा सजा के फलस्वरूप मृत्यु को प्राप्त हुआ था। कुछ समय के लिए यह भयंकर, घोर अन्धविश्वास नियन्त्रित किया गया था, किन्तु यह फिर फैल गया और न केवल जूडिया के ऊपर ही फैल गया जो इस शरारती, दुष्प्रकृति पंथ का प्रथम क्षेत्र था अपितु रोम में भी प्रविष्ट, प्रारम्भ हो गया था'''जो लोग पकड़ लिए गए वे उनके अपराध कबूल कर लेने से उनके बहुत अधिक साथियों का पता लग गया और वे सभी अपराधी सिद्ध हो गए'''शहर को आग लगा देने के अपराध में इतने अधिक नहीं जितने मानवता के प्रति घृणा के लिए अपराधी हुए। नीरो एक रथवाहक—अर्थात् सारथि की वेशभूषा में और क्रिश्चियनों की भाव-भंगिमा धारण किए लोगों से मिलता-जुलता रहा'''क्रिश्चियनों (कृस्त-पंथियों) का अपराध इतना घोर गम्भीर था कि उनको कठोरतम आदर्श सजा मिलनी ही चाहिए थी।"[1]

टैसीटस का प्रेक्षण सुझाता है कि प्रारम्भिक क्रिश्चियन जनोत्तेजना के विरुद्ध नीरो की कठोरता का बदला लेने की भावना से ही कृस्ती लेखकों ने उसे एक क्रूर, अत्याचारी शासक के रूप में अनुचित ढंग से प्रस्तुत कर दिया होगा। यह विचार करते हुए कि कुछ महत्त्वाकांक्षी व्यक्तियों ने एक

---

१ गिब्बन, कैथेल और डेवीस की 'एन हिस्टॉरिकल व्यू ऑफ क्रिश्चियनिटी', लन्दन, १८०० ईसवी, पृष्ठ ९५-९६।

आन्दोलन को जारी रखने का काम अपने काल्पनिक जीवन के नाम से हाथों में ले लिया था। कानून और व्यवस्था बनाए रखने के लिए जिम्मेवार सर्वोच्च पदाधिकारी के रूप में उक्त राजद्रोह, बगावत को कुचलने में नीरो पूरी तरह न्याय-मार्ग पर था।

एक सारथि की वेशभूषा में सभी लोगों के मध्य नीरो का घूमना, मिलना-जुलना रोम के हिन्दू-मूलक होने का संकेतक है। भगवान् कृष्ण ने महाभारत-युद्ध में एक सारथि के रूप में, वेशभूषा में ही भाग लिया था। उस वेशभूषा में व युद्ध-क्षेत्र में सभी लोगों के साथ मिलते-जुलते थे। यह तो भगवान् कृष्ण की स्मृति का समादर, सम्मान ही था कि नीरो जैसे रोमन सम्राट् भी सारथि भगवान् कृष्ण के वेश को धारण किए घूमते रहते थे।

क्रिस्तियों ने अपनी स्वैच्छिक घोषणा से कभी-कभी आरोपक की वृत्ति स्पष्ट कर दी। गैर-यहूदी गैर-ईसाइयों की जन-सेवा में विघ्न-बाधाएँ उत्पन्न कर दीं और दण्डाधिकारियों की कचहरियों में भीड़ घुसेड़ दी। उनसे कहते थे कि कानून लागू करो और उनको सजा सुनाओ…। गैर-ईसाई लोग एक नवीन और अस्पष्ट पंथ की तेजी पर उत्तेजित, चिढ़े हुए थे क्योंकि यह पंथ उनके देशवासियों को गलती के लिए अपराधी, दोषी ठहराता प्रतीत होता था।[1]

क्रिस्ती-पंथ की प्रधानता के हमारे अपने ही युग में, चलचित्र और प्रचार के अन्य माध्यम प्रायः क्रिस्तियों को विविध, विशद् रूप में एक ऐसे निरीह, दुर्बल, सदाशयी, पवित्र पंथी निरूपित करते हैं जो गैर-ईसाई रोमन लोगों द्वारा क्रूरता, कठोरता से कुचल दिए गए थे। तथापि, यह सत्य प्रतीत नहीं होता। हम जो कुछ सामान्य रूप से पुकारकर बता दिया जाता है, वह पक्षपातपूर्ण मनगढ़न्त क्रिस्ती-रूपान्तरण, वर्णन है। प्रारम्भिक अवस्था में और तब भी कभी भगवद्द्रोही लोग बहुत हिंसक नहीं हुए, गैर-ईसाई रोमन-प्रशासन उनके साथ बहुत ही नरमी से पेश आया। यदि कुछ हुआ ही है, तो यही कि रोमन अधिकारियों ने नरमी करके गलती ही की थी।

१ गिब्बन, केवेल और डेवीस की 'एन हिस्टॉरिकल व्यू ऑफ़ क्रिश्चियनिटी', लन्दन, १८०० ईसवी, पृष्ठ १०१-१०३।

तरल समाधान कर दिया जाता था यदि शरारती क्रिस्ती बंदी गैर-ईसाई उपासना-स्थल पर थोड़ी-सी सुगंधि (लोबान, धूप आदि) चढ़ा देना स्वीकार कर लेते थे। जिन लोगों को रोमन-कचहरियों में आरोपित किया जाता था उन सभी क्रिस्तियों की निन्दा करना तो दूर की बात ही है, बल्कि जो लोग नए पंथ, धर्म के प्रति आस्था, निष्ठा रखने के कारण अपराधी सिद्ध हो जाते, उनको मृत्युदण्ड देने में तो रोमन लोग और भी अधिक दूर थे। बंदी बना लेने, देश-निकाला देने या खानों में गुमनामी करने के नरम दण्ड की घोषणा करके ही, अधिकतर मामलों में तो स्वयं को इसी से सन्तुष्ट करके भी रोमन शासक अपने न्याय के दुःखी शिकार व्यक्तियों को आशा की एक किरण दे दिया करते थे कि किसी एक सुखद अवसर पर, राज्यारोहण पर, सम्राट् के विवाह या उसकी विजय के सुनहरी मौके पर वे लोग आम-माफ़ी के माध्यम से मुक्त होकर अपनी पूर्व-स्थिति में पहुँच सकेंगे।[1]

मुस्लिम अल्पसंख्यकों के समान ही, जो कानून और व्यवस्था की समस्या बने हुए हैं और जो सरकारें गिराने के लिए काम करते रहते हैं जैसा फिलीपीन्स में हो रहा है और जिसके कारण सन् १९४७ में भारत को खंडित होना पड़ा, प्राचीन क्रिस्ती-पंथी भी अपने उपद्रवों, छद्मों और गुप्त साम्राज्यवादी अभिलाषाओं द्वारा जुदा (यहूदी)-धर्म और रोमन साम्राज्य, दोनों, को ही धीरे-धीरे, लगातार धराशायी कर देने में लगे रहे। यह पंथ यहूदियों की संख्या बहुत कम कर देने में और रोमन साम्राज्य को डुबो देने में उल्लेखनीय रूप से सफल हो गया।

उस पराजित होती हुई लड़ाई में सम्राट् जूलियन ने संकल्प किया कि : 'वह, बिना देरी किए, मोशिआह की प्रतिष्ठा के अनुरूप, एक राजकीय भव्य मन्दिर बनवाएगा जो निकटवर्ती कालवेरी पहाड़ी पर (पुनर्जीवित हो जानेवाले गिरजाघर) 'चर्च ऑफ़ रिसर्रेक्शन' की भव्यता को कम कर देगा, पादरियों-पुरोहितों की एक व्यवस्था स्थापित करेगा जिनका रुचिगत

१ गिब्बन, केवेल और डेवीस की 'एन हिस्टॉरिकल व्यू ऑफ़ क्रिश्चियनिटी', लन्दन, १८०० ईसवी, पृष्ठ ९८।

उत्साह बनाओं का ज्ञान उपलब्ध कराएगा और उनके कृस्ती प्रतिद्वन्द्वियों की आकांक्षाओं का प्रतिरोध करेगा और यहूदियों की अनेक बस्तियों को आश्वस्त करेगा जिनका पक्का कट्टरपन गैर-ईसाई सरकार के उग्र उपायों का समर्थन और स्वयं उनकी पूर्व-भूमिका भी तैयार करने को उद्यत रहेगा। उनके महान् त्राता, उद्धारक के आह्वान पर (रोमन) साम्राज्य के सभी प्रान्तों से यहूदी लोग अपने पूर्वजों के पुण्य पर्वत पर एकत्र हो गए, और उनकी अल्पाई जीत ने जरुस्लम के कृस्ती-निवासियों को हथियारबन्द और क्रुद्ध रुष्ट, कुपित कर दिया।'[1]

'प्रारम्भिक कृस्तियों को जब सताया और पकड़ा जाता था, तो वे गुप्त-रूप अपनी पहचान एक-दूसरे को बता देने के लिए मछली का प्रतीक चिह्न बना देते थे (क्योंकि) जीसस क्राइस्ट, ईश्वर-पुत्र, रक्षक (सेवियर)" रोमन अधिकारी सेनाओं द्वारा प्रयुक्त यूनानी भाषा में अनूदित होकर 'ईसस क्रिस्टोस थेओयू यिओस, सोटर' था। उन पाँच यूनानी अक्षरों— शब्दों के आदि-अक्षर जो पहले आई-सीएच-टीएच-यू-एस की वर्तनी में होते थे अब हम उन्हें 'आई सी एच वाई एस' की वर्तनी में प्रकट करते हैं —यूनानी भाषा में यह मछली का द्योतक शब्द है' 'यह घेरे में लिए गए कृस्तियों या पंथ के सदस्यों की परस्पर पहचान के लिए व्यवहृत प्रतीक-चिह्न था।'''

॥ प्रारम्भिक कृस्ती नेताओं द्वारा मछली का गुप्त संकेत अंगीकार करना रोमन लोगों से सत्ता हथियाने और यहूदी-धर्म को समाप्त करने के उद्देश्य से प्रेरित उनकी विध्वंसक, विनाशकारी गतिविधियों का द्योतक है मतलब है

इतिहास-लेखक सिउटोनियस द्वारा ईसा-पश्चात् ६८ और १३८ के मध्य लिखी गई 'सीज़रों के जीवन' (लाइव्ज़ ऑफ़ सीज़र्स) शीर्षक पुस्तक में उसने उल्लेख किया है कि सम्राट् क्लाडियस ने रोम में उन सभी

---

१ गिब्बन कैंपल और हेंवीस की 'एन हिस्टॉरिकल व्यू ऑफ़ क्रिश्चियनिटी', लन्दन, १८०० ईसवी, पृष्ठ १३२-१३३।

२ इर्विंग वालस रचित 'दि वर्ड', पृष्ठ ४११।

यहूदियों को देशनिकाला दे दिया जो क्रिस्टोस के भड़काने पर रुक-रुककर, कुछ-कुछ समय बाद गड़बड़ी-दंगे करते रहते थे।'[1]

यह इस बात का स्पष्ट इंगित है कि पहली शताब्दी के यहूदियों में क्रिस्टोस नाम कृस्ती-पूर्व नाम था। चूँकि गैर-परिवर्तित यहूदियों का आराध्य देव क्रिस्टोस उपनाम कृष्ण था, इसलिए स्पष्ट है कि पॉल और स्टीफेनस जैसे विद्रोही जिस देवता का आह्वान करते रहते थे वह कृष्ण था जिसका उच्चारण क्राइस्ट (क्रिस्त, कृस्त) उपनाम क्रिस्टोस किया जाता था।

एक परम्परा है जिसके अनुसार (जीसस का भाई) जेम्स अपने अनुयायियों को बताया करता था कि यदि कोई साश्चर्य पूछे कि उनका ईश्वर कहाँ रहता है तो उन्हें पूर्ण विश्वास से बता दिया जाए कि "तुम्हारा ईश्वर रोम की महान् नगरी में ही है।"[2]

उपर्युक्त वाक्य इर्विंग वालेस के उपन्यास 'दि वर्ड' से उद्धृत है। लेखक यह भाव सम्प्रेषित करना चाहता है कि जिस विवरण को जीसस के स्वयं के भाई जेम्स द्वारा लिखा हुआ माना जाता है उसी में जेम्स अपने अनुयायियों को बताता है कि उनका अपना ईश्वर (अर्थात् जीसस) रोम में है।

आइए, हम उपर्युक्त वाक्य का विश्लेषण करें। चूँकि जीसस एक काल्पनिक व्यक्तित्व है, इसलिए जोसेफ, मेरी और जेम्स जैसे उसके परिवार के अन्य लोग भी काल्पनिक हैं। इसलिए, जेम्स द्वारा लिखा हुआ कोई विवरण हो ही नहीं सकता। जेम्स के नाम में/से प्रस्तुत किया जा रहा कोई भी वर्णन जालसाजी है। कोई जेम्स किसी जीसस को ईश्वर के नाम से नहीं पुकारेगा, जिसका सीधा-सा कारण यह है कि जोसेफ के परिवार में न कोई जीसस था और न ही कोई जेम्स।

नाम 'जेम्स' संस्कृत शब्द 'यमस' है जो भारतीय, हिन्दू पुरा-शास्त्रों के अनुसार मृत्यु का देवता है। इसी प्रकार, क्रिस्टोस अन्य हिन्दू देवता

---

१. इर्विंग वालेस रचित 'दि वर्ड', पृष्ठ ६३।

२. वही, पृष्ठ ४६४।

'कृष्णत' है। उस महान् नगरी का 'रोम' नाम भी हिन्दू देवता 'राम' के
कारण है क्योंकि वही 'राम' उस नगरी का संरक्षक-देवता था। इसलिए
रोम का प्राचीनतम और सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण मन्दिर राम-मन्दिर ही था।
इस तथ्य की पुष्टि रामायण के उन दृश्यों से भी होती है जो इटली में
पुरातत्त्वीय खुदाइयों में प्राप्त मकानों के ऊपर चित्रित हैं।

यूरोप में संस्कृत 'अ' को 'ओ' स्वर-शैली में बोलने लगे जैसा भारत
में भी बंगालियों में उच्चारण करते हैं। इसका एक दृष्टांत अंग्रेजी 'रोमन'
शब्द है जो संस्कृत का 'रामन' शब्द है। इसी प्रकार, राम की नगरी भी
रोम-नगरी उच्चारण की जाने लगी। अतः यह बिल्कुल सहज, स्वाभाविक
ही है कि प्राचीन युग का कोई जेम्स किसी भी व्यक्ति को यह बताता कि
उनका ईश्वर (अर्थात् राम) रोम में था।

रोम से लेकर यरुशलम तक राम और कृष्ण, दोनों हिन्दू-अवतारों के
नाम व्यक्तियों और देवताओं द्वारा ग्रहण करना भी तर्क दृष्टि से पूरी
तरह युक्तियुक्त व संगत है। इसलिए किसी जेम्स का रोम के ईश्वर के रूप
में संदर्भ, लेकिन जीसस क्राइस्ट को न होकर ईशस कृष्ण या राम के लिए
है।

विचारणीय एक अन्य तथ्य, कारण भी है। यदि बाइबल-गत विश्वास
को सत्य भी मान लें तो भी ईसा-पश्चात् ६८ और १३८ के मध्य जीसस
जीवित न था। उसे तो बहुत पहले ही सूली पर चढ़ा दिया गया था। दूसरी
बात बाइबल के अनुसार भी जीसस ईश्वर नहीं है। ईश्वर को तो स्वयं
जीसस ने भी 'पिता' कहकर पुकारा है। इसलिए, रोम का ईश्वर जीसस
नहीं हो सकता था। तीसरी बात यह है कि जीसस रोम में श्रद्धा का पात्र
केवल चार शताब्दियों बाद ही हुआ था। ईसा-पश्चात् ६८ और १३८ के
मध्य तो जीसस, एक दिव्य पुरुष के रूप में रोम में भी अज्ञात था। इन
सभी कारणों से जेम्स के कथनानुसार कि 'ईश्वर रोम में है'—माननेवाली
प्राचीन परम्परा स्पष्टतया हिन्दू देवगण राम और कृष्ण या इन्हीं में से
किसी एक की ओर संकेत, इंगित करती है। हिन्दू शब्दावली में राम और
कृष्ण परिवर्तनशील हैं क्योंकि संघर्ष और यातनाओं के विभिन्न युगों में
अवतरित व दोनों ही दिव्य विभूतियाँ भगवान् विष्णु के रूप ही हैं।

राम का अवतार रावण से युद्ध और उसका अन्त करने के लिए हुआ
था। अतः यह अवश्यम्भावी ही था कि इटली, जिसकी राजधानी का नाम
राम के नाम पर है, उसमें एक शहर रावण के नाम पर भी हो। और
निश्चय ही वहाँ एक शहर ऐसा ही है। रावेन्ना नाम से पुकारा जानेवाला
इतालवी शहर रावण के नाम पर ही है। प्राचीन इटली के घरों में रामायण
के प्रसंगों में रावण के चित्र भी उत्कीर्ण मिले हैं।

कृष्ण (कृस्त, क्रस्त) शब्द भी यूरोप से पूरी तरह दृष्टि-ओझल नहीं
हुआ है। कहने का आशय यह है कि पश्चिमी विश्व में आज तक भी कृष्ण
और क्रस्त (क्राइस्ट) दोनों ही उच्चारण व्यवहार में हैं। उदाहरण के लिए,
एम्सटरडम में एक होटल 'कृष्णपोल्सकी' नाम से पुकारा जाता है।
इर्विंग वालेस की 'दि वर्ड' नामक पुस्तक में यह शब्द लगभग २८ बार
आता है।

मैथ्यू के सुसमाचार-ग्रंथ (४ : १२) में लिखित यह कथन भी
साधारणतः ग्राह्य, समझ में आनेवाला नहीं है कि "अब जब जीसस ने सुन
लिया था कि (बपतिस्मी) जोह्न जेल में बन्द कर दिया है, तब वह गलीली
चला गया।" जीसस को अपने किसी चमत्कार द्वारा अथवा किसी पुराने
उपाय से अपने महान् ज्येष्ठ प्रशंसक जोह्न को बंदीगृह से मुक्त कराने की
बजाय उसका त्याग करके अन्यत्र चले जाने की जरूरत क्यों पड़ी?

किन्तु जैसा हमारा दृष्टिकोण है, बाइबल को पॉल के राजद्रोह के
इतिहास के रूप में ही पढ़ा जाना चाहिए। जीसस के नाम को पॉल के रूप
में पढ़ा जाना चाहिए। तब यह स्पष्ट हो जाता है कि जब पॉल को सूचना
मिली कि उसके वरिष्ठ/ज्येष्ठ प्रशंसकों और समर्थकों में से एक जोह्न बंदी
बना लिया गया था और सरकारी अधिकारी स्वयं पॉल को भी बंदी बनाने
के लिए उसकी खोजबीन कर रहे थे, तब वह गलीली भाग गया। मैथ्यू
(के ग्रंथ) में पॉल के विद्रोह को नागरिक शान्ति, कानून और व्यवस्था के
लिए एक खतरा माना जाने का यह पहला द्योतक, संकेत है।

"उस समय से जीसस ने प्रचार शुरू कर दिया।" (४ : १७) शब्दों से
यह अर्थ लगाना चाहिए कि जोह्न को बंदी बना लेने के बाद से पॉल कुछ
और अधिक उद्दण्ड हो गया तथा कृष्ण-मन्दिर अधिकारियों के खिलाफ अपने

सार्वजनिक विरोध से और भी अधिक वाचाल, मुँहफट हो गया। वह उनको कहता था 'मेरा अनुसरण करो, और मैं तुम्हें आदमियों का मछुवारा बना दूँगा।' (४ १६) यह एक खतरनाक अपील थी, सरकारी तन्त्र को उलटाने के लिए जनता को उकसाना था, उत्तेजित करना था। इसके अन्दर, धर्म में किसी प्रकार का आध्यात्मिक या देव-/ब्रह्म-ज्ञान का संदेश, भाव ढूँढना/खोजना गलत है। इस कथन ने रोमन-प्रशासन के विरुद्ध जन-विद्रोह का आह्वान किया था।

"और जीसस यहूदी सभागारों में प्रचार करता हुआ गलीली में सर्वत्र, चारों ओर घूमता-फिरा" (४ २३) द्योतन करता है कि पॉल ने राज-विद्रोह की अग्नि प्रचण्ड रूप से प्रज्वलित करने के लिए सघन अभियान छेड़ रखा था जिसके फलस्वरूप व्यापक जन-गिरफ्तारियाँ और मृत्युदण्ड हुए।

अध्याय १५

हिन्दू धर्मग्रन्थों का बाइबलगत पुनरभ्यास

कृस्ती ब्रह्म-विज्ञान और बाइबल में सन्निहित दर्शनशास्त्र केवल अस्त-व्यस्त और अनियमित पुनरभ्यास तथा परिणामतः प्राचीन हिन्दू विचार और परम्परा का विकृत, तोड़ा-मरोड़ा रूप ही है।

कृस्ती देव-त्रयी का प्रश्न लीजिए। वहाँ किसी भी प्रकार से देव-त्रयी होनी ही नहीं चाहिए यदि कृस्ती-पंथ स्वयं को एकेश्वरवादात्मक घोषित ही करता है? प्रत्येक कृस्ती-व्यक्ति के लिए जीसस स्वयं ही ईश्वर है। किन्तु बाइबल में, जीसस स्वयं 'ईश्वर' का आह्वान 'पिता' सम्बोधन से करता है। इसलिए, जीसस ईश्वर नहीं है बल्कि वह ईश्वर है जिसे जीसस 'पिता' के नाम से पुकारता है और फिर भी एक अन्य ईश्वर बना रहता है जो 'पवित्र आत्मा' (होली सोल) कहलाती है।

कृस्ती-पुरोहित वर्ग दुराग्रही, हठी रूप से एक में तीन के सिद्धान्त से चिपटा रहा है जहाँ तीनों में से हरएक गौरव, गरिमा की दृष्टि से दूसरे के समान है और फिर भी वे एक ही अस्तित्व, सत्ता, रूप धारण रखते हैं। स्वयं कृस्तियों में भी एक-व्यक्तिवादी हैं जो देव-त्रयी में विश्वास नहीं करते। किन्तु यूरोप और ग्रेट ब्रिटेन में मध्ययुगीन काल में ऐसे लोगों को खूँटे से बाँधकर जला दिया गया था। सोसिनस को २७ अक्तूबर, सन् १५५३ में काल्विन के आदेश पर जिन्दा जला दिया गया था क्योंकि वह यही दृढ़तापूर्वक कहता रहा कि ईश्वर एक ही था। हमारे अपने समय में भी गिरजाघर उन लोगों की निन्दा, भर्त्सना करता है जो सोसिनस की भाँति एक अकेले अविभाज्य देवत्व की उद्घोषणा करते हैं।

प्रारम्भिक कृस्ती-पंथ को देव-त्रयी-धारणा बनाए रखनी पड़ी थी क्योंकि कृस्ती-पूर्व विश्व में सर्वत्र ब्रह्मा-विष्णु-महेश की हिन्दू देव-त्रयी श्रद्धा-

में घाल-मेलकर खड़ा किया गया था—यह सम्पूर्ण कथा अवतारी पुरुष कृष्ण के जन्म की ही सुनिश्चित कथा है। अजन्मे कृष्ण के माता-पिता वसुदेव और देवकी को राजा कंस ने कारागार में ठूंस दिया था क्योंकि एक आकाशवाणी ने कंस को सचेत सावधान कर दिया था कि देवकी की आठवीं सन्तान एक पुत्र ही कंस की मृत्यु का कारण बनना निश्चित था। उसी के हाथों कंस का वध होना था। सावधानी के रूप में कंस ने देवकी की प्रत्येक सन्तान का जन्म लेते ही वध कर देने की ठान ली। किन्तु जिस रात्रि कृष्ण का जन्म हुआ, कारागार के रक्षकों को निद्रा आ गई और पिता वसुदेव नवजात शिशु कृष्ण को बाढ़ आई यमुना नदी को पार कर घोर रात में ही नन्द के पशु-फार्म पर ले गए। वहाँ कृष्ण को नन्द की पत्नी यशोदा के पास लिटा दिया गया और उसकी नवजात कन्या को बन्दीगृह में पहुँचा दिया गया। भोर होने पर कंस को देवकी की सन्तान के जन्म की खबर दी गई। कंस क्रोधाविष्ट हो कारागृह जा पहुँचा, देवकी के पास लेटी हुई सन्तान को हाथों में उठाकर उसे पत्थर के फर्श पर दे मारा। हत्या कर दी गई कन्या की आत्मा एक विद्युत-रेखा-सी कौंध गई और उस कोठरी की दीवार की कगार पर एक देवी के रूप में विराजमान हो भयंकर गर्जना करती हुई भविष्यकथन कर गई "हे नृशंस, अत्याचारी, सुन ! तेरा वध करनेवाला तो अन्यत्र सुरक्षित पल रहा है। ठीक समय पर तेरा वध उसी के हाथों अवश्य होगा।' बाद में उक्त कथन अक्षरशः सत्य पूर्ण सिद्ध हुआ। कृष्ण आगे चलकर मल्ल-विद्या के अनुपम, सिद्ध विजेता बन गए और कंस पर नियन्त्रण कर उसे मार डालने में सफल हुए। जीसस के जन्म की कहानी को भगवान कृष्ण की कथा के अनुरूप ही घड़ लिया गया है। इसी प्रकार प्राचीन यहूदी जनश्रुति में भी माइज के जन्म की कहानी भी कृष्ण के जन्म की कथा ही है क्योंकि माइज तो महेश अर्थात महान् भगवान् सूचक संस्कृत शब्द का बाद के दिनों का यहूदी-उच्चारण है। चूँकि कृष्ण महान्, परम ईश्वर का मानव अवतार थे इसलिए स्पष्ट है कि यहूदी लोग अपने जनश्रुत नायक को माइज क्या कहते हैं और उसके जन्म की कथा भी कृष्ण के जन्म की कथा से क्यों मिलती-जुलती है।

हिप्पोलीटस के अनुसार बेसिलीडेस ने (हर. VII. १४ एडिनबर्ग

अनुवाद) यह सिखाया : "सुसमाचार (ग्रन्थ) सर्वप्रथम पुत्रत्व से पुत्र के माध्यम से आया (बेसिलीडेस कहता है), जो अर्कोन के पास बैठा था, अर्कोन तक, और अर्कोन ने यह ज्ञान अर्जन किया कि वह ब्रह्माण्ड का ईश्वर नहीं अपितु उसका प्रजात, उत्पन्न था। किन्तु वह स्वयं से ऊपर उस अनिर्वचनीय और अनाम, अनस्तित्व का संग्रहीत कोष था, और उस पुत्रत्व से वह परिवर्तित तथा भयातंकित भी था, जब उसे यह ज्ञान दे दिया गया कि वह किस अज्ञान में लिप्त था। यही है, वह कहता है, जो घोषित किया गया है प्रभु, भगवान् का डर बुद्धिमत्ता का प्रारम्भ है। क्योंकि क्राइस्ट (अर्थात् कृष्ण) द्वारा मौखिक उपदेश दिए जाने पर ही, जो उसी के पास बैठा था उसे बुद्धि प्राप्त होने लगी (यहाँ तक कि) वह समझने लगा कि अनस्तित्ववादी, अविद्यमान कौन है, पुत्रत्व क्या है और पवित्र आत्मा क्या है, ब्रह्माण्ड-तन्त्र क्या है और सभी वस्तुओं का समापन, परिणाम क्या होनेवाला है। यही है वह बुद्धिमत्ता जिसे रहस्य के रूप में बताया गया है जिसके बारे में (बेसिलीडेस कहता है) धर्मग्रन्थ निम्नलिखित प्रकार से अभिव्यक्त करता है : 'मानव बुद्धि से सीखे गए शब्दों में नहीं, बल्कि आत्मा के द्वारा सीखे गए शब्दों में। तब अर्कोन मौखिक रूप से ज्ञान प्राप्त कर लेने के बाद शिक्षित हो जाने पर, और फिर भय से ग्रस्त, पूरित हो जाने पर, स्वयं को अति अहम्वादी मान लेने के कारण जिस पाप का उत्तरदायी हो गया था उसका निराकरण, प्रायश्चित्त करने के लिए आगे बढ़ा। यह, वह कहता है, है जो उसने घोषणा की थी 'मैंने अपनी गलती, अपना पाप समझ लिया है, और मैं अपना अपराध जानता हूँ, (और) इसके लिए मैं आजन्म, सदैव (के लिए) पाप स्वीकार करूँगा।'"[1]

हमने ऊपर जिस अवतरण को उद्धृत किया है, वह यूनानी लेखकों से है। बेसिलीडेस ने द्वितीय शताब्दी के प्रथमार्ध में लिखा था।

हिन्दू धर्मग्रन्थ 'भगवद्गीता' से भलीभाँति परिचित लोगों को स्पष्ट हो गया होगा कि उपर्युक्त उपदेश और जिन परिस्थितियों में यह उपदेश

---

१ एडमंड्स कृत 'बुद्धिस्ट एण्ड क्रिश्चियन गोस्पेल्स' का आमुख, टोक्यो, १९०५ ईसवी, पृष्ठ ४०-४७।

भगवद्गीता के अंश ही हैं।
दिया गया था असंदिग्ध रूप से
अतः उक्त अवतरण इस तथ्य का अत्यन्त निर्णायक और शान्त कर देनेवाला प्रमाण है कि क्रिस्तो-पूर्व काल में हिन्दू-धर्मग्रन्थ, हिन्दू-जनश्रुति, हिन्दू-विद्या हिन्दू-पौराणिकता तथा हिन्दू-परम्परा ही सर्वत्र व्याप्त थे, विश्वव्याप्त थे। हिन्दू शासन और हिन्दू शिक्षण की समाप्ति के बाद शताब्दियाँ बीत जाने पर भी ऐतिहासिक उतार-चढ़ाव की तकलीफ और दबाव में हिन्दू संस्कृति को जितना भी विकृत होना पड़ा हो, फिर भी यह स्वाभाविक धारा के रूप में सतत बनी ही रही। यह हृदयगम करने, समझने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए जबकि स्वयं भारत में ही हिन्दू-धर्म मुस्लिम आक्रमणों, आघातों और बाद में ब्रिटिश शासन के कारण क्रान्तिकारी रूप में भारी परिवर्तन का शिकार हो गया।

ऐमिर्सांडेस में लिए गए उद्धरण में पुरुत्व हैं भगवान् कृष्ण क्योंकि वे एक दिव्यावतार थे। चूंकि क्राइस्ट (कृस्त) कृष्ण शब्द का अरब-यहूदी-यूरोपीय उच्चारण है, इसलिए क्राइस्ट (कृस्त) नाम का उच्चारण कृष्ण किया जाना चाहिए। उनका शिष्य अर्जुन था। यह वही नाम है जिसकी वर्तनी व उच्चारण अर्कोन हो गए। अर्कोन अर्थात् अर्जुन और पुरुत्व अर्थात् दिव्य अवतार कृष्ण (वर्तनी कृस्न की जाती है) एक रथ में परस्पर आस-पास ही बैठे हैं जहाँ कृष्ण सारथि हैं जो युद्धक्षेत्र में योद्धा अर्जुन का मार्ग-दर्शन कर रहे हैं। इसके बाद कोई संशय नहीं रह जाता कि क्राइस्ट और अर्कोन कृष्ण और अर्जुन से भिन्न, दूसरे कोई हैं ही नहीं।

अर्जुन युद्धक्षेत्र का निरीक्षण-सर्वेक्षण करते हुए पाता है कि उसके सगे-सम्बन्धी निकटस्थ और प्रियजन, जो उसके कुटुम्बी थे, जिनके साथ वह पले-बढ़े बड़ा हुआ था, जिनकी वह आदर-भाव से पूजा, मान करता था—वहाँ सब लोग उससे प्राणघाती, भयकर युद्ध करने के लिए सामने तैयार खड़े थे। मन भर, विषाद से भर जाने के कारण अर्जुन ने कृष्ण के सामने मोहग्रस्त हो स्पष्ट कह दिया कि 'अब मेरा मन, हृदय युद्ध करने के लिए किंचित भी तैयार नहीं है। मैं वापस लौट जाऊँगा और दूसरे पक्ष को विजयी मान लेने को भी तैयार हूँ।"

कृष्ण ने फिर अर्जुन की भर्त्सना, प्रताड़णा की। उक्त अवसर पर दिया

गया कृष्ण का परामर्श 'भगवद्गीता' कहलाता है। यह शुद्ध, सरल संस्कृत भाषा में वार्तालाप है जिसमें अर्जुन तुरन्त उत्पन्न प्रश्न, संशय कृष्ण के समक्ष रखता है और कृष्ण जिसका उत्तर, शंका-समाधान सविस्तार कर देते हैं। इसमें सम्पूर्ण भाव, उद्देश्य अर्जुन को युद्ध के लिए तैयार करना था क्योंकि उसे युद्ध के लिए ही, एक योद्धा के रूप में पाला-पोसा और प्रशिक्षित किया गया था। कृष्ण अर्जुन के मन में यह भाव प्रस्थापित कर देना चाहते थे कि तुम अपनी विशिष्ट भूमिका को अन्तिम क्रान्तिक-क्षण में नहीं छोड़ सकते।

अतः कृष्ण अर्जुन को जीवन और कर्तव्य का पूर्ण विवेचन अनन्त असीम ब्रह्माण्ड के चक्रों में स्पष्ट रूप से कर देते हैं। अर्जुन को बताया जाता है कि कर्तव्य चाहे कितना ही अप्रिय या क्रूर प्रतीत होता हो, उससे बच सकने का कोई मार्ग, उपाय नहीं है। ईश्वर निर्धारित उद्देश्यों, प्रयोजनों हेतु ही सृष्टि करता है और सृष्टि व संसार विनाश के अनन्त चक्रों में भी हर प्राणी को ईश्वर द्वारा सौंपे गए कर्तव्यों का पालन करना ही पड़ता है। अपना सन्देश पुष्ट करने के उद्देश्य से कृष्ण स्वयं को विराट् रूप (पवित्र आत्मा) का आकार दे देते हैं जिसके चरण पृथ्वी से नीचे रसातल को स्पर्श कर रहे थे और जिसका शीश तारों नक्षत्रों के मध्य पहुँच गया था। इसके विराट्-खुले जबाड़ों से आग की लपटें व धुआँ बाहर निकल रहा था मानो अन्दर कोई सुलगती हुई भयकर भट्ठी, अग्नि-राशि हो। सभी प्रकार के असंख्य प्राणी उस ब्रह्माण्डीय जबड़ों से या तो बाहर आते दिखाई दे रहे हैं या उसी में प्रवेश करते और नष्ट होते दिखाई पड़ रहे हैं—अनादि काल से और अनन्त काल तक।

उक्त विशाल, विराट् आकृति के समक्ष वह अति लघुकाय अर्जुन इतना विचलित, भयभीत हो गया कि उसने भगवान् कृष्ण से प्रार्थना, याचना की कि आप एक बार फिर अपनी उसी दयामय और मनोहारी मानवाकृति में आ जाएँ।

जब कृष्ण ने अपना साधारण रूप पुनः धारण कर लिया, तब अर्जुन ने स्वीकार किया कि इस विक्षुब्धकारी जटिलतापूर्ण विश्व में भी वह अपनी अत्यल्प भूमिका निभाने की अनिवार्यता को पूर्णरूपेण अंगीकार, मान्य कर चुका है। अर्जुन ने कृष्ण का आभार व्यक्त किया कि उन्होंने अपने सम्पूर्ण

होने के पाप से बचा लिया और परि-
ज्ञानोपदेश से अर्जुन को कर्तव्य-च्युत होने के पाप से बचा लिया और परि-
णामस्वरूप सर्वनाश से भी रक्षा कर ली। कृस्तियों में अपराध स्वीकारने
का विचार भी अर्जुन द्वारा भगवान् कृष्ण के समक्ष पाप-स्वीकृति के बोध से
ही उद्भूत हुआ है।

ऊपर हेर्मिसोडेस से हमने जो अवतरण उद्धृत किया है, वह भगवान्
कृष्ण के सन्देश अर्थात् 'भगवद्गीता' का ही भावानुवाद, व्याख्या है। चूँकि
हेर्मिसोडेस द्वितीय शताब्दी में था जबकि बाइबल ने कोई रूप, आकार भी
ग्रहण नहीं किया था, इसलिए स्पष्ट है कि उस समय अरब, यूनानी और
यहूदी समुदायों में (तथा अन्य सभी समुदायों में भी) प्रचलित एकमात्र धर्म-
विज्ञान और पौराणिकता हिन्दू धर्म-विज्ञान और पौराणिकता ही थे। तथापि
उस समय कृष्ण का उच्चारण क्राइस्ट (कृस्त) होता था (भारत में भी,
उदाहरणार्थ बंगालियों में)। वह ईश्वर-पुत्र कहलाता था क्योंकि कृष्ण एक
अवतार था। कृस्तियों में अपराध-स्वीकार पर आग्रह भगवान् कृष्ण के
सम्मुख अर्जुन के पाप-स्वीकार से व्युत्पन्न है कि अर्जुन गलती पर था।
ईश्वर का सत्प्राप्य हाथ के पास, निकट ही होने के बारे में कृस्ती-आग्रह
वही है जो कृष्ण ने अर्जुन को बताया था कि यदि वह युद्ध करते हुए मर
गया तो शास्त्र कहते हैं कि उसको आह्वान, यशस्वी होकर, स्वर्ग के खुले
द्वार में प्रविष्ट होने के लिए होगा। यह भविष्यवाणी कि मसीहा (अर्थात्
महेश — मसिहा (मसियर—अर्थात् ईश्वर) पुनः प्रकट होगा, भगवान् कृष्ण
द्वारा की गई वही भविष्यवाणी है कि जब कभी अ-व्यवस्था जीवन जीना
दूभर कर देती है तब धर्म की स्थापना के लिए और अधर्म का नाश करने
के लिए भगवान स्वयं अवतार ले लेते हैं। स्वयं प्रयोग किए गए शब्द
'मसीह' और 'मसियर' प्रभु, ईश्वर के अर्थ-द्योतक संस्कृत शब्द 'महेश' और
'ईश्वर' हैं। ऊपर उल्लेख किया गया मौलिक परामर्श पूरी तरह वही है जो
'भगवद्गीता' में दिया गया है।

ईस्वी-पूर्व युगों में विश्व की संस्कृति पूरी तरह मात्र हिन्दू संस्कृति ही
थी। एडमण्ड्स ने एक पाद-टीप में अंकित किया है : "जोसेफस, एपियन,
१-२२ वाली कॉन्ट्रा एपियन के विरुद्ध प्राधिकरण यही (कहता) है कि यहूदी

तो स्वयं हिन्दू मूल के हैं।"[2]

यहूदियों का हिन्दू-मूलोद्भव एक अन्य महत्त्वपूर्ण विवरण में भी
स्पष्ट है और वह है मोजेज-सम्बन्धी विवरण।

यहूदी लोग जिसका उच्चारण मोजेज करते हैं वह महान् भगवान का
अर्थ-द्योतक 'महेश' हिन्दू शब्द ही है। मोजेज शब्द से जिस महान ईश्वर
का संकेत मिलता है वह भगवान् कृष्ण से भिन्न अन्य कोई नहीं है जैसा
मोजेज की जीवन-कथा से प्रतीत होता है। यह भगवान् कृष्ण की कथा का
प्रतिरूप ही है। दोनों ही दृष्टान्तों में शासकों को एक आकाशवाणी, भविष्य-
कथन द्वारा पहले ही सावधान कर दिया गया था कि आगे जन्म लेने वाला
एक विशेष बालक उनका वध करेगा। इसलिए उन दोनों ही राजाओं ने
उन दोनों बच्चों को शैशवावस्था में ही मार डालने का संकल्प कर लिया
था। किन्तु किसी प्रकार का अनिष्ट किए जाने से पूर्व ही वे दोनों शिशु
सुरक्षित स्थानों पर पहुँचा दिए गए और वहीं चुपचाप, गुप्त रूप में उनका
लालन-पालन होता रहा। बड़े हो जाने पर, कृष्ण ने पाण्डवों के अपने
वनवास में उनका मार्गदर्शन किया था जबकि मोजेज ने यहूदियों का मार्ग-
दर्शन किया। दोनों अपने अनुयायियों को अग्नि व धुएँ में ही दृश्यमान होते
हैं, दिखाई देते हैं।

इस प्रकार अन्त तक, मोजेज का चरित्र कृष्ण के चरित्र के बिल्कुल
समरूप है। मोजेज के अन्त के बारे में कहा जाता है "यहूदी लोग मीडिया-
नाइटों से लड़े और उन पर विजय प्राप्त की। जब (मिस्र छोड़ने के) ६०
वर्ष पूरे हो गए, तब ३० दिन की अवधि में मोजेज ने यहूदी-समागम को
सम्बोधित किया और कहा कि चूँकि मैं अब १२० वर्ष की आयु का हो चला
हूँ इसलिए ईश्वर की इच्छानुसार अब मुझे इस संसार से विदा होना है।
उसने उन लोगों से कहा कि वे ईश्वर का एक मन्दिर बनाएँ और आदेश
दिया कि उसके द्वारा निर्धारित नियमों का पालन किया जाए।"[1]

---

१ एलबर्ट जे० एडमण्ड्स कृत 'बुद्धिस्ट एण्ड क्रिश्चियन गोस्पेल्स', पाद
२५।

२ दि वर्क्स आफ फ्लेवियस, जोसेफस पृष्ठ १०७ से ११६।

बिल्कुल यही कुछ भगवान् कृष्ण के बारे में भी कहा जाता है। वे भी १२० वर्ष की उम्र के थे जब उन्होंने अपने लोगों से कहा था कि मेरे जीवन का उद्देश्य पूरी तरह समाप्त हो गया और इसलिए मैं वानप्रस्थी हो जाऊँगा तथा अपनी इहलीला समाप्त हो जाने की प्रतीक्षा करूँगा।

इसलिए एडमण्ड्स जिसे हमने ऊपर उद्धृत किया है, पूरी तरह सही है। न केवल यहूदी, अपितु यूनानी और अरब भी—सभी हिन्दू-धर्म के प्राचीन युगों में संस्कृत भाषा सीखते थे। हिन्दू अपनी पवित्र संहिता के और प्राचीन युगों में संस्कृत भाषा सीखते थे। हिन्दू अपनी पवित्र शिक्षा का ज्ञान सर्वत्र प्रचार-प्रसार करने को उत्सुक, आतुर था और हेलेनिया का ज्ञान सर्वत्र प्रचार-प्रसार करने को उत्सुक, उद्यत था···(अलेक्जेण्डर वालों इसका भाषान्तर करने को उत्सुक, उद्यत था···(अलेक्जेण्डर पॉलीहिस्टर के) एक अवतरण में एशिया लघु का एक लेखक अलेक्जेण्ड्रिया के साइरिल द्वारा हमारे पास सुरक्षित रखा गया है·· लेखक ने बैक्ट्रिया के धार्मिक व्यक्तियों को (ईसा-पूर्व दो शताब्दी में) समन सम्बोधित करके बुद्ध-धर्म का ज्ञान प्रकट कर दिया है···(समन संस्कृत में श्रमण है)·· अलेक्जेण्ड्रिया के क्लेमेण्ट के एक अवतरण में (स्ट्रोमाटा III-७) पोलिहिस्टर की भारत-सम्बन्धी रचना का उल्लेख है और उसके पूर्वापर संदर्भ में क्लेमेंट ने निर्वस्त्र योगियों का वर्णन सत्य के सृजनकर्ताओं के रूप में किया है।"[1]

पश्चिमी लेखकों ने हिन्दू-धर्म को बौद्ध-धर्म समझकर स्वयं दिग्भ्रमित होकर विश्व को गलत राह पर चलाया है। इसलिए ऐसे सब मामलों में पश्चिमी लेखकों के बौद्ध-धर्म-सम्बन्धी सभी संदर्भों को हिन्दू-धर्म-सम्बन्धी ही समझना, मानना चाहिए।

तदनुसार, मुस्लिम समनी वंश का नाम ईश्वर से डरनेवाले, परम भक्त हिन्दू श्रमणों से पड़ा है जो अत्यन्त तपस्वी जीवन बिताते थे। हिन्दू-शासन की समाप्ति तथा परिणामस्वरूप पवित्र हिन्दू प्रशिक्षण निरस्त हो जाने के साथ ही, इन श्रमणों का बलात् इसलाम स्वीकार कराया गया, दुश्चरित्रपूर्ण जीवनयापन कराना सिखाया गया और अन्त में वे क्रूर-नर-

---

1 एलबर्ट जे० एडमण्ड्स कृत 'बुद्धिस्ट एंड क्रिश्चियन गोस्पैल्स', पृष्ठ २१-२६।

राक्षस व निर्दयी फकीर बन गए।

भारत में भी, दो युवा ब्राह्मण बालक जिनको भद्र, विनीत, ईश्वर से डरनेवाले संस्कृत-पाठी पंडित होकर चतुर्दिक यशस्वी होना चाहिए था, जब अपहृत और हरम में पालित-पोषित हुए तब वे इमादशाही और बारीदशाही की खूँखार सल्तनतों के पूर्वज बन गए। ये सल्तनतें विश्व-भर में फैली अन्य सल्तनतों से कामुकता, विश्वासघात और नृशंसता-क्रूरता में किसी प्रकार भी भिन्न न थीं।

निर्वसन तपस्वी जीवन और ईमानदारी, मानव-सेवा और सत्य, सम्पूर्ण सत्य व सत्य के अतिरिक्त कुछ भी नहीं—पर आग्रह हिन्दू सिद्धान्त, हिन्दू आचरण हैं। हरिश्चन्द्र, राम और सावित्री ऐसी ही कुछ महान् नर-नारियाँ विभूतियाँ हैं हिन्दू जिनकी पूजा-अर्चना करते हैं। अनासक्ति और निर्वसन, नग्नता की सीमा तक अपरिग्रह हिन्दू-पूजा-पद्धति, भक्ति है।

"क्लीमैंट उन सूचीस्तम्भीय (पिरामिडी) स्तूपों का वर्णन करता है जिनमें एक ईश्वर की अस्थियाँ संग्रहीत थीं···ईसा-पूर्व दूसरी शताब्दी में हम सीरियाई-सेना में हाथियों पर कुछ 'हिन्दू महाव्रतों से भी मिलते हैं'··· हिन्दू-दर्शनशास्त्र'' के प्रति जिज्ञासा प्रज्ञावान यूनानियों ने प्रकट की थी··· क्राइस्ट के समय पाठकों, प्रवाचकों की शालाएँ पाली-सिद्धान्तों का पठन-पाठन चालू रखे हुए थीं···संवाद, सम्भाषण के प्रत्येक संग्रह के अपने-अपने आचार्य थे जो सम्पूर्ण संग्रह, ग्रंथ को हृदयंगम-कंठस्थ किए हुए थे।"[1]

सूचीस्तम्भीय स्तूप हिन्दू स्तूप थे जिनमें भगवान् कृष्ण या अन्य देव-तुल्य व्यक्तियों की अस्थियाँ संयोजित थीं। यह धारणा गलत है कि स्तूपों का आविष्कार, निर्माण बुद्ध के अनुयायियों ने किया था। महाव्रतों, श्रमणों, हिन्दू-शास्त्रों, पूजा-पद्धति, भक्ति आदि का संदर्भ स्पष्ट संकेत देता है, दर्शाता है कि ईसा-पूर्व, क्रुस्ती-पूर्व विश्व में हर स्तर और हर श्रेणी का व्यक्ति एक हिन्दू ही था।

पश्चिमी विद्वानों ने बौद्ध-धर्म या जैन-धर्म की बात करके प्रायः स्वयं को और अन्य लोगों को भी दिग्भ्रमित, पथभ्रष्ट किया है, जबकि उनको

---

१. एलबर्ट जे० एडमण्ड्स कृत 'बुद्धिस्ट एंड क्रिश्चियन गोस्पैल्स', पृष्ठ २६।

केवल हिन्दू धर्म की ही बात, चर्चा, उल्लेख करना योग्य था।

बौद्ध-धर्म, जैन-धर्म और हिन्दू-धर्म एक ही संस्कृति के विभिन्न पक्ष मात्र हैं। बुद्ध एक हिन्दू राजकुमार मात्र ही था जो तपस्वी बन गया। बुद्ध ने कभी भी लेशमात्र उल्लेख नहीं किया कि वह एक भिन्न धर्म की स्थापना के लिए हिन्दू-धर्म का परित्याग कर रहा था। अतः वे सभी जो बौद्ध-धर्म को हिन्दू-धर्म से भिन्न, पृथक् मानकर उसकी चर्चा करते रहे या तत्सम्बन्ध में लिखते रहे हैं पूरी तरह गलती पर हैं। परिणामस्वरूप, कहीं भी बौद्ध-धर्म के प्रचलन के सन्दर्भों को हिन्दू-धर्म के अस्तित्व का प्रमाण, साक्ष्य ही मानना चाहिए।

"सिन्धम मंवो अर्मेनिया में हिन्दू बस्ती के एक अर्मेनियाई इतिहासकार के हवाले से एक कहानी बताता है ... यह हिन्दू बस्ती प्रथम शताब्दी से चौथी शताब्दी तक बनी रही थी।"[1]

चूँकि अर्मेनिया स्वयं ही एक हिन्दू देश था, इसलिए यह कहना भ्रामक है कि अर्मेनिया में एक हिन्दू बस्ती थी। इस प्रकार से तो स्वयं बम्बई में भी, जो भारत की एक महानगरी है, एक भाग है जो 'हिन्दू बस्ती' कहलाता है इसी नगरी के उपनगर 'दादर' में। क्या इसका यह अर्थ है कि हिन्दू मात्र मुट्ठी-भर लोग ही हैं जो एक महानगरी की छोटी-सी बस्ती में ही सिमटे हुए हैं? इतिहास-लेखकों और शोधकर्ताओं को ऐसी सम्भावनाओं पर भी विचार करते रहना चाहिए। यह भी हो सकता था कि अन्य धर्मों या सम्प्रदायों-पंथों के उदित हो जाने पर भी, जो लोग स्वयं को निष्ठापूर्वक व आग्रहपूर्वक हिन्दू ही घोषित करते रहे, वे थोड़े-से ही रह गए थे। अन्य लोगों की बहु-संख्या, चाहे हिन्दू ही थी, स्वयं को हिन्दू घोषित करने के लिए शायद न तो कोई हिम्मत, प्रेरणा या निश्चय प्राप्त कर सकी हो।

'आर्मेनियन' या 'अर्केमेनियन' शब्द स्वयं ही सूर्योपासक अर्थात् एक हिन्दू का अर्थ-बोधक है। संस्कृत में 'अर्क' सूर्य का द्योतक है और 'मानव' आदमी 'मैन' है।

"बौद्ध और गार्बो ने बताया है [रिचर्ड गार्बो—फिलॉसफी ऑफ एन्शेण्ट इण्डिया—शिकागो (१८९७)] कि मनुष्य का गुरु ज्ञानवादी के रूप में भौतिक, मनोवैज्ञानिक और आध्यात्मिक वर्गीकरण सांख्य-दर्शनशास्त्र के तीन गुणों के समान ही है।"[1]

१. सिन्धु दे लार्ड हिस्टोइरे डेस रिलिजन्स, १८०१।

इस संक्षिप्त विवेचन से पाठक को विश्वास हो जाना चाहिए कि पश्चिमी एशिया और यूरोप में कृस्ती-पंथ-पूर्व का सारा वातावरण पूर्णरूपेण हिन्दू-वातावरण ही था। चूँकि जीसस मात्र एक काल्पनिक व्यक्तित्व ही है, तथाकथित कृस्ती-पंथ भी एक पृथक् हो गया पंथ ही था जो बिना किसी अन्तर के भी अपने को पृथक्, विभिन्न दिखाने के लिए एक झूठी, नकली सांकेतिक नाम-पर्ची अपने ऊपर लगा बैठा।

१ एलबर्ट जे० एडमण्ड्स कृत 'बुद्धिस्ट एंड क्रिश्चियन गोस्पैल्स', पृष्ठ ३८।

अध्याय १६

हिन्दू प्रथाएँ ही कृस्ती-रूप में व्यवहारगत हैं

कृस्ती-पंथ कोई धर्म नहीं होने के कारण आश्चर्य नहीं है कि यह अब भी उन्हीं हिन्दू धार्मिक शब्दावली और कर्मकांडों, प्रथाओं का पालन कर रहा है जो उस समय विद्यमान थी जब कृष्ण मन्दिर-व्यवस्था का विवाद उठा ही था।

२००० वर्ष पूर्व समस्त विश्व मे प्रचलित हिन्दू-प्रथा के अनुसार (मदन या कामदेव या अनंग के विभिन्न नामों से पुकारे जानेवाले) प्रेम के देवता का भगवान् शिव द्वारा भस्म कर देने और पुनर्जीवित कर देने के अवसर पर उन्माद और आमोद-प्रमोद का समारोह २५ मार्च के दिन मनाया जाता था वही उत्सव आज भी हिन्दुओं द्वारा 'होली' के रूप में उल्लास-पूर्वक मनाया जाता है। यह सार्वजनिक प्रहर्ष, उल्लास से पूर्ण उत्सव है। यह विषुव सायन के बाद लम्बे, बड़े दिनों के प्रारम्भ होने का संकेत भी था। इसका सर्वाधिक आधुनिक, नया रूप 'अप्रैल मूर्ख दिवस' है जो १ अप्रैल को मनाया जाता है।

हिन्दू नववर्ष दिवस भी २५ मार्च के आसपास ही होता है।

प्रोफेसर वैल्स ने अपनी पुस्तक 'डिड जीसस ऐक्जिस्ट ?' मे उपर्युक्त की चर्चा दी है. उसे प्रामाणिक, सही माना है।

वे यह भी कहते हैं कि एक मृत व्यक्ति को कर्मकांडों के माध्यम से ईश्वर से मिला देने, जोड़ देने की प्रक्रियाएँ उन दिनों में आवश्यक समझी जाती थी यह मात्र हिन्दू विश्वास के साथ ही मेल खाता है—अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति की पृथक्-पृथक् आत्मा भी उसी दिव्य परमपिता, परमात्मा का अंश है।

प्रोफेसर वैल्स अन्य कृस्तियों के साथ ही यह गलत विश्वास करते हैं

कि बपतिस्मा में जल मे प्रवेश का अर्थ मृत्यु, निमज्जन डुबकी का अर्थ दफनाना और पुनः बाहर आ जाना पुनर्जीवन ग्रहण करने का द्योतक था।

इसी प्रकार सभी बातों में घाल-मेल, घपलेबाजी, ऊटपटांग गड़बड़ हो गया। ये तथाकथित तीन कर्म 'स्नान' का मात्र एक ही सरल, सीधा कर्म है। यह सर्वज्ञात है कि किसी भी हिन्दू कर्मकांड या समारोह से पूर्व, व्यक्ति को पवित्र, शुद्ध होने के लिए स्नान करना पड़ता है। अतः आज जिसे कृस्ती-बपतिस्मा प्रथा समझते हैं, वह तो हिन्दुओं का स्नान मात्र है—अन्य कुछ नहीं।

स्नान के बाद व्यक्ति को बिना सिले सफेद वस्त्र धारण करने को दिए जाते हैं, उसे नया नाम दिया जाता है और दूध व शहद ग्रहण करता है। यह भी हिन्दू प्रथा है। यज्ञोपवीत, जनेऊ धारण करनेवाले हर बालक को ये वस्तुएँ दी जाती हैं और उसका नाम भी नया ही रख देते हैं। यह समारोह 'व्रत बंधन' या 'मौंजी-बंधन' कहलाता है। पवित्र, आशीर्वाद-युक्त प्रसाद दूध और शहद 'तीर्थ' कहा जाता है। इसकी घूंट, चुस्की लेना शुभ, मांगलिक विश्वास करते हैं।

पवित्र स्थानों-तीर्थों में परम्परागत रूप से दाढ़ी-मुंडन-क्षौरकर्म व स्नान करने के बाद बिना सिलाई किए श्वेत परिधान धारण करके प्रवेश करने की हिन्दू-प्रथा इसलाम में भी प्रचलित है क्योंकि 'इसलाम' शब्द का अर्थ भी हिन्दू-देवताओं के मन्दिर ही (ईश-आलयम्) है।

प्रोफेसर वैल्स का कथन है कि ओसिरियन उत्सव मृत्युपरान्त मोक्ष-प्राप्ति के लिए निरूपित था। हिन्दुओं की पवित्र देव-भाषा संस्कृत मे ईश्वर का अर्थ परमात्मा है। अतः मिस्र में सूर्य देवता का शब्द ओसिरेस ईश्वर-सर्वज्ञ देव का अपभ्रंश रूप स्पष्ट है। हिन्दू-विश्वास, आस्था के अनुसार मृतक सूर्यलोक में चले जाते हैं। तथाकथित कृस्तियों द्वारा मनाया जानेवाला त्योहार 'ऑल सोल्स डे' हिन्दू-प्रथा के 'सर्व पितृ अमावस्या' का लगभग पूर्णरूपेण अनुवाद ही है—इसमें दिवंगत पूर्वजों को श्रद्धांजलि दी जाती है। प्राचीन काल के अरबों और यूरोपियनों मे ओसिरियन उत्सव स्पष्टतः हिन्दू त्योहार ही था। इस प्रकार अरब लोग व यूरोपियन लोग मूलतः हिन्दू ही हैं।

प्रक्रिया शामिल थी। प्रोफेसर वेल्स कहते हैं कि रोटी और शराब कम्यून जीसस के शरीर और रक्त के द्योतक, प्रतीक हैं। हिन्दुओं में भोजन दिव्य-मूर्ति के समक्ष रख दिया जाता है और फिर देवता का आह्वान किया जाता है कि वह इसे ग्रहण करे तथा अपना आशीर्वाद दे जिससे इस प्रसाद को ग्रहण करनेवाले भक्तों को इस दैवी-प्रकाश और अनुकम्पायुक्त खाद्य-भक्षण से आध्यात्मिक पुष्टि, भगवत्कृपा और चैतन्य प्राप्त हो।

क्रुस्ती-पंथ के एक विद्वान् अक्टोमेयिअर ने मार्क में उल्लेख की गई ४,००० और ५,००० व्यक्तियों की दो चमत्कारी दावतों की इस साक्ष्य के रूप में व्याख्या की है कि सेंट-पॉल की पद्धति वाला परमप्रसाद मात्र धार्मिक तक ही सीमित, प्रचलित नहीं था। यह सही है। मन्दिरों में साम्प्रदायिक भोज या दावत, जिसमें नगर की सम्पूर्ण जनता तथा कुछ बाहरी आगन्तुक भी शामिल हों हिन्दू-पूजा के सामान्य लक्षण हैं। ऐसे मन्दिर हिन्दू-देवकुल के सभी देवताओं या उनमें से कुछ को अपने यहाँ प्रतिष्ठित किए रहते थे।

क्रुस्ती-धर्मविज्ञान के निपुण विद्वान् अभी तक यही विचार करते रहे हैं कि अन्तिम भोज अवश्यमेव परम-प्रसाद अर्थात् प्रभु-नैवेद्य ही था। किन्तु हमारी शोध-उपलब्धि इससे बिल्कुल भिन्न है। हमारे विचार में तो बाइबल की कोई धार्मिक भूमिका है ही नहीं। अतः अन्तिम भोज प्रारम्भिक क्रुस्ती नेताओं की बैठक का अन्तिम रात्रि-भोज था जो उन रोमन सैनिकों द्वारा भंग कर दिया गया था जिन्होंने मुखबिरों से सूचना पाने पर षड्यन्त्रकारियों के गुप्त स्थान पर छापा मारा था और उनको पकड़कर बन्दी बना लिया था।

ईस्टर भी क्रुस्ती उत्सव, समारोह नहीं है। यह यहूदी 'पास ओवर' त्यौहार का जारी रहना ही था। मिस्र से यहूदियों के निष्क्रमण, प्रस्थान का यह द्योतक विश्वास किया जाता है। तथापि यह सत्य नहीं है। यह एक प्राचीन हिन्दू-पर्व है जो एक महत्त्वपूर्ण भूल में स्पष्ट है। उक्त अवसर पर यहूदी लोग खमीर की रोटी और एक कड़वी शाक खाते हैं। हिन्दुओं में भी अपने नववर्ष के दिन नीम की कुछ पत्तियाँ खाना, जो अत्यन्त कटु होती हैं, सामान्य चलन है, प्रथा है। यह दिवस ईस्टर के आसपास ही होता है।

यूनानी हो या यहूदी, क्रुस्ती-पूर्वकाल की परम्पराएँ सभी प्रकार हिन्दू-परम्पराएँ ही थीं। यह तथ्य प्रोफेसर वेल्स की इस टिप्पणी से भली प्रकार द्रष्टव्य है "अस्कलेपियोस होमर में एक कुशल चिकित्सक के रूप में विद्यमान है जिसके पुत्र ट्राय में यूनानी शिविर में चिकित्सक थे। कुछ शताब्दियों बाद ही वह त्राता, संरक्षक देवता के रूप में व्यापक स्तर पर पूजा जाने लगा था।"[1]

हिन्दू-परम्पराएँ लाखों, करोड़ों वर्ष प्राचीन हैं जबकि हेलेनिस्टिक परम्पराएँ कुछ हजारों वर्ष पुरानी ही हैं। अतः उनमें जब भी कभी कोई समरूपता खोज ली जाए, तब यह तो स्वतः स्पष्ट होना चाहिए कि उसका मूलोद्भव हिन्दू-धर्म से ही है। हिन्दुओं में दो युग्म-भ्राता अश्विनीकुमारों ने देवताओं के परम वैद्यों, चिकित्सकों के नाते देवासुर-संग्राम में आहत देवताओं की सेवा-सुश्रूषा, प्राथमिक चिकित्सा की थी। वे एक पुत्र और परी से जन्मे थे। इससे यूनानी पौराणिकता का हिन्दू-मूल स्रोत दृष्टान्त के रूप में साफ हो जाना चाहिए।

प्रोफेसर वेल्स आगे कहते हैं—"यह साफ है कि जब क्रुस्ती-पंथ का प्रारम्भ हुआ तब परिआवरण में एक प्रभावकारी तत्त्व के रूप में गूढ़ ज्ञान-वाद का कोई-न-कोई प्रकार विद्यमान था। फारस में अभी भी ऐसे व्यक्ति मौजूद हैं जो स्वयं को मन्डीयन (गूढ़ ज्ञानवादी) कहते हैं और जिनके धार्मिक पाठ्य-सार मुसलिम विजय के समय भी काफी प्राचीन थे।"[2]

विश्व के लिए फ्रेंच शब्द 'मोन्डे' है। यह संस्कृत शब्द 'ब्रह्माण्ड' से मूलोद्भूत है। संस्कृत, हिन्दू-परम्परा में 'ब्रह्म-वादिन' एक अन्य शब्द है 'गूढ़ ज्ञानवादी' के लिए, उसके पर्याय के रूप में। अतः यह स्पष्ट है कि तथाकथित मन्डीयन लोग हिन्दू थे और प्राचीन फारसी तथा फ्रान्सीसी लोग भी हिन्दू ही थे।

गूढ़ ज्ञानवाद का अंग्रेजी-समानक 'ग्नोस्टिसिज्म' भी शुद्ध संस्कृत युग्म-शब्द है—'ज्ञ-आस्तिक' वाद अर्थात् वे लोग जो दैवी अंश को

---

१. 'डिड जीसस ऐक्ज़िस्ट?', पृष्ठ १६०।

२. वही, पृष्ठ १६१।

प्रमात्मक प्रशंसा करते हैं या उसकी व्यापकता, बृहद् रूप को बौद्धिक स्तर पर स्वीकार करते हैं।

गूढ ज्ञानवाद का स्पष्टीकरण, उसकी व्याख्या करते हुए प्रोफेसर वैल्स कहते हैं यह आधारभूत गूढ ज्ञान का विचार है कि प्रत्येक मानव अस्तित्व एक स्वर्गिक, आकाशीय परम-अस्तित्व का अंश है ''इस स्वर्गिक अस्तित्व को उच्चतम देवांश न मानकर प्राय सर्वोच्च अस्तित्व द्वारा एक अर्धव्यापक आदिकल्प-मानव के रूप में स्वयं सृजित अस्तित्व मानते थे···मानव का काम यह स्वीकार, मान्य करना है कि उसका सत्यरूप, उसकी आत्मा का यही स्वर्गिक प्रारम्भ प्रादुर्भाव है।''

उपर्युक्त कथन अन्य कुछ न होकर हिन्दू विचार ही है। आदि आदर्शरूप मानव भगवान् राम या भगवान् कृष्ण ही हैं जो परिणामस्वरूप, संस्कृत भाषा में मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में विभूषित किये गये हैं।

यूनानी रचनाओं में उपलब्ध होनेवाला ईश्वर-सम्बन्धी 'सीमन (साइमन) मागस' नाम-सूचक शब्द हिन्दू शब्दावली 'श्रीमन् महायोगेश' है। ''सीमन ने शिक्षा दी थी, बताते हैं कि उसमें (आकाश से) पृथ्वी पर यह महाशक्ति मानव को प्रदर्शित करने के लिए प्राप्त हुई थी कि उनकी आत्माएँ भी उसी महाशक्ति की अंश हैं। उसने अपनी शिक्षाओं में यह भी कहा कि मानव को मोक्ष-प्राप्ति उसकी शिक्षाओं को ग्रहण करके ही हो सकती थी, मिल सकती थी···उसने अपने अनुयायियों को इस प्रकार प्रभावित कर दिया कि वे उसे अपना दैवी-मुक्तिदाता, त्राता, संरक्षक मानने लगे।''

उपर्युक्त सार वही है जो भगवान् श्रीकृष्ण ने अपनी श्रीमद्भगवद्-गीता में कहा है। 'श्रीमद्' शब्द भी श्रीमन् अर्थात् सीमन (साइमन) का ही व्युत्पन्न शब्द है।

''स्कीनबाइम ने हिप्पोलिटस (मृत ईसा-पश्चात् २३५ में) के साक्ष्य से दर्ज किया है कि सीमन की अनेक उपाधियों में से एक क्राइस्ट (कृस्त) अर्थात् 'मसीहा' थी।''[1]

१. '[illegible] ?', पृष्ठ १६२।

यह इस तथ्य का स्पष्ट द्योतक, संकेतक है कि श्रीमन् (श्रीमान् कृष्ण) सीमन (साइमन) क्राइस्ट (कृस्त) के रूप में ही उच्चारण किया जाता था। 'मसीहा' उच्चारण भी यूरोपीय, यूनानी बोली में संस्कृत शब्द 'महेश' अर्थात् महान् ईश्वर के लिए ही था। यह अवतार-रूप में भगवान् कृष्ण का ही द्योतक था। सभी हिन्दू देवगणों को प्रयोज्य श्रीमन्-सम्बोधन, उपाधि सम्पूर्ण धन-वैभव और स्रोतों पर नियंत्रण का संकेतक, परिचायक है।

कृस्ती 'त्रिनिति' शब्द—त्रियेक परमेश्वर—भी एक हिन्दू संकल्पना ही है। स्वयं 'त्रीणिति' शब्द भी संस्कृत यौगिक शब्द 'त्रीणि-इति' अर्थात् 'इस प्रकार तीन मात्र' है। हिन्दू देव-त्रयी (त्रि-देव) में ब्रह्मा, विष्णु और महेश—तीन देव हैं, जो सृजन (सृष्टि), पालन (संरक्षण) और विध्वंस (विनाश) के संरक्षक, नियन्त्रक, नियामक हैं—सर्वेसर्वा हैं।

ईश्वर, उसके पुत्र और दिव्य-आत्मा की कृस्ती देव-त्रयी स्पष्टतः बाद का विचार है। यह प्रदर्शित करता है कि कृस्ती-पंथ ने मात्र बपतिस्मा ही किया और कृस्ती-छद्म-वेश में, भ्रामक रूप में पूर्वकालिक हिन्दू-प्रथाओं को ही जारी रखा।

'ईश्वर' ब्रह्मा, सृष्टिकर्ता—सृजनहार है। 'पुत्र' जो जीसस कहा जाता है तथ्यरूप में तो पालनहार विष्णु का स्थान लेता है क्योंकि हिन्दू विद्या, जनश्रुति में राम और कृष्ण जैसे अवतार मानव-रूप धारण किए विष्णु ही साकार माने जाते हैं। दिव्य-आत्मा भगवान् शिव के अतिरिक्त और कोई नहीं है क्योंकि वही 'भूतनाथ' अर्थात् आत्मा के स्वामी माने जाते हैं।

इससे यह दृष्टिगोचर हो जाता है कि कृस्ती-पंथ तो युगों-पुरातन, प्राचीन हिन्दू आस्थाओं, विश्वासों और रीति-रिवाजों, प्रथाओं-पद्धतियों का नया नाम ही था।

इसकी पुष्टि पुरातत्त्वीय-खोजों, उपलब्धियों से भी होती है। प्रोफेसर वैल्स ने लिखा है, ''द्वितीय और बाद की शताब्दियों की पूजा, सभा-स्थलियों और मकबरों की अभी हाल ही की पुरातत्त्वीय-खोजों, उपलब्धियों ने इस सिद्धान्त का तिरस्कार कर दिया है कि फिलस्तीन एक गैर-हेलेनवादी पश्चद्वीप था। वे प्रदर्शित करते हैं कि वहाँ की यहूदी लोग गैर-ईसाई स्रोतों से चित्रों और प्रतीकों का इस्तेमाल करते थे और इस प्रकार पूर्वीय तथा

यूनानी व रोमन संस्कृति में सम्मिलित, भागीदार रहते थे। लोहसे ने लिखा है कि यहूदियों ने स्वयं जिन विभिन्न सिद्धान्तों का निरूपण किया था उनका श्रेय भी गैर-यहूदी, गैर-ईसाई रचनाकारों को दे दिया था और भविष्य-कथन की देव-वाणियों में यहूदी वचन भी जोड़ दिये थे। दोनों ही मामलों में, गैर-ईसाई गैर-यहूदी विचारों के साथ यहूदी-विचारों का तादात्म्य प्रदर्शित करने का प्रयोजन, लक्ष्य ही था। यहूदी-गूढ ज्ञानवाद गैर-ईसाई रहस्यों के साथ अनेक विचारों का साम्य रखता था।"[1]

आश्चर्य होता है कि विश्व-भर के विद्वान्, वे चाहे यहूदी रहे हैं अथवा कृस्ती, इन विगत शताब्दियों-भर, इस तथ्य के इतने सारे अकाट्य प्रमाणों के होते हुए भी कि प्राचीन पश्चिमी एशिया और यूरोप की संस्कृति विश्व के अन्य सभी भागों के समान ही, पूर्णतः हिन्दू-संस्कृति ही थी, किस प्रकार यह पता करने में विफल रहे। उक्त निष्कर्ष से बचने के लिए इसे गूढ-ज्ञानवादी या यहूदी, या मनुष्टोमन, या अन्य कोई नाम देने का यत्न करना मात्र हठी व्यक्ति का दुराग्रह ही है। तथाकथित देववाणी उपासनालय शिव-मन्दिर के अतिरिक्त कुछ नहीं था क्योंकि ऐसे मन्दिर संस्कृत भाषा में शिवालय (या शिवालय) कहलाते हैं।

फिलस्तीन और फिलस्तीनी भी संस्कृत शब्द हैं जो क्रमशः ऋषि पुलस्ति का निवास-स्थान और उन्हीं (पुलस्ति) की सन्तानों, उनके वंशजों के द्योतक हैं। संस्कृत में पुलस्ति के वंशजों को पुलस्तिन कहते हैं। वे सामान्य रूप से कठोर, अपरिष्कृत व्यक्ति थे जो फिलस्तीनी शब्द दर्शाता है क्योंकि राक्षसराज रावण, जिसके विरुद्ध भगवान् राम को भयंकर, दुर्धर्ष लम्बा युद्ध करना पड़ा था, वास्तव में एक पुलस्तिन अर्थात् फिलस्तीनी था। अतः विश्व जितनी जल्दी यह समझ जाए कि कृस्ती-पूर्व युग में प्रचलित धर्म हिन्दू-धर्म ही था जिसने विश्व-भर में डंका बजा रखा था, उतना ही आसान विश्व इतिहास, संस्कृति और धर्म का अध्ययन करना हो जाएगा। तब विद्वानों को कृस्ती-पूर्व युगों में 'गैर-ईसाई, गैर-यहूदी रहस्यवादी पंथों' की चर्चा नहीं करनी पड़ेगी। ये सभी तथाकथित पंथ

१ 'डिड जीसस एग्ज़िस्ट ?', पृष्ठ १६४।

हिन्दू-धर्म के विलग हुए समूह ही थे। यह अनुभूति उनके अध्ययन को सरल और ग्राह्य, स्वीकार्य बना देगी। उन सभी को यदि प्राचीन विश्व की सर्वव्यापी हिन्दू-संस्कृति का भाग, अंश ही समझ लिया जाएगा तो उनका स्पष्टीकरण तुरन्त प्रत्यक्ष हो जाएगा, समझ में आ जाएगा।

प्रोफेसर वैल्स का यह प्रेक्षण, हमारे विचार में पूरी तरह गलत है कि "जब कृस्ती-पंथ का उदय हुआ तब रोमन-साम्राज्य के पूर्वी प्रान्तों में कोई निश्चित विश्वासों या प्रथाओं का समूह, वर्ग नहीं था बल्कि इन्हीं बातों का अव्यवस्थित, ऊल-जलूल मेल था जो मिस्र, असीरिया, फारस, यूनान और अन्य स्रोतों के तत्त्वों से बना था।" यद्यपि वे अप्रशिक्षित पश्चिमी बुद्धि को भिन्न-भिन्न दिखाई पड़ें, तथापि वे सभी पूरी तौर से हिन्दू रीति-रिवाज, आचरण ही थे। वे पृथक्-पृथक् दिखाई पड़ रहे थे क्योंकि वे क्षेत्र हिन्दुओं के आदि मूलस्थान भारत हिन्दुस्थान से प्रशासनिक और भौतिक दृष्टि से हज़ारों-हज़ारों वर्षों से अलग-थलग हो जाने के कारण, उनके विश्वासों और रीति-रिवाज़ों में एक विशिष्ट स्थानीय मोड़ और रुझान आने लगा था।

इसी सम्बन्ध में कुछ और साक्ष्य भी प्रस्तुत हैं। 'जेन्द अवेस्ता' के होरमुज्द याश्त में अहुर माज़दा अपने बीस नाम गिनता बताता है। पहला है 'अहमी'—'मैं हूँ'—(संस्कृत में यह है 'अस्मि')। अन्तिम है 'अहमी यद अहमी'—'मैं ही वह मैं हूँ'। ये दो वाक्यांश बाइबल में भी नाम ही हैं। 'जेहोवाह' (उपनाम जेहवा) की व्युत्पत्ति वैदिक साहित्य में सीधी खोजी जा सकती है। 'जेहोवाह' असंदिग्ध रूप में वही चाल्डियन शब्द 'याह्वे' जैसा है। शीघ्रता करने या शीघ्रता से करने, चलाने की द्योतक 'या' धातु से व्युत्पन्न शब्द 'यदु' (जेद—यजु), याह्वा, याह्वत् और स्त्रीलिंग याह्वी या यह्वती ऋग्वेद में कई बार आये हैं। 'याहा' का अर्थ जल या सामर्थ्य भी है, जबकि 'याह्वा' विशेषण का अर्थ 'महान्'—'बड़ा' है। इसी भाव से 'याह्वा' शब्द ऋग्वेद में सोम, अग्नि और इन्द्र के लिए भी प्रयुक्त हुआ है (ये तीनों हिन्दू देवकुल के देवता हैं)। अग्नि को एक बार 'याह्वा' कहकर

भी सम्बोधित किया गया है।"[1]

उपर्युक्त अवतरण सिद्ध करता है कि वेद, हिन्दू-धर्म और संस्कृत भाषा ही सम्पूर्ण धर्मों और संस्कृतियों के आदि और मूल-स्रोत व अक्षय कोषागार हैं फिर वे चाहे पारसी, कालडियन, असीरियन, मायाकी, यहूदी, इस्लामी या क्रुस्ती ही क्यों न हों। ये अत्यन्त सहज स्वाभाविक ही है क्योंकि हिन्दू-संस्कृति तो लाखों-लाखों वर्ष पुरानी है जबकि अन्य सभी संस्कृतियाँ मात्र कुछ हजार वर्ष पूर्व ही जन्मी हैं।

चर्च (गिरजाघर) की जड़ें भी हिन्दू-प्रथाओं में ही हैं—इसका उल्लेख ऐतिहासिक स्थानों के विशेष लेखक फर्ग्युसन ने किया है। उसके अनुसार, "(भारत में) कारला स्थित गुफा-मन्दिर अपनी व्यवस्था में प्रारम्भिक क्रुस्ती-चर्च से काफी सीमा तक मिलता है। इसमें एक मध्य-भाग और पार्श्व-वीथियाँ गलियारे होते हैं जो एक अर्धवृत्त कक्ष में या अर्ध गुम्बज में जाकर समाप्त होते हैं जिसके चारों ओर पार्श्व-वीथियाँ बनी होती हैं, जाती हैं। इसकी व्यवस्था (रचना) और लम्बाई-चौड़ाई आदि नार्विच गिरजाघर और केईन स्थित ऐबेय आक्स होम्मेस से लगभग पूरी तरह मिलती-जुलती है—बाद की इमारत में सिर्फ बाहरी गलियारे नहीं हैं।"[2]

यहूदी प्रथा बुद्धिवादी साहित्य में प्रथा अस्तित्व-पूर्व की एक सत्ता निरूपित की गयी है जो पृथ्वी पर मानव को सावधान करने और उसको उपदेश देने के लिए आयी थी और जिओन में बस गयी, स्थापित हो गयी थी ऐसी मानी है। वह अवतार स्पष्टत भगवान् कृष्ण ही थे। ये तो भगवान कृष्ण ही थे जिनका अर्जुन को उपदेश 'भगवद्गीता' के रूप में सम्पन्न श्रद्धेय धर्मग्रंथ पूजित है। जिओन शब्द भी ईश्वर के अर्थ-द्योतक संस्कृत के 'देवन' शब्द का अपभ्रंश रूप ही है।

क्रुस्ती-पूर्व युगों में यहूदियों में सामान्यत विश्वास प्रचलित था कि जब दुःख असह्य ज्यादा हो जाते हैं, तब शीघ्र ही ईश्वर का अभ्युदय

---

१ गंगाप्रसाद विरचित 'फाउण्टेन हेड ऑफ रिलीजन', पृष्ठ ४५, आर्य साहित्य मंडल लिमिटेड अजमेर द्वारा सन् १९६६ में प्रकाशित।

२ वही, पृष्ठ १९।

अवश्यम्भावी होता है। यही कथन तो भगवान् कृष्ण ने 'भगवद्गीता' में भी दिया है। यह भी सिद्ध करता है कि जरुस्लम के यहूदी मन्दिर में जो देवता प्रतिष्ठित, विराजमान था, वह भगवान् कृष्ण ही था।

क्रुस्ती मन्दिर चर्च (गिरजाघर) कहलाता है। इसका उद्भव संस्कृत शब्द 'चर्चा' से है, क्योंकि कृष्ण मन्दिर का प्रबन्ध नियंत्रित करनेवाले से विलग हुआ वर्ग आगे संघर्ष की योजना बनाने के लिए, उस पर चर्चा करने हेतु लोगों को निजी मकानों में ही एकत्र कर लेने मात्र से भी सन्तुष्ट हो जाने को तैयार था। इसके समर्थन में हम प्रोफेसर वेल्स का कथन उद्धृत करना चाहते हैं, "पॉल हमें बताता है कि क्रुस्ती-बैठकों में कोई भी व्यक्ति खड़ा हो सकता था और उसे जो भी 'दर्शन' प्राप्त हुआ था, उसकी उद्‌घोषणा कर सकता था, कुछ लोग भाव-विभोर हो कथन करते थे, बिना स्वयं समझे कि वे क्या कह रहे थे, जबकि अन्य लोग व्याख्या, भाव स्पष्ट करते थे (१ कोल० १४ २६-३२)। एक वर्ग के सदस्यों में दुर्बोध कथनों की व्याख्याओं से अनेक प्रकार के सिद्धान्तों की स्थापना सरलता से हो सकती थी। पूर्वकालिक क्रुस्ती-पंथियों ने ऐसे वर्ग, समूह स्थापित कर लिए थे जो परस्पर भिन्न विचार रखते थे और परस्पर-विरोधी भी थे—यह तथ्य नव-विधान और उसी आधार पर समझ-योग्य होने से स्पष्ट है।"

तत्कालीन समाज में विद्यमान हिन्दू देव-पद्धति की सभी विभिन्न शाखाएँ, प्रशाखाएँ उस उग्रवादी-विलग वर्ग में स्थान पाने लगीं और प्रतिबिम्बित होने लगी जिसको बाद में क्रुस्ती-पंथ कहा जाने लगा, उसी नाम से प्रचलित हो गया।

उपर्युक्त अवतरण से कई महत्त्वपूर्ण बातें स्पष्ट, उजागर हो जाती हैं। सर्वप्रथम, क्रुस्ती-पंथ किसी पृथक् देव-पद्धति के रूप में प्रारम्भ न होकर मात्र सहानुभूति रखनेवाले एक चर्चा-वर्ग के रूप में शुरू हुआ था। दूसरी बात, बाइबल उस वर्ग के भावोद्‌गारों का सम्मिश्रण, एकत्रित ढेर है। तीसरी बात, क्रुस्ती-पंथ ऐसे भिन्न विचारों का ढीला-ढाला समूहीकरण है

---

१. गंगाप्रसाद विरचित 'फाउण्टेन हेड ऑफ रिलीजन', पृष्ठ ४५, आर्य साहित्य मंडल लिमिटेड, अजमेर द्वारा सन् १९६६ में प्रकाशित।

हैं "पूरी, बुरी तरह बैर-भाव रखते रहे" हैं।

जो एक-दूसरे से 'पूरी, बुरी तरह बैर-भाव रखते' भिन्न धारणाओं विश्वासोंवाले कृस्तियों को

मत 'पंथ' बारम्बार भिन्न धारणाओं और बाद में धर्म-पंथ लेखकों ने झूठे धर्म-प्रचारकों को अस्वीकार करना है और बाद में धर्म-पंथ लेखकों ने झूठे धर्म-प्रचारकों को डराया-धमकाया व दोषी घोषित किया है। रोम के क्लेमेंट और इग्नेशस जैसे गैर-धर्म वैज्ञानिक लेखक भी इसी प्रकार गुटबन्दी में घिरे हुए थे"— प्रोफेसर वैल्स का कहना है।

प्रोफेसर वैल्स की दृष्टि में यह "उल्लेखनीय है कि विद्वान् अभी भी दावा करते हैं कि कृस्ती-पंथ अन्य धर्मों से अत्यन्त भिन्न है यद्यपि वे पूरी तरह से देख सकते हैं कि इसने अन्य धर्मों के विभिन्न रूपों को प्रायः परस्पर-विरोधी सिद्धान्तों के साथ ही न केवल स्वयं में संयोजित कर रखा है बल्कि यह भी कि इसके बहुत सारे विचार गैर-यहूदी गैर-ईसाई और यहूदी वातावरण में दर्शनीय, प्राप्य हैं।"[1]

प्रायः यह तर्क दिया जाता है कि जिस सरलता व बल के साथ कृस्ती-पंथ सम्पूर्ण यूरोप में फैला वही इस देव-पद्धति की उत्तमता का प्रमाण है। सफलता व शिखर पर आसीन होकर पीछे मुड़कर देखना और अपने काल्पनिक गुणों पर घमंड करना एक सामान्य मानव-कमजोरी है। ऐसा पश्च-दृष्टि औचित्य-निर्धारण अनुचित है। कृस्ती-पंथ और इसलाम दोनों ही तलवार के भरोसे, उसी के आधार पर फैले हैं। ईसा-पश्चात् चौथी शताब्दी तक भी कृस्ती-पंथ महत्त्वहीन पंथ ही रहा। रोमन सम्राट् कॉन्स्टेन्टाइन के अचानक-अकस्मात् धर्म-परिवर्तन ने ही नयी-नयी कृस्ती-पंथी सरकार द्वारा सहायता प्राप्त कर यातना-भागी चर्च, गिरजाघर को बचाव की अपेक्षा प्रहार आक्रमण की नीति में परिवर्तन करने योग्य बना दिया— इसका तीव्र ढंग की आलोचना बारम्बार की गयी है।"[2] ये तो रोमन शासक ही थे जिनके बल पर शासन-शासन के अन्तर्गत क्षेत्रों में कृस्ती-पंथ लाद दिया गया। बाद में इन्हीं धर्म-परिवर्तित फ्रांसीसियों, जर्मनों,

1. 'दिड जीसस ऐग्ज़िस्ट ?', पृष्ठ २०१।
2. 'चौथी शताब्दी में गैर-ईसाई और ईसाई-पंथ में संघर्ष', ए० मोमिग्लानो लिखित पृष्ठ ११३।

पुर्तगालियों, डचों व ब्रिटिशों ने स्वयं जीते गये अपने क्षेत्रों में बल और प्रलोभन के साथ कृस्ती-पंथ को फैलाया।

इसलाम इसी का खरा, समानान्तर उदाहरण प्रस्तुत करता है। अरब लोगों ने, जिन्होंने अपने निकटवर्ती क्षेत्रों को पैरों तले रौंद डाला था, स्व-विजित क्षेत्रों में भयंकर जुल्मों व आतंक के माध्यम से इसलाम को फैलाया था। बाद में फारसियों, तुर्कों, भारतीयों, मंगोलियों, तातारों और अबीसीनियनों ने भी, यह भुलाते हुए कि उनको भी जुल्मों और आतंक, डर के माध्यम से इसलाम में परिवर्तित किया गया था, अन्य क्षेत्रों में इसलाम के प्रचार-प्रसार के लिए उन्हीं माध्यमों, तरीकों का उपयोग किया था। इसलिए इसलाम और कृस्ती-पंथ, दोनों को ही अपने सदस्यों में किन्हीं गुणों के आधार पर गौरव-अनुभव करने की बात नहीं है।

कृस्ती-पंथ और इसलाम, दोनों ने ही हिन्दू-पंथ को शक्ति के आधार पर समाप्त करते हुए भी पूर्व-प्रचलित हिन्दू रीति-रिवाजों को स्वतन्त्रतापूर्वक ग्रहण किया। उदाहरण के लिए, मुस्लिम लोग मक्का में शिव मन्दिर में भगवान् शिव की परिक्रमा करना जारी रखे हुए हैं।

इसलाम और कृस्ती-पंथ कभी भी उन क्षेत्रों में नहीं फैले हैं जिनको उन्होंने जीता नहीं और जिन पर उनका आधिपत्य, अधिकार नहीं रहा।

प्रोफेसर वैल्स विश्वास करते हैं कि "यदि जीसस पृथ्वी पर रहे होते तो उन्होंने अपने समकालीनों पर कोई भी प्रभाव नहीं डाला होता क्योंकि उनके जीवन का कोई भी निजी व्यक्तित्व और चरित्र उनसे सम्बन्धित पूर्ववर्ती साहित्य में वर्णित समाविष्ट, अंकित उल्लेखित नहीं है।"[1]

धर्मग्रन्थों (सुसमाचार-सूत्रों) से पूर्व के कृस्ती-साहित्य में जीसस को एक जीवित व्यक्ति के रूप में नहीं, बल्कि एक अलौकिक व्यक्तित्व के रूप में प्रस्तुत, वर्णित किया गया है। वह जीसस क्राइस्ट (कृस्त) ईशस कृष्ण अर्थात् हिन्दू ईश्वर भगवान् कृष्ण था।

मोज़ेज़ ने जो दिव्य-दर्शन किया था, उसमें ईश्वर ने कहा था 'मैं ही वह मैं हूँ।" यह, जैसा हम पहले ही देख चुके हैं, हिन्दू धर्मग्रन्थों से ही लिया

1. 'दि हिस्ट्री ऑफ लेटर रोमन एम्पायर', पृष्ठ ३६६–३७३।

गया है।

चाहे आधुनिक यूरोपवासी गिरजाघरों (चर्चों) में जूते पहनकर ही भीड़-भाड़ मचाते रहते हैं तथापि क्रिस्ती-पूर्व युगों में सारे विश्व-भर में सब लोग हिन्दू देवालयों के निकट, उनके दर्शनार्थ जाते थे तब उनको अपने जूते चप्पल उतारने ही पड़ते थे। पुराने प्राचीन विधान में, 'निष्क्रमण' नामक अध्याय में अंकित है "प्रभु (ईश्वर) का दूत एक अग्नि-लपट के रूप में उसके सामने उपस्थित हुआ'''उसने कहा—'मोजेज, मोजेज—अपने पैरों से तुम अपने जूते उतार दो क्योंकि जिस स्थान पर तुम खड़े हो, वह पवित्र स्थान है।'"[1]

केवल हिन्दू लोगों में ही पवित्र स्थलों पर जूते, चप्पल लाना, ले जाना मना है—वर्जित है। इस्लाम में धर्म-परिवर्तित लोग भी आज तक अपने जूते आदि प्रार्थना-स्थल के बाहर ही उतारने की प्रथा का पालन कर रहे हैं क्योंकि वे भवन भी पुरातन काल के हिन्दू मन्दिर ही हैं।

जब किसी व्यक्ति के घर पर कोई महानुभाव पधारता है, तो उसके चरण-प्रक्षालन की पद्धति पोप तथा अन्य लोगों द्वारा जिसका अभी भी पालन किया जाता है हिन्दू-कर्मकाण्ड का आचरण ही है। हिन्दू-रीति-रिवाजों में इसका अभी भी पूरी तरह पालन, निर्वाह किया जाता है। इसी पद्धति की पुष्टि में तो कहा जाता है कि जीसस ने अपने पट्ट-शिष्यों के पग-पखारे थे। पोप प्रति वर्ष एक बच्चे के पैर भी इसी रीति-रिवाज के अनुसार धोता रहा। इस परम्परा का मूलोद्भव हिन्दू यज्ञोपवीत (जनेऊ) धारण करने के संस्कार में है जहाँ सभी बुजुर्ग लोग युवा ब्रह्मचारी, बटुक के पग-पखारते, चरण धोते हैं। यदि पैर धोने का कर्मकाण्ड मूलरूप में क्रिस्ती-पंथ द्वारा ही प्रारम्भ किया गया होता, तो आज भी क्रिस्ती-पंथ के गिरजाघरों में सारे श्रद्धालु सभी सज्जन नंगे पैर ही प्रविष्ट होते। किन्तु वे तो, इसके विपरीत पूरी तरह जुराब-जूतों से सजे-सिमटे, मस्त रहते हैं।

क्रिस्ती-पंथियों और मुस्लिमों द्वारा भगवद्-स्मरण के समय प्रयोग में लायी जानेवाली मनकों की जपमाला की विधि हिन्दुओं द्वारा आविष्कृत

1. 'डिड जीसस ऐग्ज़िस्ट ?', पृष्ठ २०५।

और लोक-प्रचलित की गयी है। जिन लोगों का पूर्ण विचारश्रेणी और क्रमानुसार पद्धति का सम्यक्-विवेचन ज्ञान नहीं है वे तर्क दे सकते हैं कि हिन्दुओं ने ही यह जपमाला-पद्धति क्रिस्ती-पंथियों या मुस्लिमों से सीखी होगी। ऐसे लोगों को सदैव यह तथ्य स्मरण रखना चाहिए कि हिन्दू-धर्म की प्राचीनता, पुरातनता तो अविस्मरणीय युगों की है, जबकि क्रिस्ती-पंथ मात्र १६०० वर्ष पूर्व का और इस्लाम केवल १३०० साल पुराना ही है। अतः जब कभी जपमाला जैसी कोई बात इन सभी धर्मों, पंथों में समान रूप से पायी जाए, तब उक्त बात स्वयं इस तथ्य का निर्णायक प्रमाण है कि क्रिस्ती-पंथ और इस्लाम तो स्वयं हिन्दू-धर्म की शाखाएँ, प्रशाखाएँ ही हैं—उसी से उद्भूत हैं।

अध्याय १७

कृस्ती-पंथ की हिन्दू-शब्दावली

कृस्ती-पंथ हिन्दू कृष्ण-पंथ का जारी रहना मात्र ही है—इस तथ्य का दिग्दर्शन इसकी शब्दावली से किया जा सकता है जो लगभग पूरी तरह हिन्दू-संस्कृत ही है। नीचे हम कुछ शब्दों की सूची दे रहे हैं जिससे अन्य लोग भी हमारे द्वारा इंगित दिशा में पूर्ण अन्वेषण, खोजबीन कर सकें। इस प्रकार का अन्वेषण अन्य यूरोपीय भाषाओं के संस्कृत-मूलक होने की दिशा में किए गए प्रयासों में भी सफलता प्रदान कर सकेगा।

अबय (ऐबि) : यह संस्कृत शब्द 'अभय' है जिसका अर्थ 'शान्ति, राहत और सुरक्षा की भावना' है। हिन्दू विधा, परम्परा में यातना, कष्ट और आतंक से संत्रस्त होकर भागनेवाले लोग राजशाही या पर-पीड़क से 'अभय' अर्थात् 'शान्ति, राहत और सुरक्षा' की याचना, प्रार्थना किया करते थे। यदि 'अभय' का आश्वासन मिल जाता था तो 'अभयदाता' अत्याचारी पर-पीड़क का सामना करता था और याचक, अभय-प्राप्तकर्ता सुरक्षित अनुभव करता था। अतः 'अबय' (ऐबि) वह मठ, महामठ, संघाराम माना जाने लगा जहाँ व्यक्ति स्वयं को सहज व सुरक्षित अनुभव करने लग जाए। यूरोपीय भाषाओं में यही संस्कृत शब्द है जो भिन्न-भिन्न वर्तनियों में उपलब्ध होता है। अतः अंग्रेजी शब्द 'अबय' (ऐबि) संस्कृत शब्द 'अभय' अर्थात् महामठ-मन्दिर—पुण्य स्थल—आश्रय भूमि है। परिणामतः यूरोप के सभी 'अबय' शाब्दिक-परिभाषा में संस्कृत-मूलक हैं और इनका स्थापत्य-वास्तु-विज्ञान मूल हिन्दू ही है क्योंकि ये सभी हिन्दू देवी-देवताओं के मन्दिर ही थे।

अबट (ऐबट) : यह संस्कृत शब्द है जिसका अर्थ पादरी, पुरोहित है। तथापि मूल संस्कृत शब्द अंग्रेजी भाषा में कुछ अधिक विकृत हो गया

है। यही कारण है कि अनभ्यस्त व्यक्ति की दृष्टि में इसका संस्कृतमूलक होना तुरन्त समझ नहीं पड़ता। इसका आदि 'अ' या 'ऐ' हटा दें। जो शेष रहता है वह है 'भाट' जो 'बट' उच्चारित होता है। इसका वास्तविक संस्कृत उच्चारण कुछ 'भट' जैसा है। संस्कृत 'भट' शब्द का अर्थ पादरी, पुरोहित है। अतः हर व्यक्ति को यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि 'अबट' तथ्य रूप में संस्कृत शब्द 'भट' है जिसके प्रारम्भ में अतिरिक्त 'अ' जोड़ दिया गया है।

अब्राहम : यह संस्कृत शब्द 'ब्रह्मा' अर्थात् सृजनहार या पूर्वज, प्रजनक है।

अपॉसल : अंग्रेजी भाषा की सनक-तरंग के कारण 'अपास्टल' शब्द 'अपासल' उच्चारण किया जाता है यद्यपि इसका स्पष्ट संस्कृत उच्चारण 'आप-स्थल' होना चाहिए। संस्कृत भाषा में 'आप' शब्द का अर्थ 'गमन, जाना' अर्थात् 'गति' है और दूसरे भाग 'स्थल' का मतलब 'स्थान' या 'जगह' है। अतः 'अपॉसल' शब्द का अर्थ वह व्यक्ति है जो कृष्ण के आगमन की सूचना, संदेश देने के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान पर आता-जाता रहता है। यथार्थ रूप से 'अपॉसॅल' शब्द का यही मतलब है यद्यपि आज इसका प्रचलित उच्चारण इसके मूल संस्कृत उच्चारण से बहुत भिन्न, पृथक् हो गया है। यूरोपीय भाषाओं के संस्कृत-मूल का पता लगाने के लिए कई विधियों का सहारा लेना पड़ेगा। एक विधि यह है कि एक या दो अक्षर हटा दें और फिर उनका परिणाम देखें। दूसरी विधि यह है कि निर्ध्वनि अक्षर या अक्षरों के नियमों की पूरी उपेक्षा कर दें और पूरे शब्द का उच्चारण सारी वर्तनी की ध्वनि के अनुसार करें। कुछ अन्य विधियाँ भी हो सकती हैं।

आमीन (अमेन, अ-मन) : कृस्ती प्रार्थनाएँ प्रायः 'अमेन' शब्द के साथ समाप्त, पूर्ण होती हैं। कृस्ती लोगों का विश्वास है कि इसका अर्थ है "ऐसा ही हो—तथास्तु"। ऑक्सफोर्ड शब्दकोश भी इसी प्रकार व्याख्या करता है। तथापि, वह एक गलती है। फारसी शब्दावली में 'अमेन' का अर्थ 'शान्ति' है जैसा 'अमन-चैन' शब्द से स्पष्ट है—'शान्ति और सतोष'। उक्त 'आमीन' शब्द इस प्रकार संस्कृत शब्द 'शान्ति' का ही समानक है—

इन दोनों के एक ही अर्थ हैं। विश्व के अन्य भागों के लोगों के समान ही पूर्व कालमें [illegible] भी संस्कृतभाषी हिन्दू ही थे, अतः वे सभी धार्मिक कृत्यों और पाठों के उपरान्त शान्ति उच्चारण करते थे।

क्रिश्चियनिटी (ख्रिस्तियनिटी) : इस शब्द के संस्कृत-मूल का पता करने के लिए पूरी छानबीन की जरूरत है। हम केवल कुछ सूत्र ही प्रस्तुत करना चाहते हैं। अंग्रेजी भाषा का 'इज्म' अक्षर प्राय: संस्कृत का 'स्म' है जैसे [illegible] अस्मि (मैं हूँ) में—जिसका अर्थ हूँ (या था) होता है। 'स्म' जैसे संयुक्त यौगिक संस्कृत शब्दों के कठिन, कष्टसाध्य शुद्ध उच्चारण करने का [illegible] प्रशिक्षण जब से रुक गया, तब से यह 'स्म' अक्षर 'इज्म' के रूप में उच्चारण किया जाने लगा। यही कारण है कि हिन्दू-इज्म कम्यु-[illegible] [illegible]-इज्म आदि शब्द प्राप्त होते मिलते हैं। इसी प्रकार 'बैप्ट' [illegible] प्रथमाक्षर 'स्नापित' (जिसे स्नान करा दिया गया हो) हो सकता है या 'बाप्तिस्म' अर्थात् जल से उपचार किया गया हो जिसका। [illegible] शब्द 'बाप्तिस्म' ही समय के बीतते-बीतते 'बाप्तिज्म' में बदल गया —सम्भव है। फिर भी शब्दशास्त्री और व्युत्पत्ति खोजनेवाले महानुभाव इसकी ध्यानपूर्वक खोज कर सकते हैं।

वार्शिपलिका : संस्कृत में 'वर्षी' का अर्थ अग्नि है और 'अलिक' [illegible] है। अतः वार्शिपलिका का अर्थ 'अग्निपूजा' का स्थान है। यह सर्वज्ञात है कि हिन्दू-परम्परा में अन्य देवताओं के साथ-साथ अग्नि की पूजा की जाती थी। अग्नि को एक प्रमुख देवता माना जाता है क्योंकि मनुष्य का अस्तित्व और उसका बना रहना सूर्य की अग्नि (अर्थात् गर्मी) पर निर्भर करता है [illegible] (भूख जठराग्नि के रूप में) पचाती है और रक्त को [illegible] रखती है और वह भी अग्नि है जो खाना पकाती है, उद्योग-[illegible] मशीन-पुर्जे (भट्ठी या बिजली से) चलाती है और संसार [illegible] करती है। वार्शिपलिका वार्शिपलिका में बदल जाती है क्योंकि बहुत [illegible] में बदल जाता है।

कैथेड्रल : यह शब्द काष्ठ (अर्थात् लकड़ी) द्रुम (अर्थात् वृक्ष) और 'दल' (अर्थात् पत्ते-पत्तियाँ या पर्णावलियाँ) से बना मालूम पड़ता है। यह दर्शाता है कि यह-मुख्य परिवेश में वन लता-मण्डपों के मध्य बन हिन्दू-

मन्दिर जिन लकड़ियों, वृक्षों और पर्णावलियों से बने थे, उन्हीं के नाम पर 'कैथेड्रल' कहलाने लगे।

चैपल : यह गिरजाघर का प्राय: केन्द्रीय अन्तिम छोर होता है जिसमें एक तोरणयुक्त छत होती है जो देवता की वेदी के लिए होती है। यह शब्द संस्कृत-मूल का है। 'चैपल' एक वृत्त का टुकड़ा अर्थात् धनुष के आकार का भाग होता है। यही तो एक चैपल (छत) की आकृति है क्योंकि हिन्दू परम्परा के अनुसार छत का भीतरी भाग (ईश्वर या राजवंश के ऊपर) एक छत्र से मिलता-जुलता होना चाहिए। प्रसंगवश यह सिद्ध करता है कि कृस्ती-गिरजाघर हिन्दू-मन्दिरों के आकार को ही बनाए हुए हैं। तदनुसार, उनके भीतर अधिष्ठित देव भी कृष्ण थे जिनका उच्चारण कृस्त (क्राइस्ट) किया जाता था।

चर्च : यह एक संस्कृत शब्द है 'चर्चा', जिसका अर्थ विचार-विमर्श करना है। चूँकि कृस्ती-पंथ कृष्ण-पंथ से विलग हुआ क्योंकि एक असन्तुष्ट समूह ने 'अगली कार्यवाही' सम्बन्धी चर्चा करने के लिए अलग स्थान पर इकट्ठे होना शुरू कर दिया था, इसलिए उनकी बैठकों का स्थान 'चर्च' कहलाने लगा।

चर्चिल : यह भी एक संस्कृत शब्द है जो 'चर्चा का आयोजन करने-वाले व्यक्ति' का अर्थात् 'उपदेशकर्ता' का द्योतक है। यह दर्शाता है कि 'चर्चिल' कुल-नामवाले परिवारों का मूलोद्गम एक पुरोहित, पादरी-वर्ग में है।

डिसाइपल : यह संस्कृत भाषा का 'दीक्षपाल' शब्द है अर्थात् वह व्यक्ति जो शिक्षा, दीक्षा दी गयी बात को आत्मसात, हृदयंगम कर लेता है। 'दीक्षा' शब्द का अर्थ गुरु अर्थात् शिक्षक द्वारा प्रेरित, प्रारम्भ करना या सीखना है। 'पाल' अक्षर का अर्थ सिखाया गया, शिक्षित, दीक्षित व्यक्ति है।

गोस्पल : संस्कृत में 'ग' का अर्थ 'वाणी' है जबकि 'स्प' वह है जो जोड़ता है। अंग्रेजी शब्द 'स्पेलिंग' (वर्तनी) का भी यही मूल है।

फ्रायर : यह संस्कृत शब्द 'प्रवर' है जिसका अर्थ सज्जन सत्पुरुष है।

हिम (न) : यह अंग्रेजी शब्द 'हिम' उच्चारण किया जाता है, किन्तु यदि इसे इसकी मूल वर्तनी के अनुसार ही बोला जाए जिसमें अन्त में 'न' उच्चारण करें तो यह संस्कृत शब्द दृष्टिगोचर हो जाएगा जिसका अर्थ धार्मिक गीत, भजन, स्तोत्र होता है।

हिन्दू (हद्रू) : यह संस्कृत शब्द है जिसमें 'ह' भगवान् कृष्ण के अन्य नाम 'हरि' का संक्षिप्त रूप है और 'ब्रू' ब्रूते—बोलता है का परिचायक है।

जीसस : इस शब्द की प्रारम्भिक यूनानी वर्तनी 'ईशस' हुआ करती थी जो स्पष्टतः 'ईश्वर' का द्योतक संस्कृत शब्द 'ईशस' है।

जेहोवा : वैदिक हिन्दू धर्म की मान्यतानुसार देवताओं के गुरु बृहस्पति के पुत्र का नाम है।

कोशुआ : भगवान् कृष्ण के एक अन्य नाम 'केशव' -संस्कृत शब्द का अपभ्रंश, विकृत रूप है।

क्रिस्टो केसियस : यह देव कृष्ण अर्थात् भगवान् कृष्ण है।

मनोह (मनोहा) : यह महेश अर्थात् बड़ा ईश, शिव है हिन्दुओं की मान्यतानुसार ऐसा है।

मिनिस्टर : यह संस्कृत यौगिक शब्द मनस + तर अर्थात् वह व्यक्ति जो मनस—मानस—मन को भौतिक—लौकिक संसार से आध्यात्मिक-जगत् में पहुँचाने में सहायता करता है।

मिन्स्टर : उस स्थान अर्थात् मन्दिर या चर्च का द्योतक है जहाँ व्यक्ति के विचार इस लौकिक जगत् का विचार त्यागकर आध्यात्मिक, सत्यवादी संसार में विचरण करने लगते हैं। इस प्रकार, इंग्लैंड में वैस्ट मिन्स्टर एबे जैसे भवनों का संस्कृत महत्त्व है। यूरोपीय धार्मिक शब्दावली का वास्तविक अर्थ संस्कृत भाषा की सहायता के अभाव में अस्पष्ट, दुर्बोध, अज्ञात हो रहता।

मोनेस्टरी : वह स्थान है जो व्यक्ति को जड़-जंगम संसार से पार-लौकिक जगत् में आध्यात्मिक लोक में पहुँचाने में सहायता करता है।

पोप : यह संस्कृत शब्द है जो पाप से रक्षा करनेवाले व्यक्ति का द्योतक परिचायक है। संस्कृत में 'प' पालनकर्ता, देखभाल, संरक्षण करने-

वाले का द्योतक, परिचायक है। बुरे काम के लिए शब्द 'पाप' है। पापों से रक्षा करनेवाला व्यक्ति 'पोप' कहा जाने लगा। पाप (न कि पोप) मूल शब्द है—यह तथ्य 'पापल' शब्द से भी स्पष्ट हो जाता है। यूरोपीय उच्चारण में, संस्कृत शब्द 'पाप' को ही 'पोप' कहने लग गये।

प्रेयर : यह संस्कृत शब्द 'प्रायर-थना' (प्रार्थना) के प्रथम अक्षर का विकृत रूप है। 'प्रे' इसका और भी संक्षिप्त रूप है।

प्रीस्ट : यह हिन्दू, संस्कृत शब्द 'पुरोहित' है।

(प) साम : यह संस्कृत का 'साम' शब्द है जैसे 'सामवेद' में।

सब्बाथ : इस शब्द पर इस्लामिक शब्द 'शब-ए-बारात' के साथ विचार किया जाना चाहिए। फिर इन दोनों शब्द की तुलना शिव-व्रत या शिव-रात्रि के साथ करनी चाहिए। यह शब्द 'सब्बाथ' (उपनाम शब-ए-बारात), इस प्रकार, हिन्दू संस्कृत मूल का है जो हिन्दू देव भगवान् शिव का दिन या उनको आह्वान करने का दिन है।

सेवियर : यह संस्कृत शब्द 'ईश्वर' है। हिन्दू ईश्वर को प्रायः जगत्-त्राता अर्थात् जगत् का सेवियर कहते हैं। जगत् + ईश्वर = जगदीश्वर सर्वमान्य, सहज सम्बोधन है।

साईनोड : यह संस्कृत का 'संसद' शब्द है जिसका अर्थ एक सभा, वर्ग-वर्ग या संगम, सम्मिलन है।

साईनागोग : 'सन्, स' संस्कृत में साथ का द्योतक है जबकि 'गोग' बोलने, गाने या पीछे-पीछे दोहराने का क्रम कहा जाता है।

ट्रिनिटी : यह दो संस्कृत शब्दों 'त्रीणि-इति' अर्थात् 'इस प्रकार तीन' (व्यक्ति या अस्तित्व) का द्योतक यौगिक शब्द है। ईसाई देव-त्रयी ब्रह्मा, विष्णु, महेश की हिन्दू देव-त्रयी के स्थान पर शीघ्रता में किया गया, नकली और ऊटपटाँग प्रयास है।

याहवेह : इसके संस्कृत में कई दिव्य-सम्बोधन-भाव हैं। ऋग्वेद में हिन्दू देवता सोम (चन्द्र), अग्नि और इन्द्र को 'याहवेह' कहकर सम्बोधित किया जाता है। 'याहवेह' यादवेयाह का अर्थात् यादव कुल का एक अर्थात् भगवान् कृष्ण भी द्योतक संक्षिप्त रूप हो सकता है।

ज़िओन (ज़ेयन) : यह संस्कृत शब्द 'देवन' है। संस्कृत का 'द' यूनानी

जैसा हिन्दू 'देवस' यूनानियों द्वारा 'ज़ेवस' भाषा में ब से बदल जाता है। यह 'देवन' का समानक 'ज़ेवन' शब्द यहूदियों में बदला देखा जा सकता है। यह के हिन्दू-मूलक होने के अनेक संकेतों में से एक है।

गोलगोथा : जीसस की कथा में अनेक बार आया स्थान-वाचक नाम संस्कृत शब्द है जो वृत्ताकार पशुशाला का द्योतक है क्योंकि 'गोल' का अर्थ वृत्त, वर्तुलाकार और 'गोथा' (गोठ) गौ-शाला है।

क्रिसमस : क्रिश्चियानिटी (कृस्ती-धर्म, पथ) का यह मुख्य समारोह समझे जानेवाला उत्सव भ्रामक नाम से है। यद्यपि सामान्य विश्वासानुसार यह जीसस के जन्मदिन के इर्द-गिर्द ही केन्द्रित माना जाता है तथापि इसका अन्त्य 'मास' अक्षर इसका भण्डाफोड़ कर देता है। 'मास' संस्कृत शब्द है जो महीने का अर्थ-द्योतक है। किसी भी भाषा में यह किसी के भी जन्म-दिन का द्योतक नहीं है। इसलिए, यह जीसस का जन्मदिन कैसे माना जा सकता था? इसका संक्षिप्त रूप X-मास भी गलती से क्राइस्ट का जन्म-दिवस ही द्योतन करता समझा जाता है। कहीं भी X का अर्थ क्राइस्ट नहीं है। साथ ही क्राइस्ट-मास (क्रिसमस) का संक्षिप्त रूप तो 'क्रिमस' जैसा कोई शब्द हो सकता था। यदि यह X-मास हो सकता था, तो फिर यह वाई-मास या ज़ेड-मास भी क्यों नहीं हो सकता था? इस छोटे-से विवरण से यह भी समझ आ जाएगा कि सम्पूर्ण यूरोपीय कृस्ती-परम्परा झूठी, असत्य, अस्थिर, ढोल-पोल है। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि यूरोपीय विद्वानों द्वारा निकाले गये निष्कर्ष भी कितने दोषपूर्ण हैं।

चैम्बर्स ट्वेंटिएथ सेंचुरी शब्दकोश 'क्रिसमस' शब्द की व्याख्या क्राइस्ट के जन्मदिन के उत्सव, समारोह-दिवस के रूप में करता है तथा X-मस (एक्स मस) को उसका संक्षिप्त रूप बतलाता है। यह भारी, भयंकर भूल है।

चूँकि हमने सिद्ध किया है कि कृस्त (क्राइस्ट) तो 'कृष्ण' शब्द का अपभ्रष्ट, भ्रष्ट, विकृत उच्चारण है, इसलिए उपर्युक्त शब्द 'कृष्ण-मस' (मास) होना चाहिए। इस प्रकार इस शब्द से एक पूर्ण, सार्थक भाव ध्वनित होता है क्योंकि अन्तिम अक्षर 'मास' संस्कृत शब्द है जो 'महीना' शब्द का द्योतक, समानार्थक है। अतः इस 'क्रिसमस' शब्द का भाव कृष्ण के नाम पर रखा गया मास, महीना है।

'एक्स-मास' शब्द भी दिसम्बर शब्द का संक्षेप है, न कि क्रिसमस का। X (एक्स) रोमन संख्या का दस (१०) है। अतः एक्स-मास दसवें मास का द्योतक है। प्राचीन हिन्दू प्रणाली, पद्धति में दिसम्बर मास की यथार्थ रूप में यही स्थिति थी जब नववर्ष-दिवस मार्च मास में होता था। इसलिए जनवरी ग्यारहवाँ तथा फरवरी बारहवाँ मास होता था।

एक्स-मास का दसवाँ मास होना दिसम्बर (दशम्बर) शब्द से भी स्वतः स्पष्ट है। संस्कृत में 'दश' का अर्थ दस और 'अम्बर' का अर्थ राशिचक्र है। जो राशिचक्र का दसवाँ भाग है जो उस मास का द्योतक, समानक है।

हमारा यह निष्कर्ष सप्तम्बर (सितम्बर), अष्टम्बर (ऑक्टोबर), नवम्बर शब्दों से भी पुष्ट होता है जहाँ सप्त, अष्ट (ऑक्टो०) और नव शब्द संस्कृत में ७वीं, ८वीं और ९वीं संख्या के सूचक, द्योतक हैं।

कुछ लोगों में यह भ्रान्त धारणा प्रचलित है कि प्राचीन वर्ष मात्र १० महीनों में ही विभक्त था, उसमें केवल १० मास ही होते थे। अविस्मरणीय प्राचीन काल में हिन्दुओं द्वारा निर्धारित वर्ष में सदैव बारह मास ही रहे हैं। उन बारह मासों से मेल खाने के रूप में ही, तदनुरूप हिन्दू, संस्कृत परम्परा में सूर्य के १२ नाम हैं।

जनवरी शब्द को यूनानी ईश्वर जनुस से व्युत्पन्न मानने का विश्वास भ्रमपूर्ण, निराधार है। यूरोपीय विद्वान् ऐसे मामलों में अति लघु, क्षुद्र दृष्टि रखते थे। उनकी सारी खोज यूनान की अन्त-सीमा पर जाकर अवरुद्ध हो गयी। उसके परे उनकी नेत्र-दृष्टि धुंधली हो गयी और उनको शून्य ही नज़र आने लगा।

कल्पित यूनानी ईश्वर जनुस हिन्दू ईश्वर गणेश ही है। जनुस द्वि-मुखी होने की यूनानी कल्पना भी हिन्दू जन-विश्वास, कथा पर ही आधारित है गणेश का जन्म मानव-मुखाकृति के साथ ही हुआ था, किन्तु जब उसके पिता ने भूल से उसका सिर काट दिया था, तब गणेश की ग्रीवा पर एक गज-मस्तक प्रत्यारोपित कर उसको पुनर्जीवित कर दिया गया था। फिर जब लाखों वर्षों तक यूनान का भारत (हिन्दुस्थान) से सम्पर्क नहीं रहा, तब यूनानी पौराणिकता में गणेश अर्थात् जनुस के दो शीर्षों की धारणा स्थान पा गई।

मार्च का नाम मरीचि से व्युत्पन्न है जो सूर्य के लिए संस्कृत में १२ नामों में से एक है।

मई (मे) माया से बना है—माया जो ईश्वर की पवित्र भावना है और मायावी संसार की सृष्टि करती है।

अगस्त (आगस्ट) का नाम महान् हिन्दू ऋषि अगस्त्य से ही सीधा या इसी नाम के रोमन-सम्राट् के माध्यम से प्राप्त हुआ है।

इसके बाद सितम्बर (सप्तम्बर), अक्तूबर (अष्टम्बर) नवम्बर, दिसम्बर (दशम्बर) क्रमशः उन्हीं मासों के संख्या-सूचक नाम अर्थात् ७वाँ, ८वाँ ९वाँ और १०वाँ मास के द्योतक हैं।

दसवाँ मास दो कारणों से 'कृष्णमास' के रूप में समारोहपूर्वक मनाया जाने लगा। एक कारण यह था कि लम्बी रातों और छोटे दिनों वाला यह अन्तिम कृष्ण (काला, अँधियारा) मास था। दूसरा कारण यह था कि उक्त मास भगवान् कृष्ण को समर्पित था क्योंकि महाभारत-युद्ध, जिसमें भगवान् कृष्ण महानायक के रूप में प्रतिष्ठित हुए, सर्वमान्य सिद्ध हुए थे और सभी लोगों की आँखों का तारा, आकर्षण-बिन्दु, मार्गदर्शक बन गए थे, दिसम्बर में ही समाप्त हुआ था।

इस प्रकार क्राइस्ट (कृस्त) मास—क्रिसमस—कृष्णमास ही है। यह एक अन्य प्रमाण है कि क्रिसमस कृष्ण की युद्ध में विजय का, न कि जीसस क्राइस्ट के जन्म का समारोह है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि अंग्रेजी शब्दों का धातुगत मूल अर्थ बताने में ऑक्सफोर्ड शब्दकोश भी किस प्रकार पूरी तरह पथ-भ्रष्टक रहे हैं। ऐसी गलतियाँ, भूलें, अशुद्धियाँ होना तो अवश्यम्भावी ही है जबकि ब्रिटिश कोशकार इस भ्रान्त धारणा से ही प्रारम्भ करते हैं कि संस्कृत की बजाए लैटिन और यूनानी ही इन शब्दों की आकर स्रोत भाषाएँ हैं

प्रसंगवश, हमारी समीक्षा यह भी सिद्ध करती है कि १२ मासों के नाम, क्रम-क्रमेण, अभी भी अधिकतर संस्कृत-भाषायी नाम ही हैं। इन्हीं सिद्धान्तों के अनुसार किए जानेवाले अनुसंधान फरवरी, जून और जुलाई जैसे मासों के संस्कृत-आधारित मूल नाम भी प्रकट कर देंगे, जनमानस के सम्मुख ला देंगे।

अध्याय १८

हिन्दू-धर्म—सर्वमानवता का आदि मातृ-प्रेम

यूरोपीय मस्तिष्क का एक पक्का, सहज दोष 'हिन्दू' शब्द से इसका वैमनस्य, तिरस्कार-भाव रहा है।

धर्म के सम्बन्ध में चर्चा करते हुए या उस विषय में कुछ लिखते हुए यूरोपीय लोग सामान्यतः कृस्ती-पंथ (क्रिश्चियनिटी), इस्लाम और बौद्ध-मत को ही मात्र तीन बड़े धर्म उल्लेख कर अपना कर्तव्य पूर्ण कर लिया—यह मानकर फूले नहीं समाते। उनकी गणना परिकल्पना में कहीं भी हिन्दू-धर्म को स्थान है ही नहीं। बौद्ध-मत हिन्दू-धर्म का ही एक अंश, पंथ है—यह तथ्य भी उन्हें अज्ञात ही रह जाता है।

हिन्दुत्व को धर्म के रूप में वर्गीकृत करने में उनकी विफलता एक प्रकार, एक दृष्टि से तो ठीक, उचित ही है क्योंकि हिन्दुत्व (जिसे सर्व-साधारण भाषा में हिन्दू-धर्म कहते रहते हैं) तो सर्वमानवता का मातृ-रूप है, मातृ-आस्था, मातृ-धर्म है। यह बुद्ध जीसस या मुहम्मद जैसे किसी एक ही व्यक्तित्व से निसृत पथ-सीमित, संकुचित या बँधा हुआ नहीं है। हिन्दू-धर्म के नियम इस प्रकार के हैं कि वे किसी एक क्षेत्र में, किसी एक समय रहनेवाले सभी व्यक्तियों पर प्रयोज्य होते हैं। ऐसा होते हुए भी हम विश्व-आस्थाओं अर्थात् धर्मों की सूची से हिन्दू-धर्म के नाम के पृथकत्व को भी उन यूरोपीय लोगों द्वारा ऐसी उत्तम, विवेकपूर्ण और समझदारीयुक्त विशिष्टता व पक्षपात के सिर नहीं मढ़ते, उन्हें दोष नहीं देते

हिन्दुत्व, हिन्दू-धर्म वर्तमान में आर्य, सनातन (अर्थात् सदा रहनेवाला) या वैदिक-पद्धतिवाला जीवन-प्रकार है। हम इसे जिस भी मनपसन्द नाम से पुकारें, यह उस संस्कृति, दर्शनशास्त्र और जीवन-पद्धति का प्रतिनिधित्व करता है जिसका विकास भारत में हुआ था।

यह संस्कृति एक सामान्य, सर्वमान्य मानव-परम्परा थी जिसे भारतीय ऋषियों, शिक्षाशास्त्रियों, उपदेशकों, नियम-निर्माताओं और प्रशासकों ने सम्पूर्ण विश्व में प्रचारित-प्रसारित किया था। हिन्दू, भारतीय संस्कृति लाखों-लाखों वर्ष प्राचीन है जबकि अन्य समुदायों, जातियों और संस्कृतियों का इतिहास पाँच हजार वर्षों से भी कम समय का है। इसलिए, हिन्दू-संस्कृति तो सम्पूर्ण विश्व पर लाखों वर्षों तक छायी, प्रभावी रही है। [illegible], कृस्ती-पूर्व विश्व पूर्णरूपेण हिन्दू-विश्व ही था।[1] यह सम्भव है कि कृस्ती-युग के प्रारम्भ होने से पूर्व कुछ हजार वर्षों तक यूरोप में और अन्य क्षेत्रों में एक शैक्षिक, धार्मिक और प्रशासनिक शून्य बना रहा। अर्थात् हिन्दू-राज्य शासन समाप्त हो जाने के बाद निष्क्रियता के कुछ हजार वर्ष यहाँ यूँ ही व्यतीत होते गये। फिर भी, जो अवशेष बचे रहे, वे हिन्दू-धर्म—हिन्दुत्व के ही थे। विश्व के दूर-दराज के क्षेत्रों में जनमानस को पोषित करने के क्रम में हिन्दू-शिक्षा, प्रशासन, हिन्दू-धर्मग्रन्थों का पठन-पाठन-वाचन, संस्कृत भाषा का शिक्षण तथा हिन्दू-पौराणिकता का अध्ययन पर्याप्त समय में रुक जाने, अवरुद्ध हो जाने के कारण सम्पूर्ण समाज विभिन्न पंथों व समूहों में टुकड़े-टुकड़े हो गया; संस्कृत भाषा के क्षेत्रीय झरनों के रूप में अन्य भाषाएँ फूट पड़ीं और कृस्ती (क्रिश्चियनिटी) व इस्लाम जैसे पृथक् हुए पंथों ने विश्व को अपना बन्धक बना लिया।

ऐसी विषम, भ्रामक स्थिति होने पर भी हिन्दू देवगणों, हिन्दू उत्सव-त्योहारों, हिन्दू परम्पराओं, हिन्दुओं की पूजा-पद्धति और संस्कृत भाषा की प्रबल मौजूदगी कृस्ती-पूर्व युग में सम्पूर्ण पश्चिमी (और पूर्वी) विश्व में बनी ही रही। फिर भी पश्चिमी विचारधारा और विश्व-सहजबोध को प्रभावित करनेवाले सर विलियम जोन्स, मैक्समूलर और एडवर्ड गिबन जैसे पश्चिमी विद्वानों को सारे साक्ष्यों की उपेक्षा, अनदेखी कर देने का और अरब व यूरोपीय संस्कृतियों के आधार-तत्त्व के रूप में हिन्दुत्व, हिन्दू-धर्म को न पहचान पाने का दोषी ठहराया ही जाना चाहिए। भगवान् कृष्ण के चित्रों, भगवान् शिव के प्रतीक-चिह्नों, माता देवी पार्वती तथा अनेक अन्य हिन्दू

१. हमारा भावी प्रकाशन देखें—'प्राचीन हिन्दू विश्व साम्राज्य'।

देवताओं की मूर्तियों की भाँति हिन्दू देव-देवियों की खोज, उपलब्धियाँ भी पश्चिमी विद्वानों के दिमागों में हिन्दू-धर्म की विद्यमानता को अंकित न करा पायीं। हिन्दुत्व के प्रति उनका ऐसा सहज, तथाकथित जन्मजात-सा ही वैमनस्य, विरोध, विकर्षण था जिसके कारण उनकी पूर्ण शोध-प्रतिभा कुण्ठित हो गई और वह नकारात्मक हो गयी। चाहे यह जानबूझकर की गयी उपेक्षा या अनदेखी रही हो या कुटिल बुद्धि की गैर-पहचान, इसने निश्चित रूप से ही विश्व-शिक्षा को भारी (व गहन) क्षति पहुँचायी है। इसी कारण, इसी आधार पर इतिहास, संस्कृति, देव-विद्या, भाषाशास्त्र, धर्म, शिल्पकला और पुरातत्त्व के बारे में उनके सभी ज्ञानकोशों और अन्य विद्वत्तापूर्ण रचनाओं को इस दृष्टि से काफी अपुष्ट-अस्थायी और अपूर्ण समझा जाना चाहिए। उदाहरण के लिए, यूनान और रोम में पाये गये वे चित्र जिनमें भगवान् कृष्ण बाँसुरी-वादन कर रहे थे या जिनमें वे (कालिय जैसे) नाग से जूझ-लड़ रहे थे, पीटर पान के चित्र कह दिये गये। सूर्य और भगवान् शिव की विश्वव्यापी पूजा के साक्ष्य को जनजातीय लिंगोपासक-पद्धति कहकर कलंकित किया गया। हिन्दू तीज-त्योहारों को गैर-ईसाई, गैर-यहूदी, गैर-मुसलमानी, मूर्तिपूजक और इसीलिए निन्दनीय, त्याज्य बारम्बार घोषित किया गया, किन्तु जब वे ही कृस्ती-वेशभूषा में, रूप-रंग में सुसज्जित कर दिये गये, तो यूरोपीय ज्ञान के उच्च-सिंहासन, उच्च-स्तर पर विराजमान हो गये। इस सबकी संज्ञा तो शैक्षिक विध्वंस और हिन्दुत्व, हिन्दू-धर्म के विरुद्ध गहरी, घोर शत्रुता ही कहलायेगी।

हम उन सभी का सविस्तार वर्णन अपनी भावी रचना में करेंगे जिसका शीर्षक है 'प्राचीन हिन्दू विश्व-साम्राज्य', फिर भी, हम वर्तमान पुस्तक के इस अध्याय में संक्षेप में कृस्ती-पूर्व यूरोप में सामाजिक-धार्मिक-अवशेषों की समीक्षा करेंगे जिनसे उनका हिन्दू-आधार सिद्ध हो सके।

वेद मानव-साहित्य की प्राचीनतम कृतियाँ हैं। हिन्दू खगोलशास्त्रीय और गणितीय आकलनों के अनुसार आर्य या वैदिक सभ्यता करोड़ों वर्ष से भी अधिक पुरानी है। उस लम्बी अवधि में भारत से गये हिन्दुओं ने विश्व-भर में उपनिवेश स्थापित किये, वहाँ जमकर रहे—घर-गृहस्थी निर्माण की और संस्कृत भाषा के माध्यम से सारे लोगों को शिक्षित किया।

स्वाभाविक सहज सार्वजनिक ह्रास के कारण हिन्दू राजाओं-महा-राजाओं-सम्राटों का राज्य-शासन, हिन्दू-शिक्षा की भूमिका और हिन्दू-सेनाओं का नियन्त्रण समाप्त हो गया। उसके पश्चात् एक राजनीतिक, शैक्षिक और प्रशासनिक शून्य और ठहराव उत्पन्न हो गया। ज्यों-ज्यों शताब्दियाँ बीतते गये त्यों-त्यों हिन्दू दार्शनिकता—जीवन-दर्शन और संस्कृति, खान-पान-व्यवहार और पूजा-उपासना, भाषा और शिक्षा हिन्दू-विचार और शिक्षा की पोषक धारा से कट जाने के कारण विकृत और छिन्न हो गये, बिखर गये जैसा हमारे सर्वेक्षण से स्पष्ट हो जाएगा।

हम पूर्वपृष्ठों में पहले ही देख चुके हैं तथा अगले पृष्ठों से भी यह स्पष्ट हो जाएगा कि क्रिस्ती-पंथ स्वयं में कुछ भी न होकर मात्र हिन्दू-कृष्ण-पंथ का एक विकृत रूप ही है।

आइए, हम अब यहूदियों के बारे में देखें। 'जुदाइज्म' और 'जूडिया' शब्द (जैसे उच्चरित) 'यदु' शब्द से प्राप्त हुए हैं। यहूदी अर्थात् जुदाइस्ट्स उसी वंश से सम्बन्धित हैं। यह वह मूल है जो यहूदी-परम्परा में 'ईश्वर के चाहने पुत्र (व्यक्ति)' होने का आधार है।

दूसरा अन्य प्रमाण यह है कि मोजेज की जीवन-गाथा, लगभग प्रत्येक घटना में, कृष्ण की जीवन-कथा के अनुरूप ही ढली हुई है।

उनका पवित्र प्रतीक चिह्न परस्पर-गुम्फित त्रिकोण, जो डेविड या सोलोमन के तारक नाम से प्रसिद्ध है हिन्दुओं का शक्ति-चक्र है।

यहूदी ज्ञानकोश उल्लेख करता है कि यहूदी लोग हीराइट्स (हरी-आइट्स) कहलाते हैं। किन्तु ज्ञानकोश को इसका कारण ज्ञात नहीं है। कारण यह है कि 'हरि' भगवान् कृष्ण का अतिप्रिय एक नाम है। स्पष्ट रूप से भगवान कृष्ण के कुल के व्यक्तियों को हरी-आइट्स के नाम से पुकारा जाना अति सहज स्वाभाविक ही है।

'हिब्रू' या हबू, शब्द की व्याख्या करते हुए उसी ज्ञानकोश में कहा गया है कि अक्षर 'ह' (अर्थात् 'ह' हिन्दी अक्षर) दैवी नाम का संक्षेपरूप है। तथापि उक्त ज्ञानकोश सम्बन्धित दैवी दिव्य नाम को स्पष्ट करने में विफल रहा है।

हम, यथाधार अत्यन्त सरल है। वह देव-नाम 'हरि' था। लाखों, करोड़ों हिन्दुओं का यह नाम है, होता है।

'ब्रू' प्रत्यय भी संस्कृत है, जो 'बोलने' का द्योतक है। अतः हिब्रू (हब्रू) शब्द संयुक्त युग्म है जिसका अर्थ भगवान् कृष्ण अर्थात् स्वयं हरि द्वारा प्रयुक्त भाषा' है।

यहूदी-विवाह परम्परागत रूप में चार बाँसों/स्तम्भों पर आयताकार या वर्गाकार चंदोवा या छत्र के नीचे ही सम्पन्न होते हैं, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार हिन्दू-विवाह। यहूदी लोग भी अपने विवाह दोनों परिवारों के परिचित व्यक्ति द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव पर विचार करने के बाद करना ही श्रेष्ठ समझते हैं। बिना ज्येष्ठों की स्वीकृति, मान्यता और आशीर्वाद के ही लड़के-लड़कियों द्वारा परस्पर किये गये विवाहों को यहूदी लोग तिरस्कार, हेय दृष्टि से देखते हैं।

उनके धार्मिक कृत्यों, पर्वों, अनुष्ठानों के स्थान के लिए यहूदी शब्द 'साइना गॉग' (सगोग) संस्कृत-मूल का शब्द ही है। पहला अक्षर 'स' 'साथ' का द्योतक है और 'गोग' का अर्थ 'गाना' है, जो उस पूजा-स्थल का परिचायक है जहाँ सब व्यक्ति एकत्र होते हैं और भक्ति-रचनाओं, भजनों, पद्यों आदि के सस्वर पाठ, गायन से देवगणों का आह्वान करते हैं।

पौधे (वृक्ष आदि) भी यहूदियों में उसी प्रकार पवित्र, पुण्यदाता और पूज्य-आराध्य माने जाते हैं जिस प्रकार वे हिन्दुओं में हैं। नगर और मन्दिर-द्वारों के पत्थरों पर कमल-पुष्प उसी प्रकार उत्कीर्ण, प्रदर्शित किये जाते हैं जैसे हिन्दुओं द्वारा।

यहूदियों (और मुस्लिमों में भी) परिच्छेदन की पद्धति क्षेत्रीय आवश्यकता के रूप में विकसित हो गयी। रेगिस्तानी प्रदेशों में जहाँ स्नान, प्रक्षालन आदि के लिए जल जीवन-भर की दुर्लभ वस्तु थी, परिच्छेदन-पद्धति को सावधानी के रूप में अपनाना पड़ा क्योंकि यह पद्धति पुरुष रत्यात्मक लिंग-अवयव को प्रभावित करनेवाले क्षय से बचाती थी। परिच्छेदन का अध्यात्म से कुछ लेना-देना नहीं है। परिच्छेदन का अनवरत पालन उन दिमागों में जरूर धार्मिक बन्धन का रूप प्रदान कर देता है जिनकी विचारधारा कुछ सीमित घरों तक ही प्रभावी है।

जुदाइज्म (क्रिश्चियनिटी और इसलाम का भी) केन्द्रीय बिन्दु 'जरुसलम'

हिरण्यकश्यप जैसे निरंकुश अत्याचारी हुए हैं जो विष्णु, नारायण या कृष्ण जैसे ईश्वरीय नामों से भी चिढ़ते, घृणा करते थे। उक्त कथा कैस्पियन सागर पर घटित हुई थी जिसका नाम कश्यप से व्युत्पन्न है। उसी क्षेत्र के लोग आज भी यहूदियों से तुलना करनेवालों में हैं जहाँ कभी तैमूरलंग और बाबर तथा बाद में उन साम्यवादियों का प्रभुत्व रहा जो परम्परागत रूप से भगवान्, ईश्वर के नाम-मात्र से ही घृणा करते हैं।

ऐसे नास्तिक निरीश्वरवादी भी ईश्वर के हाथों की करामात के इस संश्लिष्ट ऐतिहासिक साक्ष्य को अमान्य, अस्वीकार करने में कठिनाई अनुभव करेंगे। इसका अन्य समान रूप से महत्त्वपूर्ण पक्ष यह है कि हिन्दू लोग विश्व के इतिहास-लेखक रहे हैं। रामायण, महाभारत और श्रीमद्भागवत जैसे हिन्दू-धर्मग्रन्थों में लिखित सुर-असुर संग्राम उन संघर्षों के अभिलेख हैं। इसलिए विश्व के विद्वानों को उन धर्मग्रन्थों का गहन अध्ययन प्राचीन विश्व के इतिहास-ग्रन्थों के रूप में करना चाहिए। ऐसे अध्ययन प्राचीन युग से आज हमारे समय तक चले आ रहे राजनीतिक सम्बन्धों और समझौतों को भी ठीक प्रकार समझने में सहायक होंगे। ऐसा अध्ययन कुछ सीमा तक मनुष्य-मन से अहम्, घमण्ड को भी दूर करने में सहायक होगा क्योंकि इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि हम सब ईश्वर द्वारा पूर्व-निर्धारित प्रारब्ध के अनुसार ही मात्र अपनी-अपनी भूमिकाएँ निभा रहे हैं।

सीरिया और असीरिया शब्द भी, दैवी और आसुरी शक्तियों के द्योतक सुर और असुर शब्दों के क्रमशः भ्रष्ट रूप, अवशेष ही हैं। इन दो विरोधी भावनाओं व प्रवृत्तियों के अनवरत संघर्ष में देवगण अर्थात् सुर लोग प्रायः असुरों द्वारा पीड़ित और पराभूत होते रहे। इसलिए सुरों अर्थात् देवताओं का गढ़ होने पर भी सीरिया उन मुस्लिम जनों का देश हो गया जो भगवान कृष्ण की प्रतिमा या उनकी पूजा-आराधना से भी घृणा करते हैं। यह कल्पना करना उचित नहीं होगा कि सीरिया और असीरिया की वर्तमान सीमाएँ प्राचीन कालों में ही अर्थ-गर्भित रही हैं। सम्भवतः प्राचीन विश्व सुरों और असुरों के बीच ही विभक्त था जिसके आधुनिक अवशेष सीरिया और असीरिया हैं।

सुमेरियन भी इसी प्रकार एक हिन्दू, संस्कृत शब्द है। हिन्दू जन-कथाओं में सुमेरु स्वर्ण का पर्वत है। सुमेरु शब्द एक अति लोकप्रिय शब्द है जो प्राचीन हिन्दू विद्या, जनकथाओं में बारम्बार आता है।

इससे यह प्रत्यक्षतः स्पष्ट हो जाना चाहिए कि हिन्दू लोग, जिन्होंने विश्व पर राज्य किया, स्वतः प्राचीन विश्व के इतिहास लेखक भी हो गए। हमें इसी युग में इसका समानान्तर उदाहरण प्राप्त, दृष्टव्य है।

जब किसी राष्ट्र या समाज, समुदाय के पास विजय प्राप्त करने की शक्ति सन्निहित हो जाती है और यह प्रचार-माध्यम का नियंत्रण करता है, तब यह इतिहास-लेखन करता है। सत्ता-विहीन और इसी कारण प्रचार-माध्यमों पर नियन्त्रण न रखनेवालों को इतिहास लिखने की प्रेरणा नहीं होती क्योंकि उनकी बात सुनी नहीं जाएगी और वे जो कुछ कहते हैं, वह 'बिकेगा' नहीं। आधुनिक पत्रकारिता उसी का उदाहरण पेश करती है। फिल्मों, पत्र-पत्रिकाओं, दूरदर्शन और आकाशवाणी जैसे प्रचार-माध्यमों तक अपनी पहुँच रखनेवाले लोग ही अधिकांशतः लिखते (रहते) हैं क्योंकि उनके लिए काफी माँग, पूछ रहती है और यह गारण्टी भी रहती है कि वे जो भी कुछ कहते हैं या लिखते हैं, उनकी बिक्री बनी रहेगी, वह जरूर 'बिकेगा'। मध्ययुगीन, अनपढ़ मुस्लिम आक्रमणकारियों के शासन एक अन्य उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। यद्यपि उनके सैनिकों, परिकर-परिजनों व अन्य पिछलग्गू तथा आश्रितों में से अधिकांश लोग निरक्षर थे, फिर भी कुछ पढ़े-लिखों ने पर्याप्त विवरण लिखे हैं चाहे वे प्रत्येक गैर-मुस्लिम की निन्दा-वाले अप्रामाणिक, झूठे और पक्षपातपूर्ण हैं।

भारत में ईसा-पश्चात् सन् ७१२ से १९४७ तक के विदेशी शासनान्तर्गत सभी प्राचीन हिन्दू-अभिलेखों को लूटा या जलाया गया और नयी रचना पर भौंहे चढ़ाई गईं या उसे तुरन्त नष्ट कर दिया गया। अतः जो लोग विश्वास करते हैं कि हिन्दुओं को इतिहास-लेखन की कोई वृत्ति ही नहीं थी, उनका रुझान इस ओर था ही नहीं, वे या तो भोले-भाले अज्ञानी हैं या फिर उनकी बुद्धि भ्रान्त, मलिन, दूषित है।

कई बार तर्क दिया जाता है और विश्वास भी किया जाता है कि हिन्दुओं ने तो वेदों, उपनिषदों, रामायण और महाभारत जैसे पौराणिक

साहित्य की रचना ही की थी।

और ईश्वर-सम्बन्धी [illegible] जाता है अथवा अनुभव नहीं किया जाता

यह सम्भवता से भुला दिया [illegible] हिन्दुओं की पौराणिक और ईश्वर-ज्ञानी रचनाएँ भी नष्ट कर दी जाती यदि हिन्दुत्व के दुश्मन ऐसा कर ही पाते। ये भी पीढ़ियों से पीढ़ियों तक, असंख्य परिवारों द्वारा कण्ठस्थ करने के कारण सुरक्षित, अक्षुण्ण बची रहीं या फिर श्रीमद्भगवद्गीता, श्रीमद्भागवत, रामायण और महाभारत जैसी रचनाएँ प्रत्येक मन्दिर और घर-घर में रखी होने और पढ़ी जाने के कारण ही नष्ट होने से बची रह गईं।

[illegible] से लेकर वायु विमानन-शास्त्र तक, पुरातत्त्व से लेकर शिल्पकला तक, भौतिकी से लेकर शरीर विज्ञानशास्त्र तक और भूगोल विद्या से लेकर भौमिकी तक का विशाल यान्त्रिकी साहित्य भी हिन्दुओं के पास था, जिसका पठन-पाठन सम्पूर्ण विश्व की हिन्दू अकादमियों में किया जाता था किन्तु जब उन अकादमियों को क्रूरता और इस्लामी हत्याकाण्ड, लूट-मार और अग्निकाण्डों का शिकार हो जोर-जुल्म सहना पड़ा तब वह सम्पूर्ण साहित्य या तो नष्ट लुप्त हो गया या फिर प्रयोग में न आने के कारण विस्मृत हो गया। फिर भी इसका एक बड़ा अंश अभी भी विदेशों में पूरी तरह सुरक्षित और छुपाकर रखा हुआ है या फिर स्वयं भारत में भी उपेक्षित और अजात पड़ा हुआ है क्योंकि अब इसकी माँग नहीं रही और यह 'बिकता' नहीं है।

हिन्दू सभ्यता के इस प्रकार हुए घोर विध्वंस के बाद भी प्राचीन विश्व में हिन्दुत्व, हिन्दू-धर्म की छाप और उसकी सर्वत्र विद्यमानता किसी भी निष्ठावान, सक्रिय, सत्यानुसन्धानशील और निष्पक्ष विद्वान् को अथवा एक सचेत सावधान सुविज्ञ सर्वसाधारण को भी हजारों संकेतों से स्पष्ट, प्रत्यक्ष है। इन्हीं संकेतों में से एक यह है जिसकी हमने इस अध्याय में चर्चा की है—अर्थात् धार्मिक-पंथ जिनमें सभी हिन्दू, संस्कृत शब्द रहे हैं।

तथाकथित [illegible] लोग भी कृष्णी-लोग ही थे, क्योंकि यहूदी, जिनमें से कुछ लोगों का धर्मान्तरण किया गया था, ईसाई बनाया गया था, स्वयं ही भगवान कृष्ण के कुल के थे। स्टाइक, फिलिस्तीनी, मर्यादित और ईसीनस —ये सभी शब्द ही हिन्दू, संस्कृत शब्द दर्शाए जा चुके हैं।

तर्क दिया जा सकता है कि यहूदी लोग मूर्तिपूजक नहीं थे और इसी-लिए उन्होंने कृष्ण और/या अन्य देवताओं की पूजा-आराधना की ही नहीं होगी। किसी समुदाय/जाति की जो स्थिति एक समय रही हो, आवश्यक नहीं है कि वही स्थिति अन्य समय भी रही हो। उदाहरणार्थ, आज पाकिस्तान और बांग्ला देश के नाम से ज्ञात भारत के हिस्से पहले भक्ति-परायण, देवभक्त हिन्दुओं से ही बसे हुए थे। अब वे दोनों भाग उन्हीं लोगों के वंशजों से भरे-बसे हैं जो मुस्लिम-धर्म में परिवर्तित हो जाने के कारण हिन्दुओं के घोर शत्रु, घृणा करनेवाले बन चुके हैं।

यहूदी लोग भी किसी समय अनन्य मूर्ति-उपासक थे, किन्तु महाभारत-युद्ध के बाद वे अपनी हिन्दू, संस्कृत परम्परा से अलग-थलग पड़ गए थे। पश्चिमी एशियाई रेगिस्तान में, चारों ओर शत्रु-भाव से घिरे रहने पर भी, यहूदियों ने हिन्दू देवगणों में से देव-आराधना पूजन जारी रखा। किन्तु ज्यों-ज्यों समय गुजरता गया, संस्कृत-हिन्दू धर्मग्रन्थों से नियमित अध्ययन-अध्यापन और पठन-पाठन रुक गया और इसीलिए यहूदियों में कुछ समूह-वर्ग भिन्न देवताओं की पूजा करने की ओर झुकने लगे। यहूदियों के नेताओं ने इस प्रक्रिया में अपनी एकता और अक्षुण्णता को भारी खतरा आँक लिया। यदि वे अपने-आपको छोटे-छोटे समूहों में बँट जाने देते तो उनके शत्रुओं ने उन्हें एक-एक कर समाप्त ही कर दिया होता। इसलिए, यहूदी नेताओं ने अति दूरदर्शितापूर्वक किसी भी प्रकार की मूर्ति-पूजा से अपने साथियों को अलग रखा। विरोधी वातावरण में घिरे रहने के कारण अपनी संगठन, ऐक्य शक्ति को बिखरने से बचाने की अनिवार्य आवश्यकतावश मूर्ति-पूजा का त्याग करनेवाले यहूदी लोग मुस्लिमों के समान मूर्ति-पूजा विरोधी या मूर्तिभंजक नहीं हैं। यहूदियों के रक्त में मूर्ति-घृणा नहीं है जैसा मुस्लिमों के खून में है।

मुहम्मद द्वारा मूर्ति-पूजा के प्रति घृणा या द्वेष के कारण विवश हो मूर्ति-विनाश करने से पूर्व मिस्र देश के निवासियों सहित अरब लोग शैव अर्थात् भगवान् शिव तथा अन्य हिन्दू-देवताओं की पूजा-आराधना करते थे। केवल मक्का में काबा मन्दिर में ३६० देव-मूर्तियाँ नष्ट कर देने के मुस्लिम दावे से इस तथ्य की स्पष्ट पुष्टि हो जाती है। कुछ लेखकों ने मुस्लिम-पूर्व अरबों

को ट-सेबाइट कहा है जो शंख (अंग्रेजी में शैबाइट) शब्द का मात्र ध्वन्यात्मक रूपान्तर ही है।

ईसापूर्व काल-खण्डों में यूनानी और रोमन लोग स्वयं भी हिन्दू ही थे। वे सूर्योपासना करते थे और सूर्य को 'मित्रस्' कहते थे जो एक हिन्दू-पद्धति और संस्कृत नाम है। वे भगवान् शिव की पूजा करते थे और उनको त्रि-अम्बकेश नाम से सम्बोधित करते थे। उक्त संस्कृत शब्द त्र्यम्बकेश का अर्थ त्रिनेत्रवाला प्रभु स्वामी है। यूनानी-रोमन ईश्वर 'बाकस' संस्कृत शब्द 'त्र्यम्बकेश' का विकृत रूप है। देवी अन्ना पेरीना हिन्दू देवी 'अन्नपूर्णा' है। 'प्रोमेथ्यूस' नाम भगवान् शिव का द्योतक 'प्रमथेश' संस्कृत शब्द ही है। मस्तक में एक आँखवाले साइक्लोप्स की यूनानी कथाएँ उसी आकृति-वाले भगवान् शिव के व्यक्तित्व से चल रही हैं। सागर से प्रकट होनेवाली अप्सरा की कहानी हिन्दू देवी लक्ष्मी की कथा ही है जो देवों और राक्षसों द्वारा संयुक्त रूप से किए गए समुद्र-मंथन के परिणामस्वरूप प्राप्त चौदह महत्त्वपूर्ण बहुमूल्य रत्नों में से एक थी।

उन्होंने भी शुभ, पवित्र स्वस्तिक को सँजोकर सुरक्षित कोश-रूप कर लिया ठीक उसी प्रकार जैसे यहूदियों ने हिन्दू-चिह्न को डेविड-स्टार (डेविड का तारा) कहकर अंगीकृत कर लिया।

ऐज़टेक्स मय, इकास और पेरुवासी यद्यपि अब निःशेष हैं, तथापि वे भी अपने पीछे मन्दिर और अन्य भवन छोड़ गए हैं जो सिद्ध करते हैं कि वे भी हिन्दू ही थे।

मलेनेशियाई और अन्य अफ्रीकी लोग अपने-आपको कुश से वंशोद्भव कुशाइट कहते हैं। कुश भगवान् राम के पुत्र थे। वे लोग तथापि राम का उच्चारण 'हाम' करते हैं।

भगवान् कृष्ण के चित्र, मूर्तियाँ और प्रतिमाएँ समय-समय पर यत्र-तत्र ऐतिहासिक-ध्वंसावशेषों और शोधग्रन्थों में सार्वजनिक रूप से लोगों के सामने आए हैं किन्तु इन दिनों शैक्षिक अड्डों, ठिकानों पर शासन करनेवाले यूरोपीय विद्वानों ने उनकी पूरी तरह अवज्ञा, अवमानना, उपेक्षा करना जारी रखा है या फिर उनको पीटर पान या हैमलिन का रंगीला बाँसुरीवाला या किसी अल्लम-गल्लम गँवार से सम्बन्धित बता देते हैं।

पीछे सारांश रूप में प्रस्तुत प्राचीन यूरोप और एशिया में अरब-क्षेत्र व अफ्रीका में हिन्दू-विद्यमानता के महत्त्वपूर्ण और प्रचुर मात्रा में उपलब्ध साक्ष्यों को प्रचण्ड रूप से अस्वीकार कर और उनकी अपेक्षा करना जारी रखनेवाली यूरोपीय विद्वत्ता की अस्पष्ट, दुराग्रही अरुचिकर वृत्ति से मोहित, प्रबुद्ध संसार पूरी तरह असावधान रहा है।

अध्याय १९

प्राचीन विश्वव्यापी कृष्ण-पूजा

कृस्ती-पूर्व युगों में प्राचीन विश्व में सर्वत्र कृष्ण-पूजा के प्रचलन के बारे में विद्वानों द्वारा विश्व को सूचित न किए जाने का मुख्य कारण या तो निपट अज्ञान रहा या फिर दुराग्रही प्रतिकूलता।

अपनी जीर्ण-शीर्ण मदमस्ती में भी उनकी तथाकथित शोध-गतिविधियों से स्वेज के पूर्व में यदा-कदा एकाध हिन्दू-उपलब्धि को फिर भी सार्वजनिक कर दिया जाता है किन्तु स्वेज के पश्चिम में तो मात्र कृस्ती-उपलब्धियों को ही पूरी शान-शौकत के साथ प्रचारित-प्रसारित किया जाता है, चाहे वे बातें भी प्रायः झूठी, नकली, अप्रामाणिक और ऊपर से थोपी हुई होती हैं।

उदाहरण के लिए, इटली में प्रचुर मात्रा में कृस्ती-प्रभाव के कारण विश्व को (अभी तक) यह नहीं बताया गया है कि पुरातत्त्वीय या अन्य खुदाइयों के समय इटली में अनेक स्थानों पर हिन्दू शिवलिंग प्राप्त हो जाते हैं। उक्त तथ्य का उल्लेख 'एट्रुस्कन' और 'एट्रूरिया' शीर्षकों के अन्तर्गत करनेवाला ब्रिटिश ज्ञानकोश (एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका) भी भगवान् शिव के उन प्रतीक चिह्नों को शिवलिंग न कहकर "उन्नत चौकियों पर पड़े हुए अग्निमय, उल्कामय प्रस्तर" घोषित कर सभी पाठकों को चुपके से दिग्भ्रमित कर देता है।

वैटिकन स्थान भी, जो कृस्ती-पूर्व काल में हिन्दू पूजा के एक प्रमुख केन्द्र के रूप में कार्यरत था, अपनी भारी-भरकम दीवारों में, अपने भू-गर्भीय तहखानों तथा विशाल प्रांगणों में हिन्दू-देवगणों की मूर्तियों को निश्चित रूप से सजाए, सँजोए होगा। ऐसी उपलब्धियों के बारे में गम्भीर, सतर्कतापूर्ण चुप्पी और 'कुछ नहीं, कुछ नहीं' रुख बनाए रखा जाता है। ऐसा ही एक शिवलिंग, जो स्पष्टतः वैटिकन-प्रांगण में मिला था, वैटिकन के

'एट्रुस्कन' संग्रहालय में सार्वजनिक तौर पर प्रदर्शित किया गया है। वैटिकन स्वयं ही संस्कृत शब्द है जो एक धार्मिक कुञ्ज-निकुञ्ज, वाटिका का द्योतक है जैसे संस्कृत की शब्दावली 'धर्म वाटिका', 'आनन्द-वाटिका' और 'आश्रम-वाटिका' आदि में।

पश्चिमी पर्यटक बैंकाक के मरकत, पन्ने के बौद्ध-मन्दिर में रामायण की कथा के प्रसंगों के चित्र बने होने के बारे में प्रायः लिखते हैं या जावा में प्रेमबनन मन्दिर में ऐसे दृश्य उत्कीर्ण होने की चर्चा करते हैं किन्तु वे इस तथ्य का लेशमात्र भी उल्लेख किसी प्रकार भी नहीं करते कि पुरातत्त्वीय खुदाइयों में प्राप्त प्राचीन इतालवी मकानों पर भी रामायण की चित्रावली बनी हुई उपलब्ध हुई थी। किसी भी असुविधाजनक भेद को प्रकट कर देने पर उनका गला घोंट देने के लिए कृस्ती-पंथ का धार्मिक राजतन्त्र अपना क्रूर, कठोर हाथ सदा तैयार मालूम पड़ता है। वहाँ की राजधानी रोम का नाम, जो स्थानीय रूप में 'रोमा' बोला, वर्तनी किया जाता है भी राम से ही व्युत्पन्न है।

परिणामस्वरूप, अत्यन्त गुप्त रूप से छुपे रह गए अनेक प्रमुख तथ्यों में एक यह है कि कृस्ती-पंथी विश्व में कृष्ण-पूजा व्यापक रूप में अति प्रचलित थी।

यहाँ हम फिर एक बार गैर-हिन्दू पाठकों को यह बता देना चाहते हैं कि हिन्दू-देवपंक्ति, देवकुल में असंख्य देवता-देवियाँ हैं जो सभी एक-दूसरे की पूरक और सहायक हैं। उनमें से हर एक दैवी-अंश के किसी रूप-लक्षण का प्रतिनिधित्व करता है। वे सभी मिलकर उस दिव्य-रूप का सृजन करते हैं जो प्रत्येक परमाणु को संजीवनी और चेतनता प्रदान करनेवाली अदृश्य शक्ति के रूप में सर्वब्रह्माण्डव्यापी है। यह वही शक्ति है जो ऑक्सीजन, विद्युत्, गुरुत्वाकर्षण, चुम्बकीय-आकर्षण और अपनी सन्तान के लिए माँ की ममता के रूप में प्रकट होती है।

अतः जब हम यह कहते हैं कि प्राचीन विश्व में कृष्ण-पूजा प्रचलित थी तो इसे हिन्दुत्व-हिन्दू-धर्म की उपस्थिति के रूप में साक्ष्य स्वीकार करना है। गैर-हिन्दू पाठक इसे मात्र किसी एकांगी हिन्दू-पंथ का साक्ष्य मान सकते हैं। यह गलत होगा, एक भूल होगी। हिन्दुओं को स्वतन्त्रता है कि वे एक

सकते हैं। उनके लिए वे सभी देवता एक-या सभी देवताओं की पूजा कर सकते हैं। उनके लिए वे सभी देवता एक ही देवत्व का प्रतिनिधित्व करते हैं। प्राचीन एक या इकट्ठे भी एक ही देवत्व का प्रतिनिधित्व करते हैं। प्राचीन विश्व में भगवान् शिव, उनकी अर्धांगिनी माँ भगवती पार्वती, अग्नि, सूर्य और अन्य देवताओं की पूजा श्रीकृष्ण भगवान् की पूजा के साथ-साथ या इच्छानुसार चलती होती थी। यहाँ हम क्राइस्ट (कृस्त) पर जोर दे रहे हैं यह बताने के लिए कि क्राइस्ट किस प्रकार 'कृष्ण' नाम का विविध रूप हो रहे हैं।

भारत में सभी देवताओं के सौ या हजार विविध, विभिन्न नाम भी हैं। हिन्दुओं के विशिष्ट धर्मग्रन्थ हैं जिनमें इनके उक्त नामों का सकलन है। विष्णु सहस्रनाम और गोपाल सहस्रनाम' ऐसे ही धार्मिक सकलन हैं जिनमें भगवान् विष्णु और भगवान् कृष्ण के १,००० नाम संग्रहीत हैं।

इस्लाम के अल्लाह के ९९' नाम हिन्दू-पद्धति ही है। कृष्ण भी भिन्न-भिन्न नामों से जाने जाते हैं जैसे श्याम, कान्हा, गिरधारी, श्रीकृष्ण, हरि, मुरारि, कन्हैया, गोपाल, मुरलीधर, बालकृष्ण, द्वारकाधीश, वासुदेव, मधुसूदन और कई अन्य नाम।

इन्हीं नामों में एक था राधा-मनम्य-ईश अर्थात् राधा के मन में बसने वाले ईश कृष्ण। दूसरा नाम था ओम् श्रीकृष्ण।

इन नामों में से कृष्ण का नाम यूनान और जरुसलम में क्राइस्ट (कृस्त), राधा-मनम्य-ईश नाम राधामनथस और ओम् श्रीकृष्णम का नाम ओनेसीक्रीटस उच्चारण किया जाता था।

हम यहाँ पश्चिमी विद्वानों द्वारा लिखी गयी अनेकों पुस्तकों में से उद्धरण प्रस्तुत करना चाहते हैं जो इस तथ्य का संकेत देते हैं कि कृष्ण और अन्य हिन्दू-देवताओं की पूजा प्राचीन यहूदी-अरब और यूरोपीय प्रदेशों में हुआ करती थी जिससे सिद्ध होता है कि उनका धर्म-परिवर्तन होने से पूर्व वे सभी हिन्दू थे।

इग्नेशियस द्वारा इफेसियनों को लिखे पत्र में कहा गया है कि प्राचीन साम्राज्य का सब प्रतिपादन कर दिया गया था जब ईश्वर मानव-रूप में प्रकट होकर उपस्थित हुआ था।"[1]

1. बुद्धिस्ट एण्ड क्रिश्चियन गास्पल्स', पृष्ठ २०।

यह सन्दर्भ कृष्ण की कंस के साथ कुश्ती-युद्ध और कंस-वध के उपरान्त उसके साम्राज्य के पतन से सम्बन्धित है।

"एक प्रार्थना में, जो कुछ खास पाठ संशोधनों में मौजूद है, पट्ट-शिष्य पवित्र आत्मा को 'पाँच सदस्यों के धर्मवृद्ध पुरोहित' के नाम से सम्बोधित करता है जो गैर-कृस्ती है। ये पाँच सदस्य हैं : बुद्धि, विचार, प्रयोजन, प्रतिबिम्ब, मीमांसा।"[1]

लेखक ने इसे गैर-कृस्ती कहा है जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यह कृस्ती नहीं है क्योंकि यह हिन्दू है। किन्तु यह पद्धति कृस्ती-पंथ का एक भाग मुख्यतः इसी कारण से बन चुकी है क्योंकि कृस्ती-पंथ वह नाम है जिसकी आड़ में हिन्दू पद्धतियाँ चालू हैं। यदि क्राइस्ट को कृष्ण समझ लिया जाए, तो उपर्युक्त आवाहन गैर-कृष्णी नहीं है। साथ ही, हिन्दू-पद्धति, परम्परा में कृष्ण को हृषिकेश भी कहते हैं अर्थात् वह देवता जो पाँच (या दस) इन्द्रियों पर भी शासन, नियन्त्रण रखता है। जिस प्रकार हिन्दू लोग भगवान् कृष्ण को सम्बोधित करते हैं उसी प्रकार पट्ट-शिष्य का 'पाँच सदस्यों के स्वामी' के रूप में ईश्वर को सम्बोधित किया जाना इस बात का स्पष्ट संकेतक है कि शिष्यों का प्रभु जीसस क्राइस्ट न होकर ईशस कृष्ण ही था।

एक प्राचीन यूनानी इतिहास-लेखक का नाम 'ओनेसीक्रीटस' था जो 'ओम् श्रीकृष्णस' ही है।

"स्ट्रैबो भारत तक सारे एशिया को बैकस द्वारा प्रतिष्ठित, पवित्रीकृत मानता था जहाँ हरकुलिस और बैकस-पूर्व के सम्राट् पुकारे जाते हैं (ज्योग० X ३ सी० एफ०, अस्टीनीयस (XL ११ ३)। बेबिलोन और मिस्र के अन्तिम धर्म का जन्म वहीं हुआ था। यूनानी और रोमन लोग भी बैकस और मित्रस के पंथों के लिए और कदाचित् एल्यूसिस के रहस्यों के लिए भी उसी के ऋणी थे।"[2]

उपर्युक्त उद्धरण में लेखक सर्वप्रथम कहता है कि पूरा एशिया बैकस और हरकुलिस की पूजा करता था। उसने बाद में यह भी जोड़ दिया है कि

1. 'बुद्धिस्ट एण्ड क्रिश्चियन गास्पल्स', पृष्ठ २७।
2. वही, पृष्ठ ४८।

[illegible] उन पंथों के ऋणी थे। चूँकि प्राचीन यूरोप यूनान और रोम का अनुसरण करते थे, इसलिए स्पष्ट है कि यूरोप और एशिया दोनों [illegible] बैकस और हरकुलिस की पूजा करते थे।

[illegible] देवता कौन-से हैं? बैकस तो संस्कृत शब्द त्र्यंबकेश—तीन नेत्रों वाले स्वामी अर्थात् भगवान् शिव का परवर्ती यूरोपीय अपभ्रंश रूप है। हरकुलिस संस्कृत यौगिक शब्द हरि-कुल-ईश अर्थात् हरि के कुल का स्वामी [illegible] है। चूँकि कृष्ण विष्णु का अवतार है, इसलिए उसे प्रायः हरि-[illegible] सम्बोधित किया जाता है। हरकुलिस और हेराकिल्स उपनाम [illegible] संस्कृत शब्द हरि-कुल-ईश के यूरोपीय अपभ्रंश हैं। वे स्पष्ट दर्शाते हैं कि न केवल कृष्ण की पूजा भगवान् शिव के साथ प्राचीन यूरोप में [illegible] रूप से होती थी, बल्कि भारत में प्रचलित हिन्दू-पद्धति के अनुसार ही प्राचीन यूरोप में नाम भी हिन्दू-देवताओं के नामों से ही लेकर रखे जाते थे। इसका अर्थ यह है कि प्राचीनकाल में एशिया और यूरोप, दोनों की संस्कृति हिन्दू ही थी।

मेंग फिण्डल ने लिखा है कि यूनानी लोग बैकस को शिव और हेराकल्स को कृष्ण के रूप में ही पहचानते थे।[1]

'यूनानी और रोमन लोग बौद्धों की अपेक्षा ब्राह्मणों के बारे में ज्यादा [illegible] इन हिस्पानिस्टस लेखकों में देख सकते हैं।'[2] यह कथन सही है किन्तु [illegible] निष्कर्ष गलत है। बौद्ध-मत को हिन्दू-धर्म से भिन्न समझना पश्चिमी लेखकों की सामान्य विफलता है। बुद्ध स्वयं ही एक हिन्दू [illegible] थे—इससे न कम न ज्यादा। यदि उनका कम श्रेय दिया जाता है, तो इसका कारण है कि उन्हें श्रेष्ठता में कुछ कम समझा जाता है। बौद्ध-मत हिन्दू-धर्म में ही निहित और समाविष्ट है। जब कोई व्यक्ति भगवान् राम, कृष्ण और शिव जैसे प्रमुख देवताओं की चर्चा, उल्लेख करता है तो बुद्ध का [illegible] करने की आवश्यकता नहीं होती। यही तथ्य कि हिस्पानिस्टस और अन्य लेखक हिन्दू-देवताओं के बारे में तो काफी कुछ कहते, लिखते हैं

1. [illegible] मेंग फिण्डल रचित 'एन्शियण्ट इंडिया' पृष्ठ १११-११२।
2. 'बुद्धिस्ट एण्ड क्रिश्चियन गोस्पल्स', पृष्ठ ४६।

किन्तु बुद्ध के बारे में ज्यादा नहीं, इसका संकेतक है कि वे हिन्दू ही थे।

"मित्र (सूर्य) पूजा बैक्ट्रिया से नॉर्थम्बरलैंड तक प्रचलित होने के अपने चिह्न छोड़ गई है (क्लेम० अलैक्स० टू दि ग्रीक्स कैप-५ बील, 'बुद्धिज्म इन चाइना, पृष्ठ १२८) और यदि बौद्ध-मत इसका आधा भी प्रचलित रहा होता, तो इसके अवशिष्ट चिह्न भी अवश्य रहे होते।"[1] हम उपर्युक्त प्रेक्षण से पूरी तरह सहमत हैं।

भ्रान्त पश्चिमी शिक्षण से उत्पन्न यह वर्तमान विश्वास गलत है कि प्राचीन विश्व के बहुत बड़े भाग में बौद्ध-मत फला-फूला था। सर्वप्रथम यह अनुभूति होनी चाहिए कि बौद्ध-मत कोई पृथक् धर्म नहीं है। बुद्ध स्वयं ही एक धर्मपरायण और विशिष्ट हिन्दू थे।

हिन्दू विधान के अन्तर्गत हर व्यक्ति को अपने जीवन के परवर्ती भाग (अर्थात् ५० वर्ष या उससे अधिक की आयु प्राप्त होने पर) को एक योगी या संन्यासी का जीवन व्यतीत करना होता है या सार्वजनिक सेवा में एकाकी जीवन भोगना होता है। बुद्ध ने यह कार्य थोड़ा जल्दी ही कर लिया था। केवल यही अन्तर था। उसने नियत, निश्चित समय से पूर्व ही लौकिक कार्यों का परित्याग कर दिया था।

चीन, जापान, थाईदेश, मंगोलिया, श्रीलंका, ब्रह्मदेश (बर्मा), कम्बोज (कम्बोडिया), लाओस और वियतनाम देश स्वयं को बौद्ध-देश कहने में गलती पर हैं। बुद्ध स्वयं भी चकित हो जाते और बौद्ध-मत को अपना मत मानने से इन्कार कर देते।

विश्व-भर में लेटी, विश्राम करती मुद्राओं वाली प्रतिमाएँ अपनी निरभ्र, स्वच्छ शान्ति धैर्य गँवा बैठेंगी और विक्षुब्ध होकर अपना मुख दूसरी ओर मोड़ लेंगी यदि उनको ठीक से बता दिया जाए कि विश्व-भर के लाखों-करोड़ों लोग उन्हें पूजा की वस्तु बनाकर स्वयं को गैर-हिन्दुओं में ही गिनते हैं।

तथाकथित बौद्ध-धर्म परवर्ती संज्ञा थी जो बाद में गलती से हिन्दू-धर्म पर मत्थी कर दी गई। प्राचीन हिन्दू-आचरण, पद्धतियाँ बुद्ध के नाम पर

1. 'बुद्धिस्ट एण्ड क्रिश्चियन गोस्पल्स', पृष्ठ ४६।

[illegible] जो उस समय का सर्वाधिक प्रसिद्ध हिन्दू
[illegible] ने भूल से उन लक्षणों, सिद्धान्तों, पद्धतियों
[illegible] शुभारम्भ किया हुआ मान लिया। इसलिए,
[illegible] बौद्ध-मत भी भ्रान्त धारणा पर आधारित है। वे
[illegible] हिन्दुत्व की ही शाखाएं हैं जिनका अपने मूल, मुख्य स्रोत से
[illegible] नष्ट हो जाना निश्चित, अवश्यम्भावी ही है।
[illegible] कहलानेवाले हर देश और हर व्यक्ति को मात्र हिन्दू ही समझना
चाहिए। बौद्ध-मत हिन्दू-धर्म का एक अंकुर ही है। इस प्रकार, आधुनिक
बौद्ध-मत प्राचीन हिन्दू-धर्म के प्रचलन, प्रचार-प्रसार का ही एक साक्ष्य है।

'यूनानी और लैटिन 'समनीअस' संस्कृत शब्द श्रमण है ' फिलिपीनो [illegible] की पुरानी वर्णमाला वाली भाषा में व्युत्पन्न है।"[1]

श्रमण वह व्यक्ति है जो स्वहित का त्याग कर देता है और अन्य लोगों के भले के लिए कार्य करता है। दृढ़ संकल्प, इच्छाशक्ति और त्यागी-बलिदानी भावना वाले व्यक्तियों के लिए हिन्दुत्व, हिन्दू-धर्म द्वारा प्रस्तुत [illegible] आदर्शों में से एक आदर्श यही था।

'मैथ्यू XI 5—अन्धों को अपनी दृष्टि प्राप्त हो जाती है, लँगड़े चलने लगते हैं, कोढ़ी रोगमुक्त हो स्वच्छ, शुद्ध हो जाते हैं, बहरे सुनने लगते हैं, मृतक पुनः जीवित हो उठ खड़े हो जाते हैं और निर्धनों को सुख का समय प्राप्त हो जाता है।' यह इस संस्कृत-पद का पूर्ण वाक्यांश है जिसमें धर्म-परायण हिन्दू भक्त ईश्वर का गुणगान करते हुए उसकी महिमा में कहते हैं कि वह गूँगे को भी [illegible] बुलवा सकता है और पंगु (लूले-लँगड़े) को भी पर्वत लाँघने की शक्ति दे सकता है।

"मूकम् करोति वाचालम्, पंगुम् लंघयते गिरिम्,
यत् कृपा तम् अहम् वन्दे, परमानन्द माधवम् ॥"

"[illegible] । ६ वह सर्वप्रथम जन्मे को जब फिर संसार में लाया, तब

---

१ 'बुद्धिस्ट एण्ड क्रिश्चियन गोस्पल्स', पृष्ठ ५१।
२ [illegible] पृष्ठ ८

उसने (यह भी) कहा "और ईश्वर के सभी दूत उसकी पूजा करें।"[१]

यह भी महान् हिन्दू नियामक (महाराजा) मनु के आदेश का लगभग पूर्ण वाक्यांश ही है सभी व्यक्तियों को इस भू-प्रदेश में सर्वप्रथम जन्म की जीवनियों का अनुसरण करना चाहिए।

"अस्मत् देश प्रसूतस्या साक्षात् अग्र-जन्मना:
स्वम् स्वम् चरित्रम् शिक्षेरण पृथिव्याम् सर्व मानवा ।"

बाइबल में प्रयुक्त 'प्रथम-जन्मे' (फर्स्ट-बॉर्न) शब्द भी संस्कृत शब्द "अग्र-जन्मना" अर्थात् ब्राह्मण का यथार्थ अनुवाद है।

उपर्युक्त उद्धरण सिद्ध करते हैं कि हिन्दू-धर्मग्रन्थ ही प्राचीन यूरोप के धार्मिक जीवन का आधार बने हुए थे। इसी के साथ, हम अब स्मरण करते हैं कि यूनानी और लैटिन भाषाएँ, उनके व्यक्तिवाचक नाम और उनके देवताओं के नाम, उनके नववर्ष दिन, उनके उत्सव-त्योहार, धार्मिक कृत्य, चिकित्सा-प्रणाली और सामान्य रूप में सभी प्रकार की विधाएँ हिन्दुओं से अति सूक्ष्म, अति समीपस्थ एकरूपता रखती हैं तब यह स्वीकार करने में कठिनाई नहीं होनी चाहिए कि प्राचीन विश्व हिन्दू-धर्म से ओतप्रोत था और संस्कृत भाषा बोलता-चालता था।

यूरोप का एक प्रमुख समाज और अरब-क्षेत्र का एक प्रबल अस्तित्व यहूदी-समुदाय स्वयं ही कृष्ण-कुल का है। "इस बात के अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं कि प्राचीन इस्रायली त्योहार कनान और बेबिलोनिया की पूर्ववर्ती पूर्वदेशीय संस्कृतियों से ही लिए गए हैं।"[२]

कनान कना (कन्हाई, कान्हा) अर्थात् भगवान् कृष्ण के प्रदेश का द्योतक है। काना (कना—कान्हा) नाम कृष्ण को उसके शिशुकाल में ही दिया गया था। बेबिलोनिया हिन्दू शब्द बाहुबलिनिया है जो एक प्राचीन पौराणिक हिन्दू सम्राट् बाहुबलि द्वारा शासित देश का परिचायक है।

'पास ओवर' उत्सव हिन्दुओं का प्राचीन बसन्तोत्सव है जिसे यहूदियों

---

१ 'बुद्धिस्ट एण्ड क्रिश्चियन गोस्पल्स', पृष्ठ १६४।
२. 'यहूदियों का सामाजिक और धार्मिक इतिहास', पृष्ठ ५, विटमेयर बैरन, १९६२ ई०।

ने बाद में जिस देश से अपने महाभिनिष्क्रमण, बाहर चले जाने की स्मृति में 'वियोग' या 'विछोह' दिवस के रूप में मनाना शुरू कर दिया।

पुरानी कहावत को मान्य करके सेमाइट लोगों को ईश्वरेच्छा के सम्मुख विवादयुक्त समर्पण की व्याख्या की गयी है। यहूदी लोगों के पुराने विधान का एक सुदृढ़ खण्ड माना जानेवाला एक अन्य कथन है : "स्वयं को शुद्ध पवित्र करो और फिर स्वयं पुण्य हो जाओ। मेरे नियमों को धारण करो और तब मैं वह भगवान् हूँ जो तुमको पवित्र करता है।" (लैव० २०. ७-८)

उपर्युक्त प्रबोधन स्पष्टतः 'भगवद्गीता' से भगवान् कृष्ण का कथन ही है। यहूदियों का प्राचीन विधान तथा अन्य धर्मग्रन्थ हिन्दू भागवतम्, हरिवंशपुराण और 'भगवद्गीता' से ही चुने-चिने, बनाए, रचे गए हैं। 'स्वयं को शुद्ध पवित्र करो'—भगवान् कृष्ण के उपदेश "उद्धरेत आत्मना आत्मानम्" का यथार्थ अनुवाद है।

"इस्रायल के लोगों और इसके क्षेत्र, दोनों के मूलोद्गम अभी भी अस्पष्ट, अज्ञात हैं"—सालो विटमेयर बैरन ने टिप्पणी की है।[1] जो भी कुछ अस्पष्टता आदि पहले रही हो, अब समाप्त हो जानी चाहिए। हमारे विभिन्न प्रकाशनों के माध्यम से प्रस्तुत किए जाने के लिए हमारे पास इस तथ्य के साक्ष्य प्रचुर मात्रा में हैं कि तथाकथित यहूदी लोग हिन्दुओं के यदु-वंश से सम्बन्धित हैं। उनके भगवान् प्रभु, स्वामी कृष्ण थे। महाभारत-युद्ध के पश्चात् भारत छोड़ने के बाद उन्होंने एक विशाल कृष्ण मन्दिर निर्मित किया और उसके चारों ओर एक नगरी स्थापित की यदु-ईश-आलयम् = यरु-ईश-आलयम् = जरु-ईश-आलयम् = जरूस्लम जो उनकी राजधानी हो गई। यहूदी इतिहास तो डेविड और सोलोमन व मोजेज से भी बहुत पूर्व की अथाह प्राचीनता का है। यह वह समाज था जब तथाकथित डम-अक्सा-मन्दिर और 'रॉक पर डोम' (शिखर पर गुम्मट, गुम्बद) कृष्ण मन्दिर थे। 'शिखर-गुम्मट' मन्दिर हिन्दू-पद्धति के अनुसार, अभी भी

१ 'यहूदियों का सामाजिक और धार्मिक इतिहास', पृष्ठ ३२, विटमेयर बैरन १९६८ ई०।

अष्ट-कोणात्मक है। मुस्लिम लोग इसे 'हरम/हराम/हरायम्' कहते हैं। मूल संस्कृत नाम है 'हरियम्' अर्थात् हरि या भगवान् कृष्ण का स्थान या देवालय। अन्य शब्द 'अक्सा' शब्द संस्कृत का 'अक्षय' शब्द है—अनवरत, सतत, 'न कम होनेवाले दिव्यांश' का विशेषण, विशिष्ट लक्षण।

ऐसे सभी ऐतिहासिक साक्ष्य इसी एकमेव निष्कर्ष की ओर इंगित करते हैं कि यहूदी राष्ट्र की मूल राजधानी जरूस्लम ही है। वर्तमान तेलअवीव तो केवल एक कामचलाऊ, अस्थायी राजधानी है। भगवान् कृष्ण से घृणा करनेवाले या उनमें अविश्वास करनेवाले किसी भी व्यक्ति को वहाँ रहने का कोई अधिकार नहीं है क्योंकि उक्त नगरी का अस्तित्व ही भगवान् कृष्ण से है।

यहूदी "ईश्वर कर्म का ईश्वर बन गया, एक ऐसा भगवान् जो मिस्र से अपने लोगों को बाहर निकाल ले गया और जो उनको रेगिस्तान से सुरक्षित रूप में निकाल ले जाने के कार्य में मार्गदर्शन करता रहा तथा वचन-अनुसार भू-प्रदेश पर जिसने अन्तिम विजय दिलवाई।"[1]

यह ईश्वर, भगवान् कृष्ण के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं था क्योंकि उन्होंने ही पाण्डवों के वनवास की १३वर्षीय अवधि में उनका मार्गदर्शन किया था। अन्त में भगवान् कृष्ण ने ही उन्हें प्रेरित किया कि वे अपने ऊपर अत्याचार करनेवालों का डटकर मुकाबला करें और उन्होंने ही एक भयंकर संग्राम 'महाभारत-युद्ध' के माध्यम से उनको विजय दिलायी थी। चूँकि इतिहास स्वयं को दोहराता है, भगवान् कृष्ण के लाड़ले यहूदी लोगों के समक्ष, हमारे अपने ही युग में, वैसी ही स्थिति फिर उपस्थित हो गई है।

"यूनानियों के मध्य अनाम पुनर्स्मरण-पद्धति के कारण ईलियड और ओडिसी महाकाव्य सवर्धित और विस्तृत, व्यापक होते गए।"[2] इसका कारण यह था कि पहले के युगों में हिन्दू होने के कारण यूनानवासियों का पीढ़ी-दर-पीढ़ी वेदों का गान करने का अभ्यास था।

१ 'यहूदियों का सामाजिक और धार्मिक इतिहास', पृष्ठ ४६, विटमेयर बैरन, १९६२ ई०।

२ विल डूरण्ट लिखित 'सभ्यता की कहानी', खण्ड II, पृष्ठ ६४१।

वह देवी है वर्ष के प्रारम्भ होने पर जिसकी पूजा-आराधना की जाती थी। २१ मार्च वह लगभग निकटतम समय है जब हिन्दू लोगों का अपना नववर्ष, नया संवत्सर आता है। इस प्रकार रोमन नववर्ष दिवस और प्राचुर्य आरम्भ करने के लिए माता देवी अन्नपूर्णा की पूजा करना वह पद्धति, प्रथा है जिसका उद्गम प्रारम्भ रोम की हिन्दू प्राचीनता, उसके हिन्दू विगत काल में है।

कृस्ती पंथ पूर्वकालिक हिन्दू-पद्धतियों, प्रथाओं को कपटपूर्ण कृस्ती मतों के अन्तर्गत चला रहा है। विल डूरण्ट ने कहा है "जब कृस्ती-पंथ ने रोम पर विजय प्राप्त कर ली तब गैर-ईसाई, गैर-यहूदी गिरजाघर की विशिष्ट शिक्षा प्रधान पुरोहित वर्गों की उपाधियाँ और परिधान—वेश-भूषा, महा माता देवी और कृपादायिनी दिव्य विभूतियों—अनेक देवियों की पूजा, अतीन्द्रियों की सर्वत्र विद्यमानता की भावना, प्राचीन उत्सवों, त्योहारों की उमंग या गम्भीरता और अविस्मरणीय रीति-रिवाजों की धूमधाम व हर्षोल्लास मातृ-रक्त की भाँति नये धर्म में फैल गयी, पराजित होने वाले रोम ने अपने विजेता को जीत लिया।"

हम पहले ही चर्चा कर चुके हैं कि कृस्ती रीति-रिवाज और शब्दावली किस प्रकार संस्कृत हिन्दू-मूल की है। ग्रेट मदर (महान् माता) को भारत में 'मेरी अम्मा' भी कहते हैं। माँ, माता के लिए संस्कृत शब्द 'अम्बा' है। आधुनिक भारतीय बोलियों में 'अम्बा' का उच्चारण अम्मा किया जाता है। उनका नाम मेरी है। अतः 'मेरी अम्मा' का अर्थ 'माँ मेरी' है। जीसस-कथा में उनकी माँ का नाम 'मेरी' बताया गया है मात्र इसी कारण कि हिन्दू देवी 'मेरी अम्मा' अर्थात् माँ मेरी की पूजा जरुसलम, रोम और कॉरिन्थ में हुआ करती थी।

रोम नगरी की स्थापना के सम्बन्ध में यह कहा गया है "पाँचवीं शताब्दी के यूनानियों ने अपने रीति-रिवाज के अनुसार अपने मूल पुरुष रोमोस रामस का रोम के संस्थापक के नाते आविष्कार कर लिया जबकि इटली में रोमुलुस (रामुलु) नाम प्रचलित था। जब यूनानियों ने रोमुलुस का नाम सुना तब उन्हें मालूम पड़ा कि एक नगरी के दो संस्थापकों से उन्हें व्यवहार करना है और उन्होंने दो मुख्य लोगों की कथाओं का स्मरण

व उन पर विचार करते हुए, यह सम्बन्ध रोमुलुस और रोमोस पर पक्का सिद्ध कर दिया।"[1] रोम की स्थापना रोमोस-रोमुलुस द्वारा किए जाने-वाली बारम्बार दोहरायी कथा, इस प्रकार मनगढ़न्त कथा का एक स्पष्ट मामला है।

उपर्युक्त उद्धरण ने यूनानियों और रोमनों तथा स्वयं यूरोपियनों की अपने ही स्वयं के इतिहास के बारे में पूर्ण अविश्वसनीयता के प्रति सभी पाठकों को सचेत, सावधान कर देना चाहिए। उनके सम्पूर्ण इतिहास की कुंजी संस्कृत, हिन्दू परम्पराओं में उपलब्ध हो जाती है। पाँचवीं शताब्दी में रोमोस को रोम-स्थापना का यूनानी श्रेय, यश देना वास्तव में बहुत बाद की बात है। रोम का तो अति प्राचीन इतिहास है। उसकी स्थापना पौराणिक हिन्दू सम्राट् राम के नाम पर हुई है। संस्कृत भाषा में राम को प्रायः रामस् सम्बोधित किया जाता है। इसकी यूनानी वर्तनी रोमोस यूनानी प्रथा, पद्धति के कारण हो सकती है। रोमन रूप रोमुलुस का समानान्तर रूप भारत में भी उपलब्ध हो जाता है। भारत के आंध्र क्षेत्र में राम को रामुलु कहा जाता है। साथ ही, प्राचीन काल में इतालवी लोगों में आम प्रथा थी कि वे अपने घरों को राम और रामायण कथा के प्रसंगों की रेखाओं, भित्ति-चित्रों से प्रायः सजाया करते थे। इस सब साक्ष्य से पाठक को विश्वास हो जाना चाहिए कि विद्यालयी पाठ्य-पुस्तकों से लेकर कोश (ज्ञान)-कारों तक के विभिन्न स्तरीय लेखकों के समूह, जो एक मादा भेड़िया द्वारा स्तन-पान कराए गए दो भाइयों रेमस और रोमुलुस द्वारा रोम नगरी की स्थापना करने की कहानी तोता-रटन्त जैसे दोहराए जाते हैं वे, स्वयं अज्ञानी हैं और विश्व-भर को भ्रम में डाल रहे हैं। रोम अर्थात् रामा नगरी की रोमोस अर्थात् रामस् द्वारा स्थापना की यूनानी स्मृति और परम्परा इस बात का प्रबल प्रमाण है कि हिन्दू अवतार राम ने उस विशाल क्षेत्र पर राज्य-शासन किया था जिसे आजकल यूरोप, अरेबिया और अफ्रीका नाम से जाना जाता है।

पाठक इस बात से सहज ही कल्पना कर सकते हैं कि जब वे लोग अपने

---

१. मैथ्यून : 'यूनानी और रोमन विश्व का इतिहास', पृष्ठ २७।

ही भूगोलवृत्त के सम्बन्ध में ऐसी त्रुटियाँ करते हैं तो उन्हीं पश्चिमी विद्वानों की लिखी और स्थायी रूप से जारी, प्रचारित कर दी गयी विश्व-इतिहास की पुस्तकें कितनी अधिक निपट भ्रामक और भयंकर भूलोंवाली होंगी ही।

तीन खण्डीय 'स्ट्रैबो का भूगोल' ग्रन्थ में विवेकी निष्पक्ष पाठक के लिए इस तथ्य के पर्याप्त प्रमाण मिल जाएँगे कि प्राचीन विश्व के बड़े भागों में हिन्दू सभ्यता का ही प्रचलन था।

स्ट्रैबो के प्रथम खण्ड में 'ईशस की खाड़ी' का उल्लेख करते हुए पृष्ठ १०५ पर दी गयी पाद-टीप में यह भी अंकित है कि भूमध्य सागर के पूर्वी सीमान्त पर स्थित नगरी का नाम 'ईशस' से बदलकर 'एइआस' कर दिया गया है।

संस्कृत में ईशस का अर्थ 'ईश्वर' है। यही वह शब्द है जिसका उच्चारण 'जीसस' वैसे ही किया जाने लगा जैसे महेश को मोजेज बोलने लग गए। ऐसे नाम हिन्दुओं द्वारा प्राचीन विश्व में सर्वत्र उपनिवेश बना लेने या बसने का ज्ञान के सार्थक, परिचायक हैं।

स्ट्रैबो ने स्पेन की बन्दरगाह 'केडिज' की वर्तनी 'गेडेस' की थी। उसमें खम्भोंवाला हरकुलिस का एक मन्दिर था।[1] चूँकि हरि-कुल-ईश का नाम भगवान् कृष्ण का नाम है इसलिए स्पेन एक हिन्दू देश था जहाँ अन्य हिन्दू देवताओं के साथ-साथ भगवान् कृष्ण की पूजा होती थी।

वे स्तम्भ, खम्भे इतने प्रमुख, प्रसिद्ध थे कि उनको एक विशिष्ट पृ-प्रदत्त उल्लेखनीय स्थान-चिह्न के रूप में नाविक लोग दूर से ही देख, पहचान लेते थे, इसलिए मन्दिर को प्राय 'खम्भों' शब्द से स्मरण कर लिया जाता था (अर्थात् खम्भोंवाला मन्दिर कह दिया करते थे)। उक्त अन्तरीप को पवित्र अन्तरीप कहा करते थे, क्योंकि यहाँ पर हिन्दू देवताओं के मन्दिरों की संख्या बहुत अधिक सख्या थी।

यूनानी महाकाव्य 'ओडिसी' के निम्नलिखित अवतरण में राधामनयस (राधामनस्य) का सन्दर्भ है जो फिर भगवान् कृष्ण का नाम है जिसका अर्थ है वह प्रभु, भगवान् जो राधा के हृदय-मन में निवास करता है।

---

1. स्ट्रैबो का भूगोल, खण्ड I, पृष्ठ २५१।

"अब इससे आगे देवता लोग तुम्हें इलीसियम के सम्मुख नतमस्तक कर देंगे और पृथ्वी की दूरस्थ सीमाओं तक पहुँचा देंगे, जहाँ राधामनयस (राधामनस्य) का निवास है।"

हेरोडोटस ने एक सम्राट् अरगनथोनियस का उल्लेख किया है जिसने ८० वर्ष तक राज्य किया और जिसने १२० वर्ष की आयु में अपना देह-त्याग किया था। सीइरो, वेलेरियस, मैक्सीमस और प्लीनी भी इस बात का उल्लेख करते हैं।

अरगनथोनियस नाम संस्कृत का यौगिक शब्द अर्जुन-चेतन-ईश अर्थात् अर्जुन का प्रभु, स्वामी, भगवान् है। उक्त भगवान् का उल्लेखित जीवनकाल भी कृष्ण का जीवन-खण्ड ही है। अत: नाम और जीवन काल-खण्ड, दोनों से स्पष्ट है कि अरगनथोनियस का अर्थ भगवान् कृष्ण ही था।

गोस्सेलिन के अनुसार शनिदेव का मन्दिर सेंट सिबस्तीयन के वर्तमान गिरजाघर के स्थान पर (बना हुआ) था और हरकुलिस का मन्दिर द्वीप के दूसरे छोर पर (केडिज के निकट) सेंट पेट्रास के स्थल पर (निर्मित) था।[1]

'सिबस्तीयन' शब्द संस्कृत शब्द 'शिव-स्थान' अर्थात् शिव-देवालय का कृस्ती-अपभ्रंश है। पूर्वकालिक हिन्दू-सभ्यता को समूल नष्ट कर देने की अपनी अनुचित, अशोभनीय, मूर्तिभंजक त्वरा (जल्दी, हड़बड़ाहट) व क्रोधाग्नि में कृस्ती-पंथियों और मुस्लिमों, दोनों ने ही किसी भी (हर) हिन्दू मन्दिर पर बलात् कब्जा करके उसमें ध्वन्यात्मक परिवर्तन, जोड़-तोड़ कर दिए कि उसका नाम उनकी भाषा बोली में सही प्रतीत होने लग जाए।

फ्रांस में टोलूज की नगरी में (हिन्दू देवता का) एक पुण्य, पवित्र मन्दिर था जो निकटवर्ती चतुर्दिक क्षेत्रों में अत्यन्त श्रद्धा का केन्द्र था और उस कारण समृद्धियों का विशाल भण्डार था तथा किसी को भी उसे छू सकने का साहस नहीं होता था।

प्राचीन यूरोप में कई मन्दिरों में एक प्राचीन हिन्दू देवी प्रतिष्ठित थी जिसकी वर्तनी यूनानी लोग अरिष्टारचा (अरिष्टारका) करते थे। शुद्ध संस्कृत भाषा में इसका अर्थ होगा अरिष्ट, अनिष्ट, विनाश से भक्त या

---

1. स्ट्रैबो का भूगोल, खण्ड I, पृष्ठ २५३।

जनता को बचाने, उद्धार करने वाली 'अरिष्ट-तारका' देवी। वही नाम बाद में 'कोस्टास' के रूप में उच्चारण किया जाने लगा जिससे कृस्तो जुगत 'क्रिस्टर' (की कलाबाजी) शुरू हो गयी।

ऊपर उद्धृत केवल कुछ सांकेतिक अवतरण, सार-उदाहरण ही हैं। कृस्ती-पूर्व विश्व पर प्रकाशित साहित्य में इस तथ्य के पर्याप्त प्रचुर मात्रा में साक्ष्य सन्निहित हैं कि संस्कृत भाषा और हिन्दू-संस्कृति ही अति दीर्घ काल तक विश्व पर अपना प्रभुत्व रखनेवालों में प्रथम थे।

पश्चिमी विद्वान् व्यापक रूप में इधर-उधर बिखरे पड़े साक्ष्य के विशाल भण्डार से कोई सकारात्मक और सारगर्भित निष्कर्ष निकालने में अक्षम, विफल रहे हैं क्योंकि कृस्ती-पंथ की शिक्षण-पद्धति ने उनको प्रत्येक कृस्ती-पूर्व वस्तु के प्रति इतना ईर्ष्यालु, हठी, द्वेषी, दुराग्रही बना दिया है कि वे उन्हें देखते ही अति प्राचीन नहीं, ज्यादा ध्यान देने योग्य नहीं और स्वेज के पश्चिम में कहीं भी प्रवेश के अक्षम, लायक नहीं कहकर उसका निषेध कर देते हैं। राजकीय आडम्बर और कृस्ती-धर्मान्ध द्वारा उत्प्रेरित ऐसी मौलिक कट्टरपन्थिता ने पश्चिमी विद्वानों के बड़े वर्ग की रचनाओं को दूषित, भ्रष्ट कर दिया है।

अध्याय २०

पश्चिम में कृष्ण के चित्र

यूरोप और पश्चिम एशिया में हिन्दू देवी-देवताओं के चित्र समय-समय पर यूरोपीय विद्वानों को मिले हैं किन्तु उन लोगों ने उन चित्रों से कुछ शिक्षा ग्रहण करने से अथवा उनसे कोई निष्कर्ष निकालने से साफ मना कर दिया है।

हिन्दू देवी-देवताओं की ऐसी असंख्य मूर्तियाँ और प्रतिमाएँ अवश्य ही होंगी जो विश्व-भर के तथाकथित गिरजाघरों और मस्जिदों के फर्शों, उनकी कोठरियों, गुप्त तहखानों, दीवारों या छतों में दबी हुई पड़ी होंगी। धर्मान्ध मूर्तिभंजन और दमन से बची हुई ऐसी ही कुछ मूर्तियाँ संग्रहालयों में सुरक्षित रखी हुई हैं और उन्हीं के चित्र शोध-प्रकाशनों में पुनः-पुनः छपते रहते हैं। वे पच्चीकारी, भित्ति-चित्रों, आकृति-चित्रण, या मूर्तियों और प्रतिमाओं के रूप में विद्यमान हैं।

इस अध्याय में हम चार नमूने प्रस्तुत कर रहे हैं जिससे हमारे पाठक सावधान, सचेत होकर सभी पुस्तकों, सार्वजनिक संग्रहालयों, या निजी संग्रहों-संकलनों में ऐसे दृष्टान्त देखें और उनके (अपनी उपलब्धियों के) छायाचित्रों को लेखक के पास भेज सकें।

इन चित्रों पर क्रमांक अंकित हैं। पहला चित्र एक पच्चीकारी है जो यूनानी भूखण्ड में एथेन्स से ६० मील की दूरी पर स्थित कोरिन्थ में सार्वजनिक संग्रहालय में प्रदर्शित किया गया है। स्पष्ट रूप से यह कृष्ण का चित्र है जिसमें वे बाँसुरी बजा रहे और गौओं को चरा रहे हैं। फिर भी, इसे मूर्खता (या धूर्ततावश), निरर्थक ही 'पशुचारी-दृश्य' शीर्षक दिया गया है। यूरोपीय विद्वानों को प्रशिक्षित किया गया है कि वे ऐसे चित्रों को किसी गुमनाम मासूमी पीटर पैन (पान) के चित्र कहकर तिरस्कृत, अमान्य कर

है। उनके ऐसे संकीर्ण दृष्टिकोण ने विश्व-ज्ञान को घोर क्षति पहुँचायी है।
पीढ़ियों को गलत जानकारी दी गयी और उन्हें भ्रमित, मार्गभ्रष्ट किया
गया है।

एक वृक्ष के नीचे खड़े होना, तिरछे पाँव खड़े होने की मुद्रा, समस्तर
पड़ी बाँसुरी अतिरिक्त कटि-वस्त्र और चरती हुई गौएँ—सभी वस्तुएँ
भगवान कृष्ण से विशेष रूप में जुड़ी हुई हैं। यह पच्चीकारी चित्र यूनान
(रोम) में मिल ही नहीं सकता था जब तक कि यूनानियों द्वारा कृष्ण की
पूजा-प्रशंसा विश्वव्यापी रूप में न की जाती रही हो।

यहाँ उद्धृत किए जा रहे चित्र हिन्दुस्तान का इतिहास, इसकी कलाएँ
और विज्ञान ('ए हिस्ट्री ऑफ हिन्दोस्तान इट्स आर्ट्स एण्ड साइन्सेज')
नामक ग्रन्थ से लिए गए हैं।

यद्यपि इन चित्रोंवाली पुस्तक के लेखक ने इनका कोई स्रोत या स्थान
उल्लेख नहीं किया है तथापि स्पष्ट है कि ये चित्र किन्हीं सार्वजनिक
संग्रहालय जिसे संकलन या यूरोप के ही प्रकाशनों में लिए गए हैं।

चित्र क्रमांक ३ में कृष्ण को एक नाग (सर्प) की कुंडलियों में लिपटा
हुआ दिखाया गया है। यह चित्र यूरोप के ही किसी क्षेत्र से सम्बन्धित है।
यह चित्र भारतीय नहीं हो सकता क्योंकि कोई भी हिन्दू व्यक्ति भगवान्
कृष्ण को नागराज के चंगुल में फँसे एक असहाय पैदल यात्री के रूप में
निरूपित चित्रित नहीं कर सकता।

यह चित्र उस सन्दर्भ को प्रदर्शित करता है जब बाल्यावस्था में जमुना
जलधारा के तट पर कन्दुक (गेंद), खेलते हुए बालसखाओं के साथ, कृष्ण
गेंद का पीछा करते-करते गहरी जलधारा के निकट पहुँच गए। वे गेंद
निकालने के लिए ज्यों ही जल में कूदे उन्हें सात फनवाले भयंकर नाग का
सामना करना पड़ा। दुर्धर्ष, विशालकाय सर्प ने पहले तो कृष्ण को अपने
कुंडल में फाँस ही लिया था। चित्र में यही भाव दर्शाया गया है।

चित्र क्रमांक ३ भी उपर्युक्त ग्रन्थ से ही है। यह भी भारत से संगृहीत
नहीं हो सकता। कुंडलियों से मुक्ति प्राप्त कर लेने के बाद कृष्ण उक्त नाग
का अंग-भंग कर रहे हैं। इनके सिर पर रोमन-मुकुट की ओर ध्यान
दें जिसके ऊपर और मयूर-पंख लटक रहे हैं। यदि यह भारत से लिया गया

हिन्दू चित्रण होता, तो इसमें कम आयुवाले बाल कृष्ण को भारतीय मुकुट
और उस पर ऊपर मात्र एक मोर-पंख की कलगी धारण किए सात फन-
वाले सर्पराज के सिर (छत्र) पर (विजयोपरान्त) विजयी मुद्रा में प्रसन्नता-
पूर्वक नर्तन करते हुए दिखाया गया होता।

चित्र क्रमांक ४ यथार्थ रूप में कृष्ण का चित्र न होकर भगवान् विष्णु
के एक अन्य अवतार का है। पीछे फटते हुए खम्भे का आकार, निर्माण
बतलाता है कि यह रोमन या यूनानी चित्रण है।

अतः यह तथ्य हमारी उस धारणा को भी पुष्ट करता है कि केवल
कृष्ण ही नहीं, अपितु पूर्ण हिन्दू देव-कुल ही कृस्तो-पूर्व विश्व में पूजित था,
उनका पूजन-आराधन होता था।

चित्र के दायें भाग में शुरू में ही किशोर प्रह्लाद हाथ जोड़कर भगवान्
विष्णु की प्रार्थना कर रहा है जो पीछे खम्भे से चमत्कारिक रूप में नृसिंह
अर्थात् आधे नर व आधे सिंह का शरीर धारण करके प्रकट हुए थे और
प्रह्लाद के आततायी, ईश्वर-विरोधी पिता, हिरण्यकश्यप का पेट फाड़कर
उसका वध कर दिया था।

एथेन्स में ब्रिटिश और अमरीकी, दोनों ने ही अपनी-अपनी पुरातत्त्व-
शाखाएँ यूनान का ऐतिहासिक विगत-काल पता करने के लिए खुदाई करने
हेतु स्थापित कर रखी हैं। उनकी खुदाइयाँ इस तथ्य की निपट अज्ञानावस्था
में की जाती हैं कि वे जो भी कुछ उत्खनन में प्राप्त करते हैं वे सभी हिन्दू
देव-देवियाँ ही हैं जिनकी उपयुक्तता, सार्थकता और परस्पर सम्बन्ध केवल
हिन्दू जनश्रुति के सन्दर्भ में ही जाने जा सकते हैं और यह कार्य भी मात्र
किसी हिन्दू पौराणिकत्व-विशेषज्ञ की सहायता से ही किया जा सकता है।
ब्रिटिश और अमरीकी-दलों, दोनों में ही, एक भी ऐसा हिन्दू विशेषज्ञ
सम्मिलित किया मालूम नहीं पड़ता। उनकी धारणा कदाचित् यह मालूम
पड़ती है कि यूनान में उत्खनन करते समय किसी हिन्दू पौराणिक-विशेषज्ञ
की आवश्यकता नहीं है। यदि उनका यही दृष्टिकोण है तो यह अति भ्रान्त
धारणा, विचार है। प्राचीन इतिहास में रुचि रखनेवाले सभी लोगों को यह
अवश्य जान लेना चाहिए कि यूनानी और रोमन व परिणामस्वरूप सम्पूर्ण
यूरोप की पौराणिकता व देव-पूजा-पद्धति ही हिन्दू (पद्धति) है। यदि उनको

उपस्थित हो रही है तो उसका हिन्दू रूप में पहचानने में कोई कुछ कठिनाई उपस्थित हो रही है तो उसका कारण वे विकृतियाँ हैं जो हिन्दू राज्य-शासन समाप्त हो जाने और यूरोप से शिक्षा का प्रचार होने तक बीच में व्यतीत हुई शताब्दियों की अवधि में प्रविष्ट हो गयी। एक अन्य बात यह भी हो सकती है कि ब्रिटिश और अमरीकी हम यह सोच रहे हों कि उन्हीं में से एक श्वेत, कुन्ती-सदस्यों को ही पूर्ण रूप से सारी जानकारी दे दी जाए जिससे वह हिन्दू पौराणिकता का परामर्शदाता सलाहकार, मार्गदर्शक या व्याख्याकार का काम कर सके। ज्ञान-निपुणता विशेषज्ञता में ऐसा विश्वास पश्चिम में इतनी दृढ़, पक्की गहरे जमा चुका मालूम पड़ता है कि मैक्समूलर, मैकाले, सर विलियम जोन्स ह्यूमर और कोलब्रुक के दिनों से ही यूरोपियन और अमरीकी विद्वानों ने हिन्दू-धर्म हिन्दुत्व के नाम पर कुछ भी कहने, लिखने का एकाधिकार अपने पास ही सुरक्षित होने का दम्भ कर लिया है। यह तो हिन्दू-धर्म का खुल्लमखुल्ला निरादर, अपमान है जिसे कभी भी सहन नहीं किया जा सकता। अपने साम्राज्यवादी शैक्षणिक एकाकीवाद और ऊँची इमारतों की गुम्बदों की धृष्टता में ये तथाकथित पश्चिमी विद्वान् उस कर्म के अपराधी हैं जिसे शब्दों में कहें तो शैक्षणिक अत्याचार कहा जा सकता है।

उनके शैक्षणिक अविवेकी निष्कर्षों, कार्यों की गणना सूचीबद्ध करें तो पूरी ग्रन्थमाला न सही एक बृहद् ग्रन्थ तो अवश्य तैयार हो ही जाए। यह कोई अतिशयोक्ति बढ़ा-चढ़ाकर कही गयी बात नहीं है। उदाहरण के लिए जनरल कनिंघम ने जिसने भारतीय पुरातत्त्व-सर्वेक्षण विभाग के बहु-खण्डीय प्रतिवेदन प्रकाशित किए हैं, भारत के ऐतिहासिक उद्यानों, भवनों और नगरों को इस्लामी आक्रमणकारियों और विध्वंसकों द्वारा निर्मित बताकर भयंकर भूल की है। परिणामस्वरूप सभी पश्चिमी विद्वानों ने भी, जो सारे विश्व में पुरातत्त्व शिल्पकला, इतिहास या संग्रहालय-शास्त्र का शिक्षण करते रहे हैं भयंकर भूल करनेवाले ग्रन्थ, झूठे नक्शे, पाखण्डी विवरणों की शृंखला ही तैयार कर दी है। वे भी नाना-रटन्त कर रहे हैं और सम्पूर्ण शैक्षणिक विश्व को हिन्दू शिल्पकला को इस्लामी शिल्पकला का विश्वास दिलाकर और वैसी ही व्याख्या करके सारे शिक्षा-जगत् को भी

सदूषित, विकृत, भ्रष्ट कर रहे हैं। अतः पर्सी ब्राउन और फर्ग्युसन जैसे लेखकों ने तथाकथित इसलामी शिल्पकला के बारे में जो भी कुछ लिखा है वह पूरी तरह गलत, भ्रामक और निराधार है।

हिन्दू-सम्बन्धी विषयों में विशेषज्ञों के रूप में अपनी सक्षमताओं, योग्यताओं के बारे में पश्चिमी विद्वानों के आत्म-घोषित, अनुचित विश्वास का एक अन्य उदाहरण अमरीकी नगर में एक राष्ट्रीय संग्रहालय का भ्रमण करनेवाले मित्र ने दिया। जब भारतीय पर्यटक ने अष्ट-भुजा हिन्दू देवी को देखा जिसके खुले बाल पीठ पर फैले, बिखरे हुए थे, तब उसने संग्रहालय-पालक से पूछा कि यह कौन, क्या है। पश्चिमी पालक का उत्तर था कि यह बुद्ध था।

सम्पूर्ण विद्वत् समाज को ऐसे तथाकथित पश्चिमी विशेषज्ञों को तिरस्कृत, अमान्य और अस्वीकार कर देना चाहिए जो हिन्दू कला और संस्कृति पर अपनी चौधराहट, पण्डिताई, विद्वत्ता बघारते हैं। उन लोगों ने सारे संसार में बेहूदी, बे-बुनियाद धारणाएँ प्रचारित करके हिन्दुओं को बदनाम किया है जैसे वैदिक युग के हिन्दुओं को लिखने की कला का ज्ञान नहीं था या हिन्दुओं ने जब कभी विश्व का उल्लेख किया तब उनका आशय केवल भारत से ही होता था। दुर्भाग्यवश अपने पश्चिमी गुरुओं से शिक्षित हिन्दू लोग भी पिछलग्गू भेड़-बकरियों के समान कातर भाव से और तोते जैसे मशीनी, यांत्रिक रूप से उन्हीं मूढ़तापूर्ण, आत्म-निन्दक धारणाओं को दोहराए जाते हैं।

हिन्दू लोग तो, अ-विस्मरणीय विगत युगों में सम्पूर्ण विश्व को प्राथमिक स्तर से अन्तर-ग्रहों की यात्राओं तक की शिक्षा देनेवालों में सर्व-प्रथम व्यक्ति थे। ऐसे लोगों को लेखन-कला का ज्ञान नहीं होना—कहने की बात तो निकृष्ट मिथ्यापवाद की कल्पनातीत सीमा है। प्रसंगवश, ऐसा मिथ्यापवाद इसके आविष्कारकों और प्रचारकों की बौद्धिक क्षमताओं और प्रामाणिकता, ईमानदारी पर तीव्र, सनसनीदार प्रकाश भी डालता है।

परिणामतः एथेन्स में पुरातत्त्व की अमरीकी और ब्रिटिश शाखाएँ अपना समय, प्रयास और धन व्यर्थ ही गँवा रही हैं यदि वे हिन्दू विद्या, जनश्रुतियों में हिन्दू विशेषज्ञों का परामर्श, मार्गदर्शन प्राप्त नहीं कर रही

है। किन्तु यदि उनका पुरातात्त्विक कार्यकलाप किसी अन्य गर्हित, निहित, स्वार्थमय प्रयोजन से चल रहा है तब तो एक हिन्दू पौराणिकता-विशेषज्ञ की अनुपस्थिति समझ है, समझ में आ सकती है।

कोरिन्थ में अमरीकी उत्खननों के प्रकाशनों की रिपोर्ट (प्रतिवेदन) में अन्य बातों के अतिरिक्त देवताओं की माता (अर्थात् अदिति) और भयानक देवी (अर्थात् देवी कालिका उपनाम काली) की प्रतिमाओं की उपलब्धियों का भी उल्लेख है। ये हिन्दू देवियाँ हैं और फिर भी एथेन्स स्थित अमरीकी पुरातत्त्व शाखा इस प्रतिमा-द्वय की ऐसी पहचान करने में विफल रहती है। तथ्य रूप में तो यदि उन्होंने यह अनुभूति कर ली होती तो भारतीय और यूनानी इतिहासों के संगम-स्थल की महत्त्वपूर्ण खोज कर लेने के एक सार्थक, अधिक महान् और पूरक प्रयास से उनकी यश-गरिमा अत्युच्च, अति भव्य हो गयी होती। उन्होंने वह स्वर्णिम अवसर गँवा दिया, खो दिया यद्यपि एडवर्ड पोकोक की पुस्तक 'इण्डिया इन ग्रीस' (यूनान में भारत) पहले ही पथ-प्रदर्शन कर चुकी थी।

कोरिन्थ संग्रहालय में सार्वजनिक रूप में प्रदर्शित पच्चीकारी में कृष्ण का चित्र यूरोपीय विद्वानों को दशकों से ज्ञात है, फिर भी उनमें से एक ने भी इस कृष्ण के रूप में कभी नहीं पहचाना। एक वायुयान चालक, जिसने मेरी पुस्तकें पढ़ी थीं और जो छुट्टी पर कोरिन्थ जा पहुँचा, इस आकृति को कृष्ण के रूप में पहचान गया और मेरे लिए एक चित्र भी वहीं से लेता आया। यह प्रदर्शित करता है कि यदि व्यक्ति में सूक्ष्म दृष्टि नहीं है तो सामने दृश्यमान साक्ष्य की भी उपेक्षा हो जानी सम्भव है। वायुयान चालक ने प्राचीन हिन्दू विश्व साम्राज्य के सम्बन्ध में मेरी मान्यता के अध्ययन के माध्यम से प्राप्त सूक्ष्म दृष्टि के द्वारा ही सुदूर कोरिन्थ में भी कृष्ण को पहचान लिया। इसी प्रकार जब उघारे, फ्रेंच लोगों के शरीर पर पवित्र हिन्दू चन्दन-लेपन युक्त शोध-चित्रों का मैंने सार्वजनिक रूप से प्रदर्शित किया तब कांगड़ा से होकर आनेवाले पर्यटकों ने मुझे बतलाया कि ऐसे चित्रों को वे काफी संख्या में कांगड़ा-संग्रहालय में देख चुके थे। यह सिद्ध करता है कि यदि व्यक्तियों में सूक्ष्म (अन्तर) दृष्टि का अभाव है तो साक्ष्य को अपने पास पाकर भी वे उसका महत्त्व गँवा देते हैं।

अध्याय २१

वैटिकन (वाटिका) नगरी

चूँकि कृस्ती-पंथ कृष्ण-नीति है, इसलिए यह भी स्वतः स्पष्ट है कि ईसाई जगत् की धार्मिक सत्ता के प्रधान केन्द्र वैटिकन को भी एक हिन्दू धार्मिक केन्द्र ही होना चाहिए था।

यदि किसी विद्वान् या संगठन, संस्थान ने वैटिकन के कृस्ती-पूर्व इतिहास पर शोध-कार्य किया है, तो हमें प्रसन्नता ही होगी। यदि अभी तक ऐसा नहीं किया गया है, तो अब भी ऐसा शोध-अध्ययन अति महत्त्वपूर्ण और आकर्षक, सम्मोहक होगा।

यह तथ्य तो हर व्यक्ति को स्पष्ट समझ में आ जाना चाहिए कि जब रोमन सम्राट् को स्वयं कृस्ती-पंथ में धर्म-परिवर्तित कर दिया गया तो उसने भी उसी क्रम में वैटिकन स्थित अपने हिन्दू पुरोहित को विवश कर दिया कि वह भी नव-स्थापित कृस्ती-आस्था, विश्वास, धर्म के अनुरूप लक्षित होने के लिए अपनी कार्यशैली और आध्यात्मिक अनुकम्पा प्रदान करने की पद्धति बदल ले।

स्वयं वैटिकन (वाटिकन) नाम पर विचार करें। यह संस्कृत मूल का शब्द है। संस्कृत भाषा में, वाटिका का अर्थ लतामंडप, कुञ्ज-निकुंज या वन-संकुल होता है। इसलिए, हिन्दू धार्मिक केन्द्र या एकान्तवासी, तपस्वी का तपोवन आश्रम-वाटिका, धर्म-वाटिका या आनन्द-वाटिका जैसे नामों से पुकारे जाते थे। रोम में वाटिकन भी एक ऐसा ही स्थान था।

यह निष्कर्ष इस तथ्य से संवर्धित, पुष्ट होता है कि रोम महान् हिन्दू अवतार भगवान् राम के नाम से ही स्थापित है। परम शत्रु रावण जिसे भगवान् राम ने पराभूत किया था, के नाम पर भी इटली में एक नगर है रावेन्ना (रावण)।

इससे ऐसा प्रतीत होता है कि क्रिस्ती-पूर्व युगों में, वाटिका एक ऐसा हिन्दू धार्मिक केन्द्र था जहाँ हिन्दू देवकुल के राम, कृष्ण, शिव और अन्य देवता प्रतिष्ठित थे तथा उनकी पूजा-अर्चना होती थी।

इसका समर्थन पुरातात्त्विक उपलब्ध वस्तुओं से भी होता है। वाटिकन से खुदाई में प्राप्त एक हिन्दू शिवलिंग वहीं एट्रस्कन संग्रहालय में दर्शनार्थ रखा हुआ है। इस प्रकार की अधिक जानकारी एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका (ब्रिटिश ज्ञानकोश) के खण्ड ८ में 'एट्रुरिया और एट्रस्कन' शीर्षकों के अन्तर्गत मिल सकती है।

प्राचीन इटली 'एट्रुरिया' के नाम से जाना जाता था। यह हिन्दू ऋषि एटरी उपनाम अत्रि के नाम पर रखा गया था जो अविस्मरणीय भूतकाल में धार्मिक, चिकित्सीय, शैक्षिक, सामाजिक और धर्मार्थ कार्यों का रोम में प्रबन्ध, देखभाल किया करते थे।

यूरोपीय विद्वानों को एक ऐसे अन्तिम ज्ञान-बिन्दु पर पहुँच जाने का बहाना, बाधक करने की छलना प्राप्त है जहाँ अन्य ज्ञान-खोज उनकी परेशानी का कारण बन जाता है। एट्रस्कन सभ्यता एक ऐसा ही बिन्दु है। सर्वांगपूर्ण रूप से अभी तक असंग्रहीत चित्रों, मूर्तियों-प्रतिमाओं, भाषा, धार्मिक रीति-रिवाजों तथा साक्ष्य की ऐसी ही प्रत्येक अन्य वस्तु से यही निष्कर्ष निकलता है कि वे भारत के हिन्दू ही थे।[1] अतः इसे वहीं मँझधार, बीच में छोड़ दिया गया था।

यूरोपीय क्रिस्ती विद्वान् या उनके धन-पोषक और प्रायोजक उस बिन्दु से आगे जाने में किसी प्रकार की लेशमात्र इच्छुक नहीं थे। क्रिस्ती और इस्लामी धर्मान्धों व हिंसावादियों दोनों ने ही उस शोध की दिशाओं, निदेशों की उपेक्षा की है, उनका गला घोंटा है या उनका पूर्ण रूप में दमन किया है जो उनके धार्मिक अहम् को बढ़ा न पाया, उसके अनुकूल न था।

विल डूरण्ट कहते हैं, "एट्रस्कन लोग इतिहास के विक्षुब्धकारी दुर्बोध अन्धकारपूर्ण निःशब्द भागों में से हैं। उन्होंने रोम पर १०० या

१. अधिक जानकारी के लिए हमारा प्रकाशन : 'विश्व इतिहास के विलुप्त अध्याय' शीर्षक पुस्तक के पृष्ठ २०१ से २१२ देखें।

अधिक वर्षों तक राज्य-शासन किया; रोम के रंग-ढंग, रहन-सहन पर ऐसा चिर-भिन्न प्रभाव डाला कि उनके बिना रोम को ठीक प्रकार समझा ही नहीं जा सकता, फिर भी रोम का साहित्य उनके बारे में ऐसे ही चुप, गुमसुम है जैसे कोई विवाहिता अपने यौवनकाल की सभी समर्पण-स्मृतियों को सार्वजनिक रूप से भुला देने के लिए उद्यत, आतुर हो। उनकी भाषा के मात्र कुछ ही अस्पष्ट शब्दों का अर्थ निकाला गया है और एट्रस्कन-रहस्य के समक्ष चैम्पोलियन से पूर्व मिस्र के फ़रो लोगों के बारे में व्याप्त रहस्य से भी अधिक गहन अन्धकार में आज सम्पूर्ण विद्वत्ता (आ) खड़ी (हुई) है। परिणामस्वरूप, लोग अभी भी इस सम्बन्ध में वाद-विवाद करते हैं कि एट्रस्कन लोग कौन थे और वे कहाँ से (रोम में) आए थे। उनके धर्म, उनकी वेशभूषा और कला के अनेक तत्त्वों से ऐसा लगता है कि वे एशियायीमूल के थे। उन लोगों ने अनेक नगरों की स्थापना की, ज्यामितीय आधारवाली सड़कों व मकानोंवाले चारों ओर की प्राचीरोंयुक्त नगरियाँ बसायीं···उनके स्वतंत्र, पृथक्-पृथक् नगर-राज्य थे···जो प्रायः उस समय अलग-अलग खड़े, बने रहे जब अन्य लोगों पर हमले होते थे और एक-एक कर, एक के बाद दूसरा रोम के समक्ष घुटने टेकता चला गया। किन्तु ईसा-पूर्व छठी शताब्दी के अधिकांश काल में ये मित्र नगर-सीमाएँ इटली की सुदृढ़तम राजनीतिक शक्ति थीं···पुरुष व महिलाएँ दोनों ही आभूषण पसन्द करते थे। उनका जीवन संघर्षों, युद्धों से कठोर हो गया था, ऐश्वर्य के कारण नरम बना हुआ था और उत्सवों-त्योहारों व खेल-कूद से प्रसन्न, प्रफुल्लित व द्युतिमान था···।"[1]

डूरण्ट एट्रस्कनों के इतिहास को एक दुर्बोध विक्षुब्धकारी अंधकार समझते हैं क्योंकि उन (डूरण्ट) के अग्रज (यूरोपीय) लोग इसे ऐसे ही अस्पष्ट रखना पसन्द करते रहे हैं। यह विश्वास सही नहीं है कि उन (एट्रस्कन) लोगों ने मात्र लगभग एक सौ वर्ष तक ही रोम पर राज्य-शासन किया। रोमन-साहित्य एट्रस्कन लोगों के बारे में जानबूझकर चुप है क्योंकि क्रिस्ती-पंथ, धर्म में परिवर्तित हुए रोमन लोगों ने इटली का क्रिस्ती-

१ 'सभ्यता की कहानी', खण्ड III, पृष्ठ १ से ६।

अध्याय प्रवाह रूप रहे हैं। (प्राचीन) अवशेष बताते, सिद्ध करते हैं कि ईसा से कम-से-कम तीस हजार वर्ष पहले तक भी (इटली में) मनुष्यों का रहन-सहन (वास) था।'

यह (कथन) यूरोपीय विश्वासों, आग्रह कथनों और शिक्षणों की जड़ों पर ही कुठाराघात करता है उन्हें काटकर धराशायी कर देता है। वे लोग बड़े धमकीले ढंग से परन्तु आधारहीन कथन देते फिर रहे थे कि प्राचीनतम राष्ट्र भी ३,००० वर्ष पुराने ही हैं और पश्चिम से आर्यों का भारत की ओर आना ईसा-पूर्व १५०० के लगभग हुआ था। इसके विपरीत हिन्दू लोग इटली व रोम में ३०,००० वर्षों पहले भी विद्यमान थे।

जिस दृष्टि द्वारा उल्लेख किए गए नगर-राज्य और गणतन्त्र, नगरों की उपर्युक्तीय रूप-रेखा आदि निश्चित रूप में हिन्दू विशिष्टताएँ ही हैं। इसलिए हमारा बार-बार आग्रह कथन है कि प्राचीन मामलों में हिन्दू सम्बन्ध विशेषज्ञता के अभाव में कोई सार्थक शोध सम्भव ही नहीं है क्योंकि हिन्दू ही विश्व के सर्वप्रथम उपनिवेश संस्थापक थे।

'एक लम्बे शासन-काल के बाद रोमुलस को एक चक्रयान में स्वर्ग तक ऊँचा पहुँचा उठा दिया था तत्पश्चात् क्विरिनस के रूप में उसकी पूजा की गई थी, जो रोम का एक अति लोकप्रिय देवता था।"[1]

उपर्युक्त उद्धृत अवतरण में हम दो सुविख्यात हिन्दू अवतारी राम और कृष्ण को पहचान सकते हैं। समय और स्थान की विशाल दूरियों के कारण इन नामों की वर्तनियों और उच्चारणों में सहज ही विकृतियाँ आ गयीं। 'लम्बा शासनकाल' भी हिन्दू मूल ही है। हिन्दू-परम्परा में राम ने एक हजार वर्ष तक राज्य किया था। उसका स्वर्ग तक ऊँचा पहुँचा दिया जाना भी इस विश्वास का समर्थन करता है कि राम तो वह अवतार था जिसने अत्याचारी रावण का नाश करने के लिए ही संकटमोचनकर्ता की भूमिका निभाने के लिए ही पृथ्वी पर जन्म लिया था।

शिवलिंग मुख्य देवता होने के कारण ही रोम की मातृ-नगरी का नाम 'अम्बा लोंगा' पड़ा था।

---

1. 'सभ्यता की कहानी', खण्ड III, पृष्ठ २३।

एक अन्य लेखक ने भी स्वीकार किया है कि "एट्रस्कनों के संगीत, आभूषण, खेल-कूद और भोजों के प्रति उनके प्रेम, उनके बहु-भाषी होने, शकुन-विद्या विशेषकर सप्त-नक्षत्र विचार में उनका पूर्व-देशीय चरित्र होना स्पष्ट है।"[1] "यदि सन्तुलन, निष्पक्षता की दृष्टि से हम पूर्व-देशीय मूल अस्थायी रूप से स्वीकार कर लें—जिस विचार को स्वयं एट्रस्कनों ने रोमन साम्राज्य के प्रारम्भ में औपचारिक, सरकारी तौर पर माना था तो उनके आगमन की तारीख (उनका आगमन स्वयं ही विवाद का विषय है) सामान्य रूप में ईसा-पूर्व ८०० सन् के बाद निर्धारित की जाती है।'

शिवलिंग अर्थात् हिन्दू शिव प्रतीक चिह्न इटली में कई स्थान पर जमीन में दबे हुए पाए गए हैं। चूँकि वाटिकन इटली के प्रधान उपासनालय, देवालय का एक प्राचीन स्थल है, अतः वाटिकन के प्रांगणों, वहाँ की प्राचीरों और कोठरियों-तहखानों में हिन्दू देव-मूर्तियाँ सैकड़ों की संख्या में अवश्य ही दबाई, छुपाई मिल जाएँगी। ऐसे स्मृति-चिह्नों की खोज पुनः प्राप्ति के लिए विधिवत् पुरातत्त्वीय जाँच-पड़ताल प्रारम्भ करनी चाहिए। अब चूँकि हमने सिद्ध कर दिया है कि जीसस का कभी कोई अस्तित्व ही नहीं था, इसलिए यह और भी जरूरी हो गया है कि वाटिकन का असली, वास्तविक प्राचीन हिन्दू मूल उचित प्रकार से अन्वेषण किया जाए।

कृस्तो-पंथ की शास्त्रीयता, इसकी सत्य-परख करनेवालों ने अभी तक जो एक अति महत्त्वपूर्ण पक्ष अपने ध्यान में नहीं लाया है वह वाटिकन का स्थान, उसकी भौगोलिक स्थिति, उसकी अवस्थिति है। यदि, जैसा सामान्यतः जोर देकर कहा जाता है कि कृस्तो-पंथ (धर्म) जरूसलम में स्थापित हुआ था और जीसस ने अपना सम्पूर्ण जीवन वहीं बिताया था, तो रोम कृस्तो-पंथ का मुख्यालय कैसे, किन कारणों से बन गया? इस सम्बन्ध में दो परस्पर पूरक प्रमाण हैं। एक, चूँकि जरूसलम में क्राइस्ट (कृस्त) नाम का कोई व्यक्ति था ही नहीं और न ही जरूसलम में या उसके आसपास कोई क्राइस्टवाद था, इसलिए कृस्तो-पंथ की कोई प्रभावकारी प्रधान संस्थापना वहाँ नहीं है।

दूसरी बात, सच्चाई यह है कि रोम कृस्तो-पंथ, कृस्तो-समुदाय का

---

1. मैथ्युइन 'ग्रीक (यूनानी) और रोमन विश्व का इतिहास' पृष्ठ १५।

मुख्यालय बना क्योंकि रोम के सम्राट् के धर्म-परिवर्तन के साथ ही रोम की सेना सम्पूर्ण यूरोप के गले जबरदस्ती कृस्ती-पंथ (धर्म) को उतारने, थोपने, स्वीकार कराने के लिए एक उपाय के रूप में उपयोग, इस्तेमाल की जाने लगी। अतः किसी भी व्यक्ति को यह कल्पना नहीं करनी चाहिए कि शस्त्र न होकर ईसाई मत (प्रतीक चिह्न 'क्रॉस') ही था ज्ञान या धर्म-व्याख्या ही थी जिसके आधार पर कृस्ती-पंथ के प्रचार-प्रसार फैलाव में सहायता मिली।

इस बात का भी पूरा स्पष्टीकरण कभी प्रस्तुत नहीं किया गया कि यूरोप के सभी शासकों और वहाँ के शासित लोगों का दमन करने, उन पर जबरदस्त दबाव डालने की शक्ति वाटिकन को कब, कहाँ से कैसे प्राप्त हो गई। मुख्य कारण यह है कि अति प्राचीन काल में जब रोम एक हिन्दू, क्षत्रिय शासक वंश का मुख्यालय था, तब इसका प्रभुत्व सम्पूर्ण यूरोप पर छाया हुआ था। चूँकि हिन्दू शासक स्वयं संस्कृत के विद्वान् हिन्दू पुरोहित से मार्गदर्शन प्राप्त करता था इसलिए रोम में अपनी धार्मिक आध्यात्मिक वाटिका में रहनेवाला हिन्दू पुरोहित समस्त यूरोप के लिए सर्वोच्च धर्माधिकारी बन गया। स्वयं 'पोप' की उपाधि या पदवी एक महत्त्वपूर्ण संकेतक है। इसका वास्तविक शब्द 'पाप' है। यूरोपीय पद्धति के अन्तर्गत इसका उच्चारण 'पोप' होने लगा।

स्वयं सम्राट् की 'ऑगस्टस (कैसर)' उपाधि भी महान् हिन्दू ऋषि अगस्त्य केसरी से व्युत्पन्न है। उक्त ऋषि का अपने पाण्डित्य और लम्बे-चौड़े भव्य व्यक्तित्व के कारण (श्रद्धायुक्त) विस्मय, भय और समादर था। अतः उनको 'केसरी' अर्थात् एक सिंह, शेर समझा, माना जाता था। वह वही संस्कृत शब्दावली 'अगस्त्य केसरी' है जो 'ऑगस्टस केसर', अंग्रेजी का कैसर और (रूस का) 'ज़ार' जैसे भिन्न-भिन्न रूप में उच्चारण किया जाने लगा। इसी प्रकार यूरोपीय भाषाओं में भव्यता और शालीनता का द्योतक 'ऑगस्ट' शब्द भी हिन्दू ऋषि अगस्त्य से ही व्युत्पन्न है। ऑगस्ट (अगस्त) मास भी उन्हीं के नाम पर रखा हुआ है।

चूँकि संस्कृत 'पाप' (अर्थात् पाप से संरक्षण-बचाव करनेवाला) 'पोप' उच्चारित किया जाता था, राम भी रोम (रोमा) में उच्चारित होता था जो राजधानी राम की यथार्थ वर्तमान इतालवी वर्तनी है।

अंग्रेजी आधार-ग्रंथ सूची

(BIBLIOGRAPHY)

1. Buddhist and Christian Gospels, by Albert J. Edmunds, The Yuhokwan Publishing House, Tokyo, 1905 A.D.
2. The Story of Civilization, by Will Durant, Volumes II and III.
3. A Social and Religious History of the Jews, by Salo Wittmayer Baron, 2nd edition, Columbia University Press, New York, 1962 A.D.
4. Collier's Encyclopaedia (Volume V), U.S.A., 1962 A.D.
5. The Works of Flavius Josephus.
6. Methuen's History of the Greek and Roman World.
7. The Civil and Literary Chronology of Greece (III Volumes), by Henry Fynes Clinton, Oxford University Press, 1834 A.D.
8. The Theogony of the Hindus, by Count M. Bjornstjeena, John Murray, Albemarle Street, 1944 A.D.
9. Constantine Porphyrogenitus De Administrando Imperio, Vol. II, edited by R.J.H. Jenkins, University of London 1962 A.D.
10. Ancient India as Described by Megasthenes and Arrian, by J. W. McCrindle, Trubsnev Co., London, 1877 A.D.

11. An Appendix To a Dissertation on the Civil Government of the Hebrews, by Moses Lowman, London.
12. The Word, by Irving Wallace.
13. The Holy Bible, Cambridge University Press.
14. Encyclopaedia Judaica, Keter Publishing Co. Ltd., Jerusalem.
15. The Geography of Strabo, Translated, with notes by H.C. Hamilton and W. Falconer; published by Henry G. Bohn, York Street, Covent Garden, London.
16. Herodotus, Rawlinson's Translation, The Nonesuch Press, Great James Street, Bloomsbury.
17. The Koran, Translated with notes by N.J. Dawood, 4th revised edition, 1974 A.D. (Penguin Classics).
18. Christianity at Corinth, by C.K. Barrett.
19. A Commentary on the First Epistle to the Corinthians, by C. K. Barrett.
20. Encyclopaedia Britannica, Volumes XXV, eleventh edition.
21. Portraits of Christ, by Ernst Kitzinger and Elizabeth Senior, Penguin Books Ltd., Harmondsworth, U.K. 1940 A.D.
22. India in Greece, E. Pococke. John J. Griffin and Co., 58 Baker Street, Portman Square, London, 1852 A.D.
23. Did Jesus Exist? by G.A. Wells, Elek Pemberton, 54-58 Caledonian Road, London, NI 9 RN, 1975.
24. The Veil of Hebrew History—A Further Attempt to Lift It, by the Rev. T.K. Cheyne, Adam and Charles Black, London, 1913 A.D.
25. An Historical View of Christianity, by Edward Gibbon, by T. Cadell and W.Davies, Strand, London, 1800 A.D.

26. The History of the Decline and Fall of the Roman Empire, by Edward Gibbon, W. Strahan and T Cadell, London.
27. The Jewish-Christian Argument, by Hans Joachim Schoeps, Faber and Faber, 24, Russel Square, London, 1963 A.D.
28. Ancient Indian Historical Tradition, by F. E. Pargiter, Humprey Milford, London, 1922.
29. Some Missing Chapters of World History, by P. N. Oak, 1973.
30 Jesus Died In Kashmir, by Andreas Faber-Kaiser.
31. Philosophy of Ancient India, by Richard Garbo, Chicago, 1897.
32. A History of Hindosthan, Its Arts and Sciences, by T. Maurice, 1795; reprinted in 1971 by Navrang Publishers, New Delhi.
33. The Odyssey.
34. St Paul, His Life, His Work and His Writings, by W. H. Darrenport Adams, T. Nelson and Sons, Paternoster Row, Edinborough and New York, 1875 A.D.
35. Life of Jesus, by Ernest Renan.
36 Antiquities of the Jews, by Josephus.
37. The Mind of St. Paul, Fontana, 1965.
38. The Church And Jesus, by Rev. P. G. Downing, London, 1968.
39. In Search of the Historical Jesus, by H. McArthur, London, 1970.
40. The Trial and Death of Jesus, by H. Cohn, London, 1972.

41. Amen, by V. Hasler, Zurich and Stuttgart, 1969.
42. The Gospels, Their Origin And Growth, by F.C.Grant London, 1957.
43. Aretologies, Divine Men, Gospels and Jesus, by Morton Smith.
44. Marks's Contribution to the Quest of an Historical Jesus, by E. Schweizer.
45. Iscariot, by B. Gartner.
46. Life and Letters of Ram Mohan Roy, by Miss Sophia Collet.
47. The Fountainhead of Religion, by Ganga Prasad.
48. The Conflict Between Paganism and Christianity in the Fourth Century, by A. Momighano.
49. A Social and Religious History of the Jews by Salo Wittmayer Baron, II edition, 1962, Columbia University Press.
50. Mathuen's History of the Greek and Roman World.
51. Geography of Starbo (III Volumes).

अधिक प्रयोग में आनेवाले कुछ रूढ़ अंग्रेजी शब्द व उनके हिन्दी पर्यायवाची शब्द

1. Acts : धर्म चरित
2. Apostles : पट्ट-शिष्य
3. Christ : क्राइस्ट, क्रुस्त, क्रिस्त, ख्रिस्त, ख्रस्त
4. Christianity : क्रिश्चियनिटी, क्रुस्ती-पंथ, क्रुस्त-पंथ, क्रुस्त-नीति, कृष्ण-नीति, ख्रिस्ती-पंथ, ईसाई धर्म/मत/पंथ
5. Christian : क्रिश्चियन, क्रुस्ती, क्रुस्त-पंथी, कृष्णी, कृष्ण-पंथी, ईसाई
6. Christ Brotherhood : क्रुस्त-भ्रातृसंघ
7. Crucification : 'क्रूस' या सूली पर चढ़ाना, फाँसी देना
8. Disciples : अनुयायी
9. Epistles : धर्मपत्र
10. Evangelists : सुसमाचार-लेखक
11. Gospel : गौस्पल, सुसमाचार, धर्म सिद्धान्त, धर्मग्रन्थ
12. Jews : ज्यूस, यहूदी लोग
13. Jewish Old Testament : यहूदी पूर्व/प्राचीन विधान
14. Old Testament : प्राचीन/पूर्व विधान
15. Logia : सूक्ति संग्रह
16. Mundane Correspondence : धार्मिक/सैद्धान्तिक पत्रावली

17. New Testament : नव विधान, उत्तरार्द्ध
18. Pass Over : पास्का (ईस्टर), विच्छेद
19. Pagan : गैर-यहूदी, गैर-ईसाई
20. Roman : रोमन, रोमवासी
21. Snoptics : सहदर्शी

□□□

हिन्दी साहित्य सदन
2 बी.डी. चैम्बर्स, 10/54, डी.बी. गुप्ता रोड
करोल बाग, नई दिल्ली-110005
टेलीफैक्स : 23553624, [illegible]
e-mail : indiabooks@rediffmail.com